Shivaji Vijay.

॥ श्रीः ॥

भारतहितैषी बंगगौरवरवि सर रमेशचन्द्रदत्त

(सी. एस. सी. आ. ई.) कृत-

शिवाजीविजय.

अर्थात्

जीवनप्रभात

मुरादाबादनिवासी पण्डित बलदेवप्रसादमिश्र

द्वारा अनुवादित ।

जिसको

खेमराज श्रीकृष्णदासने

बंबई

निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-मुद्रणयंत्रालयमें

मुद्रितकर प्रकाशित किया ।

संवत् १९६६, शाक १८३१



श्रीभवानीजी और शिवाजी महाराज

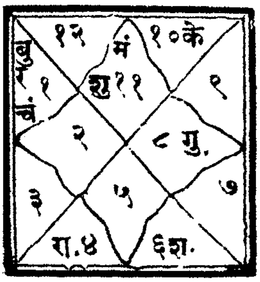
महाराज शिवाजीकी जन्मपत्रिका ।

॥ श्रीगणेशाय नमः श्रीसरस्वत्यै नमः ॥ सजयति० ॥ स्वस्ति श्रीमन्नृपशालिवाहन शके १५४९ प्रभवनामसंवत्सरे चैत्र कृ. ३० गुरौ, घ. ४८ पलानि ५०, रेवती नक्षत्रे घ. ७ प. ३९, विष्कंभयोगे घ. ४१ प. १९ तत्काले, किंस्तुघ्नकरणे एवं पंचांगशुद्धावस्मिन् शुभदिने श्रीसूर्योदयात् गतघटयः ५१ प. २५ तदानीं प्रतिपदि अश्विनीनक्षत्रे कुंभलग्ने वहमाने शुभवेलायां श्रीमतां गोब्राह्मणप्रतिपालकानां श्री शिवाजीमहाराजानां जन्मकालः । अश्विनीनक्षत्रस्य चतुर्थचरणः ॥

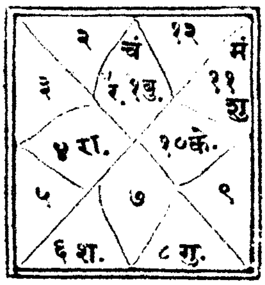
रव्यादयः स्पष्टाः सगतिकाः

र.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श	रा.	के.
०	०	१०	०	७	१०	५	३	९
६	२५	६	१७	१४	२१	९	२५	२५
४५	५	२३	३३	६	२५	३२	३४	३४
२४	०	३९	३०	४८	१७	३१	१४	१४
५८	८४९	४५	१०३	३	५४	४	३	३
३४	५३	३५	१५	१७	५१	१८	११	११
				व		व		

जन्मलग्नकुंडली.



राशिकुंडली.



अस्यां कुंडल्यां रविरुच्चः ।
उच्चसमीपस्थश्चंद्रःशुक्रः भौमः
शनिश्च । मित्रक्षेत्रगतो गुरुः ।
तस्मात्पंचग्रहा उच्चकल्पाइति ॥

दशाक्रमः **महादशा राहोः**

	के.	शु,	र.	चं,	मं.	रा.	गु.	श.	बु.
व.	१	२०	६	१०	७	२	२	२	२
मा-	७	०	०	०	०	८	४	१०	६
दि.	१०	०	०	०	०	१२	२४	६	१८

अथास्य संक्षेपतः फलविचारः ॥ अत्र तनुभवने भौमस्य विद्यमानत्वात् अष्टमस्थाने च शनेर्विद्यमानत्वात् त्रिपंचाशद्वर्षमितायुर्योगः । तदुक्तं केरलजातके । लग्ने भौमेऽष्टमे मंदे सूर्ये वा व्ययमृत्युगे । त्रिपंचाशमिते वर्षे मृत्युरस्य न संशय इति । दशाविचारेणापि राहुमहादशांतर्गतबुधांतर्दशायां मृत्युयोगः बुधस्य मृत्युस्थानाधिपतित्वात् राहोः फलं शनिवदित्युक्तत्वात् शनेर्मृत्युस्थानगतत्वाच्च ।

लग्नात्सहजस्थानेरवेर्विद्यमानत्वात् सहजस्य शुक्रमारकत्वात् शुक्रमहादशांतर्गतराहुदशायां दशमे वर्षे ज्येष्ठभ्रातृविनाशयोगः । उक्तं च जातकाभरणे । अग्रे जातं रविर्हंति पृष्ठे जातं शनैश्चरः । अग्रजं पृष्ठजं हंति सहजस्थो धरासुत इति ॥

चंद्रान्मातृभवने राहोर्युक्तत्वात् राहुदशायाम् अष्टचत्वारिंशन्मितवर्षे मातृनाशयोगः । उक्तं च केरलजातके । चतुर्थे राहुयुक्ते तु मातृनाशो भवेद्ध्रुवमिति ।

मातृस्थानाधीशस्योच्चोन्मुखत्वात्पितृस्थानाधीशस्य चोच्चत्यक्तत्वात् पितृसुखापेक्षया मातृसुखं विशिष्टम् ।

तनुभवने भौमस्य युक्तत्वात् षष्ठस्थाने राहोर्विद्यमानत्वाच्च भौममहादशांतर्गतराहुदशायां चत्वारिंशन्मितवर्षे बंधनयोगः । उक्तं च केरलजातके । अंगारके तनौ राहौ रिपौ बंधनमादिशेदिति ।

पितृस्थानाधीशस्य भौमस्योच्चत्यक्तत्वात्पापत्वाच्च भौमदशारंभे सप्तत्रिंशन्मितवर्षे पितृवियोगः ।

जायाभवने सप्तग्रहाणां दृष्टियोगत्वात् सप्तसंख्याकभार्यायोगः । उक्तं च जातकालंकारे । यावंतो वा विहंगा मदनसदनगा वा मदस्थानदृष्टास्तावंतो नुर्विवाहास्त्वथ सुमतिमता ज्ञेयमित्थं कुटुंब इति ।

अत्र संतानभवने त्रिमितोंकोऽस्त्यतःसंतानत्रययोगः । तन्मध्ये स्त्रीपुरुषग्रहदृष्टिविचारेण पुत्रौ द्वौ कन्या चैका । उक्तंच जातकाभरणे संतानभावांकसमानसंख्या स्यात्संततिरिति । अत्र पंचमाधीशस्य पापयुक्तत्वात् पुत्रसुखाल्पत्वम् ।

पराक्रमभवने रविचंद्रबुधानां युक्तत्वात् रविचंद्रदशायामुत्तरोत्तरं पराक्रमवृद्धिः ।

षष्ठस्थाने राहोर्विद्यमानत्वात् त्रयस्त्रिंशन्मितवर्षे शत्रुनाशान्महापराक्रमः ।

राज्याधीशस्य भौमस्य केंद्रगतत्वाद्दशमस्थाने गुरोर्युक्तत्वाच्च भौमदशायामष्टत्रिंशन्मिते वर्षे राज्यलब्धिः । गुरुदशायामष्टचत्वारिंशन्मितवर्षे राज्याभिषेकः ।

धर्माधीशस्य केंद्रगतत्वात् शुभत्वात् उच्चोन्मुखत्वाच्च धर्मसंस्थापकयोगः । उक्तं च गर्गजातके । धर्माधीशे तु केंद्रस्थे धर्मसंरक्षणे विदुरिति ।

सूर्यस्य उच्चगतत्वात् पराक्रमस्थानगतत्वात् गुरोर्दशमभावगतत्वाच्च बाहुल्येन धर्मप्रवृत्तिः राज्यलब्धियोगः प्रियंवदः धनवाहनसंपदाढ्यः सुकर्णचित्तः अनुचरान्वितः, राजाधिराजः, यशोभिवृद्धियुक्तश्च । उक्तं च गर्गजातके । तुंगे स्वर्क्षे सहस्रांशौ पुष्कलं धर्ममादिशेदिति । अन्यच्च जातकाभरणे । तुंगे पतंगे यदि वा तृतीये स्याद्राज्यलब्धिर्निजबाहुवीर्यादिति । प्रियंवदः स्याद्धनवाहनाढ्यः सुकर्णचित्तोऽनुचरान्वितश्च राजाधिराजः खलु मानवः स्याद्दिनाधिनाथे सहजेऽधिसंस्थ इत्यपिचेत्यलमतिविस्तरेण ।

भूमिका ।

आज मैं पाठकगणोंके समीप एक नवीन उपहार लेकर उपस्थित होता हूं। जिस प्रकारसे मेरे अन्य ग्रंथोंका पाठकगणोंने आदर किया है, इस नवीन उपन्यासकोभी मैं इसही आशासे भेंट करताहूँ । आजकल बहुतसे उपन्यास हिन्दी भाषामें छपकर प्रकाशित होते जाते हैं, तथा होंगे. परन्तु ऐसे उपन्यासोंकी संख्या बहुत कमहै कि, जिनके पठन पाठनसे हृदयमें देशानुराग का संचार होकर अपने पूर्वजोंकी अलौकिक वीरता, धीरता तथा दृढ प्रतिज्ञापर गाढ निष्ठा और भक्ति हो । भारतके इतिहासमें ऐसे अनन्त वीर होगये हैं कि, जिनके गौरवकी कथाका स्मरण होनेसे अबभी रोमांच होने लगता है। जो दुर्गति आज भारतवासियोंकी होरही है, यदि उसका मिलान भारतके पहले गौरवसे किया जाय तो एक साथ फूटकर आँसू निकल पडते हैं । फिर यहां तक आलस्यने हमको आघेरा है कि, भूलसे भी कभी अपने पूर्वजोंको याद नहीं करते, यदि किसीने कोई इतिहास लिखकर छपाभी दिया तो वह रद्दीखानेहीमें पडा हुआ कीडोंका भोजन होरहा है । ऐसे कठिन समयमें श्रीमान् महाराजकुमार बाबूरामदीनसिंह खड्गविलास प्रेस बाँकीपुर, बाबू रामकृष्ण वर्मा सम्पादक भारतजीवन काशीके उत्साहको वारम्वार धन्यवाद दिया जाता है कि, इन महाशयोंने सर्वदा ग्रंथकारोंको उत्साह देकर ऐतिहासिक उपन्यास व नाटकोंको प्रकाशित किया, तथा कररहे हैं, यदि उपन्यासमें ऐतिहासिक विषय लिखा जावे तो उससे महान् लोकोपकार होना संभव है क्योंकि उपन्यास या नाटक समझकर आज कलके नवशिक्षित संपूर्ण पुस्तकको पढ़ डालते हैं और फिर क्रमशः अपने पूर्वजोंमें भक्ति करना सीख जाते हैं मुन्शी उदितनारायणलालजी वकील गाजीपुर-लाला बालमुकुन्दजी गुप्त संपादक भारतमित्र आदि महाशयोंको परमेश्वर दीर्घायु करे कि, इन्होंने भी तन मन धनसे भारतका सच्चा और सुन्दरचित्र दिखानेकोही अपनी लेखनी उठाई है । बंगविजेता, कादम्बरी, दुर्गेशनन्दिनी, दीप निर्वाण, हरिदाससाधु आदि उपन्यास और सती आदि नाटकोंके पढनेसे ही आज कल भारतवासियोंकी रुचि हिन्दी साहित्यकी ओर आकर्षित हुई है । इसके पहले हिन्दीभाषाके

गुरु भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी अनेक नाटक लिखकर हिन्दी साहित्यको उन्नतिका मार्ग दिखा गये हैं। परन्तु उक्त बाबू साहब थोडेही समयतक साहित्यरूपी पीयूषकी वर्षाकर गोलोकको सिधार गये। प्रसिद्ध विद्वद्वर अपूर्व लेखक कविवर प्रतापनारायणजी मिश्रनेभी हिन्दी साहित्यको भलीभाँतिसे आगे बढ़ाया परन्तु दैवने उनका पीछा भी न छोडा। अब अधिक लिखनेसे क्या है लाला श्रीनिवासदासजीने भी इसही भाँतिसे मुँहमोडा, लालाखड्गबहादुरमल्लभी सिधारे। भारतरत्न पंडितवर साहित्याचार्य श्रीअम्बिकादत्तजी व्यासभी हुए न्यारे। प्रसिद्ध नाटककार लाला शालिग्रामजीने भी स्वर्गको पयान किया, मुन्शी उदितनारायणलालजी वर्मा, मेरठ निवासी पं० गौरीदत्तजी बाबू कार्तिकप्रसादजी, माननीय बाबू बालमुकुन्दजी गुप्त इत्यादि महाशय स्वार्थ छोडकर यदि हिन्दी साहित्यकी ओर न झुकपडते तो आज फिर हिन्दी भाषाकी अधोगति हम लोगोंके देखनेमें आजाती। परमेश्वरसे यही प्रार्थना दिनरातकी जाती है कि, उपरोक्त लेखक महोदयगण सर्वदा इसही भाँतिसे अपनी मातृभाषाकी श्री वृद्धि करते रहैं।

परन्तु जरा दूसरी ओरकोभी दृष्टि कीजिये कि हिन्दी साहित्यकी उन्नति करनेके बहानेसे कतिपय स्वार्थी मनुष्य स्वभाषाके मूलमें कुठाराघात कररहे हैं। कोई कोई तो ऐसे झुँझलायेहैं कि, सिवाय अपने और किसीको ग्रन्थकारही नहीं समझते, कुछ इस साँचके हैं कि, दूसरोंकी करतूतमें दिनरात दोष खोजनेमेंही अपने को सफल जीवन समझते हैं कोई कोई अपने स्वार्थसाधनके लिये समालोचक समिति या समालोचकसमाज स्थापित करना चाहते हैं और स्वयं विचारोंने काव्यदर्पण, या काव्यप्रकाश अथवा काव्यके किसी ग्रंथको स्वप्नमें भी नहीं देखा होगा। इनमें कुछ ऐसे हैं कि, जो पढे लिखे हैं, परन्तु यह अपना अमूल्य अवसर परस्परके विवादमेंही नष्ट करते करते घोर दर्शन बनजाते हैं। अंगरेजीका विचारोंने नाम नहीं सुना "ए. बी. सी. डी." तक पढ़ी नहीं और बेवरका भ्रम दूर करने को तैयार हैं, शेक्सपीयरकी भूलें निकालना अपना काम समझते हैं, राजनैतिक विषयों पर कलम चलाते चलाते सनातन हिन्दूधर्म और भारत धर्म महामण्डलपर (कुछ प्राप्त न होनेके कारण) खड्गहस्त होरहे हैं, कोई कोई ऐसे श्रीमान् हैं कि, वह जो कुछ समझते हैं सो अपनेही इष्टमित्रों को और अपनेही नगर वालों को। ज्योतिषी, नाटककार, औपन्यासिक,

विद्वान् इत्यादि जितने विशेषण शास्त्रमें पायेजाते हैं, वह उनकीही नगरीमें मानों प्राचीन कालकी समान इस समयभी वर्त्तमान हैं। यदि कभी इच्छा हुई तो किसी पुस्तकके बनानेमें कोई पुरस्कार नियत करा दिया और वह झटसे किसी अपने नगरनिवासी मित्रको दिलवादिया तथा किसी समाचारपत्रमें विज्ञापन देदिया कि, परम माननीय फलानेजीने फलाने विषयपर फलानी पुस्तक लिखी और उनको फलाना पुरस्कार दियागया। इसके अतिरिक्त आज कविकुलगुरु कालिदास, भारवी, भवभूति, और बाणादिकके काव्यमें भी कोई २ कुलपोषक भ्रम और त्रुटियें बताने तथा उन अनंत धाम निवासियोंकी गर्दनभी कुंद छूरीसे रेतने को तैयार होगये हैं, वह यहांतक इन कविगणोंसे अप्रसन्न हैं कि, यदि वश चलता तो आजही किसी किसी की आत्माको अश्लीलताके अपराधमें कारागार के बीच पहुँचादेते। उस पर तुर्रा यह है कि, ऐसे भारतहितैषियोंपर सूरदास तथा तुलसीदासजीकी अत्यंत कृपा होती है। इन दोनों कवियोंके जितने ग्रंथहैं, उनकी असल कापी ऐसेही महात्माओंके पास रहती है बाकी जो किताबें आजतक लाखों छपकर बिकती है वह सब अशुद्ध हैं। इनमेंसे एक महाशयके द्वारा सम्पादित एक बडा ग्रंथ, जो कि प्राचीन राग रागिनियोंके ग्रंथोंमें विख्यात है, मैने देखा। सम्पादकजीका नाम देखकर तो बडी श्रद्धा हुई परन्तु भीतर वही कहावत चरितार्थ हुई कि, "ऐसी शेखी और यह तीन कानें।" राग रागिनियोंका वजन तक ठीक नहीं मिलताथा और अशुद्धियां भी अपार थीं।

अब बतलाइये कि, हम ऐसे सुलेखकोंको किस भाँतिसे हिंन्दीका एक मात्र लेखक मान लें अथवा उनके लिखेको अकाट्य या परम माननीय कैसे समझ लें। दो चार इधर उधर की गप्प या एकाध अंग्रेजका नाम भूमिकामें लिख देनेसेही ग्रंथ सम्पादन कार्य पूर्ण नहीं कहा जासक्ता।

आजकल जिस प्रकारसे दूषित नाटक व उपन्यासोंका अधिकाईसे प्रचार हो रहा है, उससे केवल भाषाही दूषित नहीं होती वरन् जाति, धर्म, नीति, समस्तही पर दोष आता है और साथ २ ही उत्तम ग्रंथोंके प्रचारमेंभी विघ्न पडता है। यदि इन विघ्नोंने ग्रंथोंका प्रचार कुछ रुक जाय तो हिन्दीभाषानुरागियोंको अवश्यही अल्पकालमें अच्छे २ ग्रंथ पढनेको मिलें। तथापि यहांपर

इस बातके कहने की आवश्यकता है कि, यदि कोई महाशय किसी अच्छे ग्रंथको लिखें और उसमें दो चार भूलें हों तो उसकी समालोचना भयंकर नहीं होनी चाहिये। उस पुस्तककी यथोचित प्रशंसा करके मित्रकी समान मधुर भावसे उन भूलोंको दिखला देना ही उचित है। भ्रमप्रमाद दिखानेकी आवश्यकता यह है कि, दूसरे संस्करणमें ग्रंथकार उसको संशोधन कर ले और आगे को उस ग्रंथका अनुकरण करके कोई वैसी भूल नहीं करे। परन्तु अत्यंत दुःखकी वार्ता है कि, ऐसे समालोचक नितान्तही अल्प हैं। विषय जघन्य है, भाषा घृणित है, प्लाट किसी कामका नहीं, ऐसी पुस्तकोंकी प्रशंसा तो भलीभाँतिसे होती है, तथा वृत्तान्त, वर्णन, परिणामादि सबही भाँतिसे ग्रंथ परिपूर्ण है, परन्तु कहीं २ भाषामें कुछ दोष होनेके कारण समालोचकजी उसही छिद्रको अवलंबन करते और ग्रंथकारको मनमानी गालियें सुनाकर अपने हृदयके फफोले फोडा करते हैं, इस कार्यसे केवल ग्रंथकारोंकी हानिही नहीं होती वरन परस्पर वैमनस्य और वादविवादकी जड जमती है। तीव्रसमालोचना किसको मानसिक पीडा नहीं पहुँचाती है। इसही कारणसे ग्रंथकारगणभी उन समालोचकोंके लेखोंकी उपेक्षा करके मनमाने लेख लिखा करते हैं। वास्तवमें आजकल समालोचकोंके दोषसे किसी पुस्तककी भी यथार्थ समालोचना नहीं हो पाती। यदि उत्तम समालोचना हुई तो पाठकगण समालोचक को ग्रंथकारका मित्र और तीव्र समालोचना हुई तो समालोचकको ग्रंथकारका पूरा शत्रु समझ लेते हैं। बस यही कारण है जो समालोचनाका आशय पूरा नहीं होता। स्वर्गीय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी इस बातको भलीभांतिसे जानते थे, कान्यकुब्जकुलभूषण कविकुलगुरु स्वर्गीयपंडित प्रतापनारायणजी मिश्र, समालोचनाके अभिप्रायको भलीभांति समझते थे, अनन्तधाम निवासी लाला श्रीनिवासदास, लाला खड्गबहादुरमल्ल, भारतरत्न साहित्याचार्य पंडित अम्बिकादत्त व्यास इत्यादि महाशयगण समालोचनाके मर्मसे भलीभांति अवगत थे. यही कारण है जो उपरोक्त कविभूषणोंके द्वारा कभी किसी छोटेसे भी छोटे ग्रंथकारका चित्त नहीं दुखा और सबही उनको अपना मार्ग परिदर्शक गुरुतुल्य मानते रहे। ऐसा होनेका कारण यही था कि, उपरोक्त महाशयोंको हिन्दीभाषाकी उन्नति करनी थी और

आज कलके समालोचकगणों (?) को जैसे तैसे अपना नाम प्रसिद्ध करना है। परन्तु आजकलभी कुछ सदाशय विद्वान ऐसे हैं जो भलीभांतिसे समालोचनाके अभिप्रायको जानते हैं। हिन्दी बंगवासीके सम्पादक इस विषयमें अत्यन्त दक्ष हैं, बाबू बालमुकुन्दजी गुप्त सम्पादक भारतमित्र इस ज्ञानमें आदर्श हैं, श्रीवेंकटेश्वर समाचारमें लज्जारामजी भी अनुपम समालोचना लिखनेवाले हैं और छत्तीसगढमित्रको भी समालोचकोंमें अग्रगण्य सुना जाता है, हिन्दोस्थानके सम्पादकभी समालोचनाको भलीभांतिसे देख भालकर करते हैं; यथा कुछ समाचार पत्र तो ऐसे देशहितैषी हैं कि, पुस्तककी प्राप्ति छाप दी और ग्रंथकारको कृतार्थ करदिया ऐसे भाषानुरागियोंको तो दूरहीसे प्रणाम करना उचित है।

यहांपर यह कहनाभी प्रसंगके बाहर न होगा कि, आजकलके अनुवादकगणभी अपने २ कर्तव्यको भूले हुए हैं। स्वर्गीय बाबू हारिश्चन्द्रजीका यह कहना कि ग्रंथकारके आशयको बिना समझे ग्रंथका अनुवाद करना ग्रंथकारकी गर्दनको छुरीसे रेतनेकी बराबर है–बहुतही ठीक है। बस आजकल ऐसेही अनुवाद अधिकतासे होते हैं। उपन्यासोंके अनुवाद कार्यमें स्वर्गीय बाबू गदाधरसिंह प्रथम गिने जाते थे। "मुरादाबाद" के एक अनुवादकने स्वलिखित एक उपन्यासमें नायिकासे नायकको "दादा" कहकर बुलवाया है। बंगभाषाको भलीभांतिसे बिना जाने उपन्यासका अनुवाद करना ऐसीही विडम्बनाका कारण होता है। इस कारण अनुवाद करनेके समय समस्त गुण दोषोंका विचार भलीभांतिसे कर लेना चाहिये।

जिस उपन्यासको इस समय आप पढ़ रहे हैं इसके आदि कारण शील श्रीयुक्त बंगगौरवरवि श्रीमान् बाबू रमेशचन्द्रदत्तजी सी. एस. सी. आई. ई. हैं। जो कि बहुत दिनतक बंगालके जिलोंमें पूर्ण अधिकार प्राप्त कलक्टर तथा वर्द्धमानके कमिश्नर रहचुके हैं। आजतक किसी भारतवासीने कमिश्नरका पद नहीं पाया। आज कलभी आप लंदनकी आक्सफोर्ड युनिवर्सिटीमें अंगरेजोंको इतिहास पढ़ाते हैं। इतने अधिकार प्राप्त करके भी आप अपनी मातृभाषाके अत्यन्त प्रेमी हैं और अबतक कुछ न कुछ लिखेही जाते हैं। ऋग्वेदका बंगला अनुवाद सबसे प्रथम इन्होंनेही

किया । बंगविजेता, माधवीकंकण, जीवनप्रभात, जिवनसंध्या, समाज, संसार यह छः उपन्यास, तथा भारतवर्षका इतिहास, यूरुपे तिनवत्सर, शास्त्रप्रकाश प्रथम और द्वितीयखंड आदि पुस्तकें लिखकर बंगसाहित्यकी अत्यंत उन्नति की है ।

बंगभाषाके उपन्यास लेखकोंमें प्रथम स्वर्गीय बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्यायकी गिन्ती है । रुलाने, हँसाने, व्याकुल करने, हर्षित करने इत्यादि कार्योंपर स्वर्गीय रायबहादुर बंकिमचन्द्रका पूर्ण अधिकार था । वास्तवमें जो कुछ उक्त महाशय लिखगये हैं वह दूसरे ग्रंथकारोंके द्वारा लिखा जाना कठिन बात है । उक्त बाबूसाहबके सबही उपन्यास मधुर, सरस, देशानुराग पूर्ण और बंगभाषाके अलंकारस्वरूप हैं । इनके उपन्यासोंका अंग्रेजी, महाराष्ट्री, गुजराती, जरमन व हिन्दी भाषामें अनुवाद होचुका है और क्रमशः होता जाता है । यद्यपि उक्त महाशयके उपन्यास सबही भांतिसे आदर्शस्वरूप हैं, परन्तु धर्मभावकी कमी अधिकांश पुस्तकोंमें पाई जाती है । विना-धर्मके नाटक उपन्यास सबही में एक प्रकारकी अपूर्णता रहती है । इस विषय में सर रमेशचन्द्रदत्त सी. एस. सी. आइ. ई. के उपन्यास, स्वर्गीय बाबू बंकिमचन्द्र-जीकी अपेक्षा बहुतही चढ़बढ़ गए हैं । बंगविजयता में "त्रिदोषमें शिवपूजन, महन्त चन्द्रशेखरके मन्दिरका वर्णन" पाठ करनेसे ऐसा ज्ञात होता है कि मानों प्राचीन कालके ऋषि मुनियोंका चित्र नेत्रों के आगे खिंच रहा है । प्रस्तुत जीवन-प्रभात उपन्यासमें भी इस धर्मभावको अनेक स्थलों में प्रत्यक्ष कर दिखाया है । मैं न लेखकहूँ न अनुवाद करना जानताहूँ तथापि इस आशा से कि "गगन चढ़ै रज पवनप्रसंगा ।" यह ढिठाई की है । मेरी तुच्छताको निहार कर इसको न पढ़िये, तथापि सर रमेशचन्द्रदत्तजीकी करनी जानकर अवश्यही आद्योपान्त पढ़ जाइये । जो आप लोगोंने सहारा दिया तो मैं औरभी कोई भेंट लेकर शीघ्रही आपके सम्मुख उपस्थित हूंगा ।

बाबू रमेशचन्द्रदत्तजी सी, एस. के तीन उपन्यासोंका अनुवाद हिन्दीभाषामें होचुका है । बंगविजयताका अनुवाद बाबू गदाधरसिंह आर्यभाषापुस्तकालयके अध्यक्षने किया इन महाशयने भलीभांतिसे ग्रंथकारके आशयकी रक्षा की है, तथा भाषाभी अत्यन्त मनोहर है । माधवी कंकणका अनुवाद अत्यन्त नीरस और कठिन

हुआ है। विभक्तियाँ ज्योंकी त्यों रखदीहैं और जीवनप्रभातका अनुवाद मैंने कियाहै। इसके अनुवादका भला बुरापन आप लोगोंकी विचार शक्तिपर निर्भर है॥

कोई १२ वर्ष बीते होंगे कि इस उपन्यासका हिन्दी अनुवाद मैंने किया। यह मेरा प्रथमही उद्यमथा। इस कारणसे अनुवादमें अशुद्धियोंका रहना बहुतायत से सम्भव है। उस समयसे दूसरी बार इसकी कापी भी नहीं शुद्ध कीगई। जैसी लिखी थी, उठाकर वैसीही बम्बई को भेजदी। अस्तु पाठकगणोंको उचितहै कि शब्दोंको शुद्धकरके उपन्यासका पाठकरें।

अब अपने परममित्र जगद्विख्यात सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजीको बारम्बार धन्यवाद देताहूँ कि इन्होंनेही इस उपन्यासको अपने विख्यात "श्रीवेङ्कटेश्वर" प्रेसमें मुद्रितकराकर प्रकाशित किया है।

मुहल्ला दीनदारपुरा-मुरादाबाद
ता. २२। ६। १९०१

निवेदक-
बलदेवप्रसाद मिश्र.

॥ श्रीः ॥

शिवाजी विजय.

अर्थात्

जीवनप्रभात ।

पहला परिच्छेद ।

चौपाई ।

है मन मुदित देहु करताली। उदयउ अरुण सहित करमाली ॥
प्राचीदिशिको लखि शिरनावो । लै प्रसून कर अर्घ्य चढावो ॥

सन् ११०० ई० के आरंभमेंही महमूद गजनवीने भारतवर्ष पर आक्रमण किया, उस समयसे लेकर दोसौ वर्षके बीचमें आर्यावर्त्तका अधिक भाग मुसलमानोंके हाथमें चलागया। उस विपुल और समृद्धिशाली राज्यको पाकर यवनगण एक शताब्दीतक शान्त रहे, उन्होंने विन्ध्याचल और नर्मदा स्वरूप विशाल प्राचीर व परिखा पार होनेका सहसा कोई उद्यम नहीं किया। पीछे तेरहवीं शताब्दीके अन्तमें दिल्लीका युवराज अलाउद्दीन खिलजी आठ हजार सवार लेकर नर्मदा नदीके पार हुआ और खान्देशके पार हो सहसा हिन्दू राजधानी देवगढके सन्मुख आय पहुंचा देवगढका राजा सन्धिकी इच्छा करता था, कि इतनेमें राजपूतोंने बहुत सेना लेकर अल्लाउद्दीनपर चढाई की घोर संग्राम होनेपर हिन्दूसेना हारी, तब देवगढके राजाने बहुतसा धन और इलिशपुर बादशाहको देकर सन्धि करली अल्लाउद्दीन जब दिल्लीका सम्राट् हुआ, तब उसके सेनापति मालिक काफूरने तीन बार दक्षिण देशपर चढाई की और नर्मदाके किनारेसे लेकर कुमारिका अन्तरीप तक सब देशोंको व्यतिव्यस्त कर दिया तथापि अल्लाउद्दीनके मरनेके बाद एक देवगढके सिवाय और सब देश फिर हिन्दुओंके अधिकारमें आगये।

चौदहवीं खीष्ट शताब्दीमें जब तुगलक दिल्लीके सिंहासनपर बैठा तब उसके बेटे यूनासने फिर दक्षिणपर चढाई करके समस्त तैलङ्ग देश अपने अधिकारमें कर लिया और (सन् १३२३ई०)को फिर महम्मद तुगलक नाम धारण कर दिल्लीका सम्राट् बनकर वहाँसे देवगढ आया और देवगढका नाम बदलकर दौलताबाद रक्खा व सब दिल्लीके निवासियोंको वहाँ बसनेकी आज्ञा दी । पीडा और अनेक स्थानोंमें विद्रोह होनेके कारण इसकी यह आज्ञा निष्फल हुई परंन्तु तबभी सम्राट्ने दक्षिण देशको विजय करनेकी वाञ्छा नहीं छोडी । बस दक्षिणके समस्त हिन्दू मुसलमान बेदिल होकर बादशाहके विरुद्ध कार्य करने लगे । तैलङ्ग देशके जय होनेपर उस स्थानके कुछ हिन्दू निवासियोंने विजयनगरमें नई राजधानी निर्माण करके एक विशाल राज्य स्थापन किया (सन् १३३६ई०) और जफीरखां नामक एक यवनने तैलङ्गाधिपतिकी सहायतासे दिल्लीके सेनापति उम्मेदउल्मुल्कको घोर संग्राममें पराजित करके दौलताबादमें एक स्वतंत्र यवनराज्य स्थापित किया (सन् १३४७ई०) समयके हेर फेरसे दौलताबाद और विजयनगर दक्षिण देशमें दो प्रधानराज्य होगये और लगभग तीनसौ वर्षतक दिल्लीके बादशाहोंने दक्षिण देशको अपने अधिकारमें करनेकी और कोई चेष्टा नहीं की ।

किन्तु इस विपदसे निस्तार पाकरभी दक्षिणमें हिन्दू साम्राज्य विपद शून्य नहीं हुआ । क्योंकि हिन्दुओंने अपने घरके भीतर दौलताबाद स्वरूप मुसलमानराज्यको स्थान दिया था । उस समय हिन्दुओंका जातीय जीवन क्षीण और अवनति शील था, विजयी मुसलमानोंका जीवन उन्नति शील और प्रबल था इस कारण एक दूसरेका सत्यानाश करने लगे । ऐसा सुननेमें आता है कि दौलताबादका प्रथम नवाब जाफरखां पहले एक ब्राह्मणका मोल लिया हुआ दास था, ब्राह्मणने बालकका बुद्धिबल देखके उसको स्वतंत्र कर दिया । पीछे जब जाफरखां नवाब हुआ तब उसने उस ब्राह्मणको अपना खजानची बनाया, इसीकारणसे जाफरखां वंश बाह्मिनी (ब्राह्मणीय) नामसे विख्यात था । धीरे धीरे दौलताबादका राज्य बहुत बढकर खंड खंडमें विभक्त हुआ, और एक जगहमें विजयपुर गलखन्द और अहमदनगर तीन मुसलमान राज्य होगये । सन् १५२६ ई० में बामिनी वंश और दौलताबादका राज्य निर्मूल होगया, मुसलमान बादशाहोंने एकत्र

होकर सन् १५६४ ई०में तेलीकोट वा रक्षित गण्डीके युद्धमें विजयनगरकी सेनाको शिकस्त दे उस हिन्दूराज्यकी नीव उखाड दी। दक्षिणमें हिन्दूस्वाधीनता एकप्रकार लोप होगई और विजयपुर गलखन्द व अहमदनगर यह तीन मुसलमान राज्य अतिप्रबल पराक्रमी होगये। कर्णाटक और द्राविडके हिन्दू राज्यगणभी सहज सहज विजयपुर और गलखन्दके अधीन होगये।

सन् १५८० ई० में बादशाह अकबरने फिर समस्त दक्षिण देशको दिल्लीके अधीन करनेकी चेष्टा की और उसकी मृत्युसे पहलेही समस्त खानदेश और अहमदनगर राज्यका अधिकांश दिल्लीकी सेनाके अधिकारमें आगया। उस के पोते शाहजहांने सन् १६३६ ई० के बीचमें अहमदनगरके समस्त राज्यको अपने अधिकारमें कर लिया, बस जिस समयका वृत्तान्त हम लिखने बैठे हैं उस समय दक्षिण देशमें केवल विजयपूर और गलखन्द यह दो पराक्रमी स्वाधीन मुसलमान राज्य थे।

इस समस्त गड़बड़के मध्यमें देशी लोगोंकी अर्थात् महाराष्ट्रीय पक्षकी अवस्था कैसी थी यह हम लोगोंको अवश्य जानना उचित है। मुसलमान राज्यके अधीन अर्थात् प्रथम दौलताबादके और फिर अहमदनगर विजयपुर और गलखन्दके अधीनमें हिन्दुओंकी अवस्था महाहीन नहीं थी। बरन मुसलमानोंके देश शासन—कार्य अधिकतासे महाराष्ट्रियोंकेही बुद्धिबलसे चलतेथे। प्रत्येक राज्यमें कई एक सर्कार और प्रत्येक सर्कार कुछ परगनोंमें विभक्त होती थी और उन समस्त सर्कार और परगनोंमें कभी कभी मुसलमान हाकिम नियुक्त होते परन्तु अधिकतासे मरहटे कारिन्दे लोगही महसूल वसूल करके खजानेमें भेजते थे। महाराष्ट्र देशमें पर्वत अधिकतासे हैं और उस समय इन पर्वतोंपर अगणित किले बने हुए थे। मुसलमान बादशाह वह सब पहाडी किले महाराष्ट्रियोंके हाथमें सौंप देनेसे कुछ भीत नहीं होते थे किलेदार कभी २ राजकोषसे वेतन पाते और कभी किलेकी भूमि जो उनको जागीरमें मिलती थी उसकी ही आमदनीसे दुर्गरक्षाके अर्थ आवश्यकीय व्यय करते थे। इन समस्त किलेदारोंके सिवाय मुसलमान बादशाहोंके अधिनमें अनेक हिन्दू मनसबदार थे, यह लोग सौ, या दोसो, या पांचसौ, या हजार अथवा इससे अधिक सवार सेना

रखतेथे और बादशाहकी आज्ञानुसार सेना लेकर युद्धके समय सहाय करनेको आते और सेनाके वेतन और आवश्यकीय व्ययके अर्थ एक एक जागीर भोग करते थे। महाराष्ट्रियोंकी सवार सेना शीघ्रगति व जल्दबाजीके युद्धमें अनुपम थी और अपने बादशाहोंकी युद्धसमयमें यथोचित सहायता करती थी और कभी कभी वह सेना आपसके घोर झगडोंमें लगजाया करती थी। विजयपुरस्थ सुलतानके अधीनमें चन्द्रराव मोर बारह हजार पैदल सेनाका सेनापति था और उसने सुलतानकी आज्ञासे नीरा और वार्णा नदीके बीचवाले सब देशोंको जय किया था. सुलतानने प्रसन्न होकर वह देश चंद्ररावको नाममात्र कर लगाके जागीरमें दे दिया। और चंद्ररावकी संतानने सात पीढीतक राजा उपाधि धारणकर उस देशका स्वच्छन्द राज्य किया था। इसीप्रकार रावनायक निंबालकर वंशने पुरुषानुक्रमसे फलटन देशके मुखिये होकर उसका राज्य किया। ऐसेही घाटगी वंश मल्लौरी देशमें, मनय वंश मुस्वर देशमें, घरपुरीय वंशका चसी और मुधोलदेशमें, डफले वंश झट्टप्रदेशमें और सावन्त वंश सावंतवाडीमें अवस्थिति करके पुरुषानुक्रमसे विजयपुराधीश सुलतानके कार्यसाधनमें तत्पर रहते थे और कभी कभी आपसमें भी तुमुल (घोर) संग्राम कर बैठते थे। जातिविरोधकी नाईं और कोई विरोध नहीं, पर्वतमय कोंकण और महाराष्ट्रदेशके सर्वस्थानोंमें लडाइ झगडा हुआ करता और पर्वतकी गुफाओं व जंगलोंमें सर्वदा महायुद्ध संघटित होता था। बहुत रुधिर प्रवाह होनाभी उनके लिये बहु लक्षण न था, बरन सुलक्षणही था. जिस प्रकार चलने फिरनेसे हमारा शरीर कठिन और दृढ होताहै इसी प्रकार सर्वदा कार्य व उपद्रवोंके द्वारा जातीय बल और जातीय जीवन रक्षित व परिपुष्ट होताहै. वैसेही महाराष्ट्रियोंके जविन ऊषाकी प्रथम रक्तिमाच्छटानें महाराज शिवाजीका आगमन होनेके बहुत पहले भारत आकाशको रंगदिया था॥

अहमदनगरस्थ सुलतानके अधीनमें यादवराव और भोंसले नामक दो वंश थे सिन्धुर्क्षीरके यादवरावके समान पराक्रमी महाराष्ट्रवंश, समस्त महाराष्ट्र प्रदेशमें और कहीं न था, जो विचारकर देखाजाताहै तो देवगढके प्राचीन हिन्दू राजवंशसेही इस पराक्रमीवंशकी उत्पत्ति ज्ञात होतीहै। सोलहवीं ईसवी शताब्दीमें लक्षाजी यादवराव अहमदनगरस्थ सुलतानके अधीन एक प्रधान सेनापति था,

वह दशहजार सवारोंका सेनापति होकर एक बडी जागीर भोग करताथा। भोंसले- वंश यादवरावके समान उन्नत न होकरभी एक प्रधान और क्षमताशाली वंश था इसमें संदेह नहीं। इस जगह केवल इतनाही कहना आवश्यक है कि, यादवरावके वंशसे महाराज शिवाजीकी माता और भोंसले वंशसे उनके पिताकी उत्पत्ति हुई थी। उपन्यासके प्रारम्भमें देश, इतिहास और लोगोंकी अवस्था संक्षेपसे कही. मैं आशा करताहूं कि, इससे पाठकगण अनमने न होंगे।

दूसरा परिच्छेद २.

रघुनाथजी हवालदार.

चौपाई।

कंचनवर्ण विराज सुवेशा। कानन कुंडल कुंचित केशा॥
कटि तूणीर पीतपट बाँधे। कर शर धनुष वामवर काँधे॥

(गोसाईं तुलसीदास.)

कोंकण देशमें वर्षाकालके समय प्रकृति भयंकर रूप धारण करती है, सन् १६६३ ई० के वसंत कालमें एक दिन सायंकालके समय वह घोर घटा और भीषण सौन्दर्य मानो दशगुण वृद्धिको प्राप्त हुआहै। सूर्य भगवान् अभी अस्त नहीं हुए हैं, तोभी समस्त आकाश बडे बडे मेघोंसे ढकरहाहै, और चारोंओरमें पर्वतश्रेणी व अनन्त वन निबिड अंधकारसे आच्छादित होरहा है। पर्वत, वन, तराई, मैदान, दरीचे, आकाश, वा वृक्षोंमें शब्द मात्र नहीं, मानो जगत् शीघ्रही प्रचण्ड पवन आता हुआ जान भयसे व्याकुल होगया है, निकटस्थ पर्वतोंके आने जानेके मार्ग कुछेक दृष्टि आतेहैं, दूरके पेडोंसे ढके हुए भूधर केवल अतिकाले जान पडते हैं, और पर्वतोंकी तलैटियोंमें महा अंधकार छा रहा है। पर्वतसे बहती हुई छोटी छोटी नदियें कहीं तो चांदीके गुच्छोंके समान दृष्टि आती हैं, कहीं अंधकारमें लीन होकर केवल शब्द मात्रसे अपना परिचय दे रहीं हैं।

उसी पहाडके ऊपर मार्गमें केवल एक सवार वेगसे घोडेको चलाये हुए जा रहा है। घोडेका समस्त शरीर स्वेदपूर्ण और धूपसे तर होरहा है, अश्वारोहीके भी शरीर पर धूल और कीचड पडीहै, देखनेसे ज्ञात होता है कि, वह बहुत दूरसे चला आता है। उसके हाथमें बरछा, म्यानमें खड्ग, बाँये हाथमें घोडेकी लगाम और बायें कंधेपर ढाल है, शरीर उज्ज्वल और लोहेके बख्तरसे ढका है। पहरावा और पगडी महाराष्ट्रियोंके समान है । अश्वारोहीकी उमर अठारह वर्षकी होगी, महाराष्ट्रियोंकी अपेक्षा उसका शरीर ऊंचा और गौरवर्ण है, किन्तु परिश्रम या धूपसे इसी अवस्थामें उसके मुखका उज्ज्वल वर्ण कुछेक श्याम और शरीरका गठन सुडौल हुआ है। युवाका ललाट ऊंचा, दोनोंनेत्र ज्योतिः परिपूर्ण, मुखमंडल उदारताके साथ अतिशय तेजपूर्ण है । युवक अश्वको कुछेक विश्राम देनेके अर्थ उसपरसे छलांग मारकर कूदपडा । लगाम वृक्षपर फेंक, बरछा वृक्षकी शाखामें अटकाकर रखदिया, हाथसे माथेका पसीना पोंछकर और निबिड काले काले बालोंको उन्नत ललाटके पीछे डाल वह कुछ देरतक आकाशकी ओर देखता रहा ।

आकाशका आकार अतिभयानक है. अभी बडी आंधी आवेगी इसमें संशय नहीं। मंद मंद वायु चलनी आरंभ हुई है, अनन्त पर्वत और वृक्ष लताओंसे गंभीर शब्द होताहै. और कभी मेघोंका गर्जनभी सुनाई आताहै । युवकके सूखे होठोंपर दो एक बूंद वृष्टिका जलभी गिरा । यह जानेका समय नहीं है जबलों आकाश निर्मल न होजाय तबतक कहीं ठहरना उचित है । परन्तु युवकको यह चिन्ता करनेका अवसर नहीं था, वह जिस प्रभुके यहां कार्य करताथा वह कोई कारण नहीं सुनता था, इसी कारण युवकको भी विलम्ब या आपत्ति करनेका अभ्यास नहीं था । फिर बरछा हाथमें ले और कूदकर अश्वकी पीठपर चढबैठा । उसकी तलवार घोडेपर चढनेसे झनझन शब्द करने लगी और युवकने एक क्षणतक आकाशको देखा फिर तीरके समान वेगसे घोडा दौडाकर उस निःशब्द पर्वतप्रदेशमें निद्रित प्रतिध्वनि को जगानेके अर्थ चला।

थोडेही विलम्बके उपरान्त भयानक आंधी चलनी आरंभ हुई । आकाशके एक छोरसे दूसरे छोरतक दामिनी दमकने लगी, और मेघका गर्जना उस

अनन्त मैदानमें शतशतबार शब्दायमान हुआ। इसीसमय करोड राक्षसोंके बलकी निन्दा करनेवाला पवन भीषण गर्जन करताहुआ चलनेलगा मानो उन अनन्त पर्वतोंको जडसे कंपाने लगा। बार बार शत शत पर्वतोंकी असंख्य वृक्ष श्रेणीसे कर्णभेदी शब्द उठने लगा, झरने और तरंगिनियोंका जल उफन कर चारोंतरफ फैलने लगा, क्षण क्षणमें बिजलीके चमकनेसे बहुत दूर पर्यन्त यह स्वाभाविक घोर विप्लव दिखाई देन लगा और बीच बीचमें बादलका गर्जना जगत् को कंपित और खलबलाये देता था। वृष्टिने मूसलाधारसे गिरकर पर्वत व वन और तलैटियोंको जलमय और झरने व नदियोंको उफनाय दिया।

वह अश्वारोही किसीसे न रुककर वेगसे चलने लगा, कभी बोध होता था मानों अश्व और अश्वारोही वायुवेगसे पर्वतके नीचे गिरेंगे। कभी अंधकारमें फलांग कर जल स्रोतपार होनेके समय दोनोंही उन कठिन पत्थरोंके ऊपर गिर पडतेथे, एक स्थानमें वायु पीडित वृक्ष शाखाके सजोर आघातसे अश्वारोहीकी पगडी छिन्न भिन्न हुई और उसके माथेसे दो एक बूँद रुधिर भी गिरने लगा। परन्तु जिस व्रतमें वह व्रती हुआ है उसमें विलम्ब करना दु:साध्य है, बस युवकने एक पलकोभी चिन्ता न की बरन जहांतक संभव होसका सावधानीसे अश्वको चलाने लगा। तीन चार घडी मूसलधार वृष्टि होनेके उपरान्त आकाश निर्मल हो चला, वृष्टिभी थमगई अस्ताचल चूडावलम्बी सूर्यके प्रकाशसे उन पर्वतोंकी और वर्षासे भीगे वृक्षसमूहकी चमत्कार शोभा दृष्टि आई। युवकने दुर्गके समीप पहुँचकर घोडेको थमाया और बिखरे हुए बालोंको सुंदर चौंडे माथेसे हटाकर नीचेको दृष्टि की। आहा! क्या अनुपम शोभा है। पहाडोंपर पहाड. जहांतक दृष्टि पहुंचती है दो तीन हजार ऊंचे शिखर बराबर दिखाई देते हैं, उन पर्वत श्रेणीकी बगलमें चारों ओर नहाये हुए हरे रंगके अनन्त वृक्ष सूर्यके प्रकाशसे अनन्त शोभा धारण कर रहे हैं। बीच बीचमें झरने सौगुने बढकर एक शृंगसे दूसरे शृंगपर नृत्य कर रहे हैं, सूर्य भगवान्‌की सुवर्णवत् किरणोंसे अतीव शोभा पारहे हैं। प्रति पर्वत और शिखरके ऊपर सूर्यकी किरणोंने अनेक रूपका रंग धारण कियाहै, जगह जगह झरनोंपर इन्द्रधनुष दृष्टि आते हैं आकाशमें बडे बडे इन्द्रधनुष नानाप्रकारके रंगोंसे रंग रहे हैं

और बहुत दूरकी वायुसे पीडित हो मेघ वृष्टिरूपसे गल रहे हैं। युवक क्षणभर इस शोभासे मोहित हुए, फिर सूर्यकी ओर अवलोकनकर शीघ्र दुर्गके निकट पहुँच गये। अपना पता बताकर दुर्गमें प्रवेश किया, द्वारके भीतर प्रवेशकर युवकने देखा कि, सूर्य भगवान् अस्त हो रहे हैं युवकने जैसे ही दुर्गमें प्रवेश किया कि, वैसेही झन झन शब्द करके किलेका द्वार बंद होगया।

द्वाररक्षकगण द्वार बंद करके युवककी ओर देखकर कहने लगे " आप अधिक विलम्बमें आये, जो क्षणभरकी विलम्ब और होती तो आजकी रात कोटके बाहर-ही आपको बितानी पडती"।

युवकने हँसके उत्तर दिया "भला हुआ जो एक मुहूर्त्तकी विलम्ब नहीं हुई भवानीके प्रसादसे जो प्रतिज्ञा प्रभुके निकट की है उसका पालन करूंगा, मैं अभी किलेदारके निकट जाय अपने महाराजकी आज्ञा प्रगट करता हूं"।

द्वाररक्षक—"किलेदारभी आपकी ही बाट देखरहे हैं"। "तो मैं जाता हूं" यह कहकर युवकने राजगृहकी ओर प्रस्थान किया।

अनुमति पाकर युवक किलेदारके महलमें गये और शिरनवाय अपनी कमरसे फेंट खोल कुछ चिट्ठियें उनके हाथमें देदीं। किलेदार माउली जातिवाला शिवाजीका एक विश्वासी वीर था, वह भी उन पत्रोंकी आश लगाये था इस कारण दूतकी ओर न देखकर प्रथम मन लगाके उन पत्रोंको पढने लगा।

पत्रोंके पढनेसे दिल्लीसम्राट्के संग युद्धका प्रारंभ होना, युवककी अवस्था, किलेदार किस रीतिसे महाराज शिवाजीकी सहायता करसकेगा और किस विषयमें उनकी क्या क्या आज्ञा है यह सब बातें विदित होगयीं। कुछ विलम्बमें उन पत्रोंको पढकर किलेदारने पत्र लानेवालेकी ओर देखा। अठारह वर्षके युवकका बालकके समान सरल उदार मुखमण्डल और नेत्रोंपर लटकते हुए घूँघरवाले काले बाल, दृढ व सुडौल शरीर और चौडा माथा देख किलेदार एक बार तो चकित होगया, कभी पत्रीकी ओर कभी युवाकी ओर मर्मभेदी तीक्ष्ण नेत्रोंसे देखने लगा और कहा, "हवालदार तुम्हारा नाम रघुनाथजी है ? और तुम राजपूत हो ?"।

रघुनाथजीने प्रसन्नतासे शिर नवाकर उस प्रश्नका उत्तर दिया कि "हां"।

किलेदार " तुम आकार और उमरमें बालकके समान हो " (कुछेक क्रोधसे रघुनाथके नयन लाल हुए, यह देखकर किलेदार नम्रभावसे कहने लगा) "परन्तु मैं आशा करताहूं कि कार्यके समय विमुख नहीं होगे " ।

रघुनाथ कुछेक क्रोधकम्पित स्वरसे बोले "यत्न और चेष्टा करना मनुष्यका काम है । सो इसमें मुझसे त्रुटि न होगी और जय पराजय तो माता भवानीके अधीन है " ।

किलेदार "तुम सिंहगढसे तोरण दुर्गमें इतना शीघ्र किस प्रकारसे आये ? "

युवकने स्थिरभावसे उत्तर दिया " मैंने महाराजसे ऐसेही प्रतिज्ञा की थी " ।

किलेदारने इस उत्तरसे प्रसन्न हो कुछ हँसकर कहा "यह पूछना ठीक है तुम्हारे आकारसेही ज्ञात होताहै कि, तुम दृढ हो " रघुनाथके सब वस्त्र भीग रहेथे शरीर भी गीला था और माथेमें कुछेक घाव भी होरहा था" ।

फिर किलेदार सिंहगढ और पूनाकी समस्त अवस्था और महाराष्ट्री, मुगल, राजपूतोंकी अवस्था व संख्या एक एक करके बूझने लगा । रघुनाथ जहांतक जानते थे उत्तर देतेगये ।

किलेदारने कहा "कल प्रातःकालही मेरे पास आना, मैं पत्रादि लिख रक्खूंगा और शिवाजीसे मेरानाम लेकर कहना, कि आपने जिस तरुण हवालदारको इस कठिन कार्यमें नियत किया है वह हवालदारी कार्यके सब भाँति योग्य है" । इन प्रशंसा वाक्योंको रघुनाथने मस्तक नवाके कृतज्ञतासे स्विकार किया ।

रघुनाथ बिदा लेकर चलेगये, रघुनाथकी इस प्रकार परीक्षा करनेका यही उद्देश था, कि किलेदार महाराज शिवाजीको अतिशय गूढ राजकीय संवाद और कुछ गुप्त मंत्रणा भेजने को था जो पत्रद्वारा नहीं भेजी जा सक्ती थी इस कारण किलेदार यही परीक्षा करता था कि, पत्र शत्रुके हाथमें भी पडसक्ता है । रघुनाथसे वह संदेशा कहना उचित है अथवा नहीं, धन बल अथवा किसी उपायसे वैरीके वशमें हो गुप्तमंत्र शत्रुसे प्रकाश करना रघुनाथके पक्षमें संभव है या नहीं । परीक्षा भी शेष होगई । रघुनाथके बाहर जाने उपरान्त किलेदार हँसकर आपही आप बोला "महाराज शिवाजी इस विषयमें असाधारण पंडित हैं, क्योंकि उन्होंने जैसा कार्य था वैसाही मनुष्य भेजा" ।

तीसरा परिच्छेद ।

सरयूबाला।

सजनि हौं दरशन पाये गैल ।
रूपमाल सँग तडित लता जनु, हृदय गई है शैल ॥
आधंचल खसि, आधवदन हँसि, आधिहि नयन तरंग ।
आध उरोज, दुकूलबीच लखि, धरिके दहेउ अनंग ॥ १ ॥
इक तनुगोरा, कनक कटोरा, नयन श्यामसों श्याम ।
हर २ कह और समुझि शत्रुनिज, पास पसारयो काम ॥२॥
दशन पाँति मुतियन लड मानो, मृदु २ बोलत बोल ॥
हेबलदेव मिश्रतोहिं देखत, बेंच दियो मनमोल ॥ ३ ॥

रघुनाथ किलेदारके निकटसे बिदा लेकर भवानी देवीके मंदिरकी ओर गमन करने लगे । इस दुर्गके जय करने उपरान्त थोडेही दिन पीछे महाराज शिवाजीने यहां एक भवानीकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित की थी और अम्बर देशके रहनेवाले ऊंचे कुलके ब्राह्मणको बुलाकर देवसेवामें नियोजित किया था । युद्धकालमें बिना देवीजीकी पूजा किये कोई किसी कार्यमें लिप्त नहीं होता, इससेही देवीको पूजा देनेके अर्थ और पुरोहितके निकट युद्धका फलाफल जाननेके कारण रघुनाथ वहां गये थे ।

रघुनाथ उल्लासके सहित एक युद्धगीत मीठे स्वरसे गाते गाते मंदिरकी ओर आरहे हैं, मंदिरके निकट पहुँचनेसे रघुनाथकी दृष्टि छतपर पडी जो कि, मंदिरसे सटी हुई थी । वह खडे होगये और सहसा उनका शरीर कंटकित होआया, देखा तो उस छतके ऊपर एक अनुपम लावण्यमयी चौदह वर्षकी लडकी इकली बैठी है, हाथके ऊपर कपोल रक्खे हुए अस्ताचलकी लाल शोभा अनिमेष नेत्रसे निहार रही है । कन्याके रेशमको लजाने वाले स्वच्छ अतिकृष्णकेशपाश, कपोल हाथ और पीठपर पडे हुए हैं और उन्होंने उज्ज्वल मुखमण्डल और भ्रमर विनिन्दित दोनों नेत्रोंको कुछ एक ढकलिया है । भ्रूयुगल मानों लेखनी द्वारा बनाई जाकर

अतिसुंदर बंकिम भावसे ललाटकी शोभा बढारही हैं। दोनों अधर पतले और रक्तवर्ण हैं, रघुनाथ उन्मत्तकी नाईं होकर उन्हीं अधरोंकी ओर देख रहे हैं। उसके हस्त सुगोल और अतिशय गौर वर्ण हैं, सुवर्णके खंडुवे और कंकण द्वारा सुशोभित है। कन्याके ललाटमें आकाशकी रक्तिमाच्छटा गिरकर उस तपेहुये सोनेके वर्णको और अधिक उज्ज्वल करती है, कंठ और कुछेक ऊंची छाती पर एक हार बहार दिखारहाहै। रघुनाथ! रघुनाथ! सावधान! तुम राजकार्यको आयेहो. तुम एक साधारण सिपाहीहो। उसकी ओर मत देखो, उस मार्गमें मत जाओ! परन्तु रघुनाथ यह कुछ विचार नहीं करते, वह मोहितके समान इकटक नेत्रसे उस सायंकालके आकाश पटमें अंकित अनुपम चित्रकी ओर देख रहेथे उनका हृदय उफनता था, पहले जो बात कभी नहीं जानी थी आज अचानक उस नई बातका उदय होकर वारम्वार अतिजोरसे हृदयमें आहत होता था, कभी कभी कोई दीर्घ श्वासभी बाहर आता था। यौवनके प्रारंभमें प्रथम प्रेमके असहनीय वेगसे उनका शरीर कंपित होरहा है रघुनाथ इस समय उन्मत्त हैं।

जबतक देखा गया, रघुनाथ पत्थरके समान अचल होकर वह सुंदर प्रति मूर्ति निरीक्षण करने लगे। वैकालिक आकाशकी शोभा क्रमशः लीन होगई. संध्याकी छाया धीरे धीरे गाढतर होकर उस प्रति मूर्तिके ऊपर पडने लगी। परन्तु रघुनाथ अबतक खडे हैं।

संध्याके समय कन्या घरमें जानेके लिये उठी देखा तो निकटही एक अतिसुंदर युवक खडे हो उसकी ओर इकटक लोचनसे देखते हैं। लज्जासे कन्याका मुख रंग गया और उसने शिर नीचा कर लिया। फिर देखा तो युवक उसी प्रकार छातीपर बाँया हाथ रक्खे खडे हैं, घूँघरवाले केश युवकके ऊंचे माथे और ज्योतिपूर्ण नेत्रोंको ढक रहे हैं म्यानमें खड्ग, दांयें हाथमें बरछा और अनिमेष लोचनोंसे अबतक उसकीही ओर देख रहे हैं। एक मुहूर्ततक बालाका हृदय कांपता रहा, उसका मुखमंडल लज्जासे लाल होगया और उसी समय घूँघट काढकर घरमें चली गई।

उस समय रघुनाथको चैतन्यता आई और माथेसे दो एक बूँद स्वेदमोचन किया, मंदिरके पुजारीसे साक्षात् करनेको धीरे धीरे चिन्तितभावसे मंदिरमें प्रवेश

कर पुजारीके अर्थ अपेक्षा करने लगे । इसी अवसरपर हम पुजारीका परिचय देंगे ।

प्रथमही कह आये हैं कि, पुजारी अम्बरदेशके रहने वाले एक कुलीन राजपूज्य ब्राह्मण थे उनका जनार्दनदेव नाम था वह अंबरनरेश प्रसिद्ध जयसिंहके एक सभासद थे उन्होंने शिवाजीके बहुत कहने सुनने और जयसिंहके परामर्शसे महाराज शिवाजीके सर्व प्रथम जय किये हुए तोरण दुर्गमें आगमन किया था । उनके पुत्र कन्या कोई नहीं था किन्तु देश त्यागन करनेके थोडेही दिन पहले उन्होंने एक क्षत्रियकन्याके लालन पालनका भार लिया था । उस कन्याका पिता जनार्दनदेवका बालकपनहीसे परमबंधु था, कन्या की माता भी जनार्दनकी स्त्रीको बहन कहकर पुकारती थी । सहसा उस कन्याके पिता माताका देवलोक होनेसे निःसंतान जनार्दन और इनकी भार्याने इस शिशु क्षत्रिय बालाके लालन पालनका भार लिया और तोरण दुर्गमें लायकर अपनी संतानवत् पालन करने लगे ।

जनार्दनकी भार्याके परलोक होनेके पछि वृद्धके स्नेहकी सामग्री केवल एक कन्या सरयू रही, सरयूबालाभी जनार्दनदेवको पिता कहकर पुकारती और स्नेह करती थी । कालक्रमसे सरयूबाला निरूपमा लावण्यवती हो उठी इससे दुर्गके सकल शास्त्रज्ञ ब्राह्मण जनार्दनदेवको कण्वमुनि और उनकी पालीपोसी हुई अनुपमा लावण्य मयी क्षत्रियबालाको शकुन्तला कहके परिहास करते थे । जनार्दनदेवभी कन्याकी सुंदरता और स्नेहसे प्रसन्न होकर राजस्थान छोडनेका दुःख भूल गये थे ।

देवालयमें रघुनाथके थोडी देरतक बैठनेपर जनार्दनदेव मंदिरमें आये । उनकी उमर लगभग पचास वर्षके होगई थी, आकार दीर्घ था, वृद्ध होनेपर भी बलिष्ठ थे, नेत्र दोनों शान्तिरससे पूर्ण थे और श्वेतदाढी मूछोंने विशाल वक्षस्थलको आवरण कर लिया था । वर्ण गौर, कंधेमें यज्ञोपवीत लटक रहा था, जनार्दनदेवका पुजारीके समान पवित्र शान्तिपूर्ण मन और बालकके समान सरल हृदय उनका मुख देखतेही बोध होता था । जनार्दन धीरे धीरे मंदिरमें आये उनको देखतेही रघुनाथ आसन त्यागकर खडे होगये । संक्षेपसे मिष्टालाप करके दोनों आसनपर बैठे, तिसके पीछे जनार्दन, महाराज शिवाजीका कुशल समाचार

पूछने लगे। रघुनाथको जहांतक ज्ञात था युद्धका वृत्तान्त कह गये और शिवाजीका प्रणाम निवेदन कर महंतके हाथमें कुछ सुवर्णमुद्रा (अशरफी) दीं और कहा।

" महाराज शिवाजी इससमय मुगलोंसे तुमुल युद्ध करनेको नियुक्त हुए हैं, इस कारण आप उनकी जयके अर्थ भवानीके निकट पूजा कीजिये। बस यही उनकी प्रार्थना है। क्योंकि देवीके प्रसाद बिना मनुष्यकी चेष्टा वृथा है "।

जनार्दनदेव गंभीरस्वरसे उत्तर देने लगे " सनातन हिन्दूधर्मकी रक्षाके अर्थ इसप्रकारके मनुष्योंको चिरकालही यत्नकरना उचित है उसी धर्मके प्रथम स्वरूप महाराज शिवाजीकी विजयके अर्थ अवश्य ही पूजादूंगा। आप महात्मासे कह दीजिये कि, इस विषयमें कोई कसर न होगी "।

रघुनाथ " प्रभुने देवीके चरणोंमें एक और निवेदन किया है कि, हम वीरतर युद्धमें प्रवृत्त होनेका कुछ फलाफल प्रथमही जाना चाहते हैं। आपके समान दूरदर्शी दैवज्ञ इस विषयमें अवश्यही उनकी मनोकामना पूर्ण करसकैंगे "।

जनार्दन क्षणभर नेत्र बंद कररहे, फिर गंभीर स्वरसे बोले " रात्रिको देवीके चरणकमलोंमें महाराजकी प्रार्थनाको निवेदन कर कलको इसका उत्तर दूंगा "।

रघुनाथ धन्यबाद करके बिदाहोनाही चाहते थे कि, इतनेमें जनार्दन बोले " तुम्हें पहले इस दुर्गमें कभी नहीं देखा क्या आज प्रथमही इस स्थानमें आगमन हुआ है?"

रघुनाथ-" हां प्रथमही आया हूं "।

जनार्दन-"दुर्गमें किसीसे पहँचान है? ठहरनेका स्थान है? "।

रघुनाथ-"पहँचान नहीं है, परन्तु किसी जगह रात्रिकटही जायगी कल प्रभात होतेही तो चला जाऊंगा।"

जनार्दन-" आप क्यों वृथा क्लेश सहन करते हैं? "

रघुनाथ-" महाराजके अनुग्रहसे कोई क्लेश नहीं होगा हमें सदा इसी प्रकार रात्रि बितानी पड़ती है।"

युवककी यह वार्ता सुन और सरल उदार आकृति देखकर जनार्दनदेवके अन्तःकरणमें वात्सल्यभाव उदय हुआ और बोले-

" वत्स! युद्धसमयका क्लेश अनिवार्य है, परन्तु अब क्लेश सहनेकी कोई आवश्यकता नहीं। हमारे इस देवालयमें ठहरिये, मेरी पालन कीहुई राजपूतबाला तुम्हारे

भोजनका उद्योग कर देगी । फिर रजनीमें विश्राम पाकर कल देवीकी आज्ञा महाराज शिवाजीके निकट ले जाना । ”

रघुनाथकी छाती सहसा धड़कने लगी उनके हृदयमें सहसा किसीने अति जोरसे आघात किया । यह पीडा है ? नहीं ? आनंदका उद्वेग । राजपूत-बाला कौन ? यह क्या वही सायंकालीन आकाशपटमें अंकित मनोहर चित्र है ? रजनीके आगमनसे आकाशपटमें वह चित्र लीन होगया है, किन्तु रघुनाथके हृदय-पटसे वह आनंदमूर्ति कभी क्या कभी भी लीन नहीं होगी ।

चौथा परिच्छेद ।

कण्ठहार ।

साधन मंत्र कि देह निपातन ।

एक पहररात बीतनेपर सरयू बालाने पिताकी आज्ञासे पाहुनेके लिये भोजन तैयार किया, रघुनाथ आसनपर बैठ गये, सरयू पीछे खडीरही । महाराष्ट्रदेशमें निमंत्रित पुरुषको परिवारकी कोई स्त्री आनकर भोजन कराती है, यह रीति वहां अबतक है ।

रघुनाथ बैठ गये, परन्तु भोजन करना तो दूर रहा चित्तकी भी नहीं सँभालकर सके, श्वेतपत्थरके बनेहुए “गिलास” में सरयू मीठा “सरबत” लाई, रघुनाथने पात्रधारिणीकी ओर उत्कण्ठित चित्तसे देखा मानो उनका जीवन प्राण दृष्टिके सहित मिल उस कन्याकी ओर धाया । चार आंखोंके मिलतेही सरयूका मुखमंडल लाजसे रक्तवर्ण होगया, लज्जावती आंख मूँद मुख नीचे करके धीरे धीरे चली गई । रघुनाथभी लज्जित होकर मौन रहगये ।

सरयू फिर एक पात्र लाई, रघुनाथ असभ्य नहीं हैं, वह मुख नीचे करे रहे अबके उन्होंने केवल सरयूका सुंदर बाजूबंदसे शोभित हाथ और कंकनजडित सुगोल बाहुमात्र देखपाया इससे हृदय उफन चला और उन्होंने एक लम्बी श्वास ली कि, जिसको सरयूने सुनलिया, उसका हाथ कुछेक कांपनेलगा, वह सहज सहज वहांसे निकल गई ।

भोजन समाप्त हुआ रघुनाथके लिये बिस्तर बिछा; रघुनाथने दीपक बुझाय दिया परन्तु सोये नहीं, गृहका द्वार धीरे धीरे खोलकर तारागणोंके प्रकाशमें छतपर टहलने लगे ।

उस गंभीर अन्धकारमें तारागणाविभूषित आकाशकी ओर स्थिर दृष्टि करके यह थोडी उमरवाला वीर क्या चिन्ता करता है ? निशाकी छाया धीरे धीरेसे गंभीर होती जाती है उस शीतल छायामें मनुष्य, जीव, जन्तु, शयन कररहे हैं कोटमें शब्द मात्र नहीं, केवल बीच बीचमें पहरेदारोंका शब्द सुनाई आता है और पहर पहरमें घंटेकी घन्नाहट उस निस्तब्ध दुर्ग और चारों ओरके पर्वतोंमें प्रतिध्वनित होती है ।

इस गंभीर अंधकार रजनीमें रघुनाथ जाकर क्या चिन्ता करते हैं ? रघुनाथके जीवनकी यही प्रथम चिन्ता और इस हृदयकी यही प्रथम घबडाहट है, यह चिन्ता यह उत्कण्ठा रात्रिमें पूरी होने योग्य नहीं, तब क्या जीवनके अंतमें पूरी होगी ? इतने दिन रघुनाथ बालकथे, आज मानों सहसा उनके शान्त और नील जीवनाकाशके ऊपर हो विद्युत्‌रूपिणी एक प्रतिमूर्ति निकल गई. रघुनाथके नेत्र और हृदय दोनों दग्ध होगये । सैकडों हजारों वार वही आनंदमयी मूर्ति मनमें फिरने लगी, वह चित्र लिखित भ्रूयुगल, वह कृष्ण उज्ज्वल नेत्र, वह पुष्पविनिन्दित मधुमय दोनों अधर, वह निबिड केशपाश, वह सुगोल बाहु युगल, एक एक करके रघुनाथके मनमें जाग्रत् होने लगे, और रघुनाथ उन्मत्तहो उसी चित्रकी ओर देखनेलगे । यह आनंदमयी कन्या क्या वह पा सकेंगे ? रघु-नाथ ! क्या यह आयत स्नेह पूर्ण नयन, यह जवाविनिन्दित अधर, यह चित्त-हारी अतुललावण्य तुम्हें मिलेगी ? तुम केवल एक साधारण हवालदारहो जना-र्दनदेव कुलीन राजपूज्य हैं, उनकी कन्याको राजा लोगभी चाहते हैं । क्यों इस प्रकारकी आशासे वृथा हृदयको दुखाते हो ? देखो रघुनाथ ! हम फिरभी कहते हैं कि क्यों इस वृथा तृष्णासे हृदय दग्ध करते हो ?

मध्याह्नकालीन घंटा बजा, परन्तु रघुनाथकी यह विषम चिन्ता समाप्त नहीं हुई । हाथ पै कपोल रखकर एकाकी निःसंदेह उस दुर्भेद अंधकारकी ओर देख रहे हैं । इस शान्त रजनीमें क्या उनके हृदयमें प्रलयकालकी प्रचण्डवायु चल रही है ?

किन्तु यौवन कालमें आशाही बलवती होती है, हमें शीघ्र निराशा नहीं होती, हम आशासे असाध्यको साध्य और असंभवको संभव समझते हैं। रघुनाथ आकाशकी ओर वारंवार देखकर क्या चिन्ता करते हैं ? थोडी विलम्ब होने पर सहसा खडे होगये, अपने हृदयके ऊपर दोनों हाथ रख गर्व सहित थोडी देरतक खडे रहे और मनही मन कहने लगे–

"भगवान् सहायहों अवश्य कार्य सिद्ध होगा। यश, मान, कीर्ति, मनुष्यके वश है फिर मुझे क्यों प्राप्त होने कठिन होंगे ? मेरा शरीर क्या औरसे दुर्बल है ? वाहोंमें क्या औरोंसे कम बल है ? देखूं कार्य सिद्ध करके मैं तुम्हारे अयोग्य न हूंगा, यह प्रतिज्ञा निभेगी या नहीं. हे सरयू मैं तुम्हारे अयोग्य न हूंगा। प्यारी ! तुम्हें पायकर फिर और कहानीका मिसकर यह वार्त्ता तुमसे कहूंगा। तुम्हारे दोनों सुंदर हाथ धारण कर स्वर्गके सुखको तुच्छ मानूंगा उस समय अपने हाथसे इन सुंदर केशोंमें मोतियोंकी माला पहराऊंगा। और यह सुंदर विश्वविनिन्दित दोनों अधर"–रघुनाथ ! रघुनाथ ! उन्मत्त मतहुए जानो।

फिर रघुनाथ कुछ शान्ति प्राप्तकर शयन करने आये। गृहके भीतर न जाकर उस छतपर जहां पहलेदिन सरयू बैठी थी, आये और देखा–क्या देखा ? एक कंठहार पडा है, दो दो मोतियोंके बीच बीचमें एक एक मूँगापिरोया हुआ था ऐसी मुक्तमालको पडी देख रघुनाथने पहिचान लिया। जो माला पहले दिन संध्याकाल सरयू कंठ और छातीमें धारण कर रही थी, ज्ञात होता है कि वही माला असावधानीसे यहां गिरपडी है। रघुनाथ आकाशकी ओर देख कहने लगे, "भगवान् ! यह क्या मेरी आशाके पूर्ण होनेका प्रथम लक्षण दिखाया ? फिर इन्होंने सहस्रों बार उस मालाको चूमा व फिर वस्त्रोंके नीचे छातीपर पहन लिया ! फिर शीघ्र उसी स्थानपर सोगये। परन्तु नींदमें स्वप्न और स्वप्नोंमें सरयू रघुनाथको दिखाई देतीथी।

दूसरे दिन भोरही रघुनाथ जागे। जनार्दनदेवके निकट भवानीकी आज्ञा सुनी–" मुसलमानोंसे युद्धमें जय स्वधर्मियोंसे युद्ध करनेमें पराजय होगी" पीछे किलेदारसे कुछ चिट्ठियें और युद्धसंबंधी उपदेश लेकर रघुनाथ चलेगये।

दुर्ग त्यागनेसे प्रथम एकबार सरयूको देखा, जब सरयू मंदिरमें आई, धीरे धीरे आप भी वहां चलेगये और हृदयकी घोर उत्कण्ठांको थोडासा दबाय कुछ कंपित स्वरसे बोले।

सुशीले! कल रात्रिके समयमें छतपर पडा हुआ हमने एक हार पाया है वही देने आयाहूं सो अनजानेका यह ढीठपन तुम क्षमा करदेना।

यह विनीत वचन श्रवणकर सरयूने फिरकर देखा वह कमनीय उदार मुखमंडल, वह केशोंसे ढका उन्नत ललाट और उज्ज्वल व कृष्ण दोनों नेत्र, तरुण योद्धाका उन्नत गठन देखकर एक साथ रमणीका शरीर कंपित हुआ, गौर मुखमंडल लाल हो आया? सरयू उत्तर न देसकी।

सरयूको मौन देखकर रघुनाथ धीरेधीरे बोले; "यदि आज्ञा हो तो यह सुंदर माला तुम्हें पहिराकर अपने जीवनको सफल करूं"।

सरयूने शरमीली दृष्टिसे एकबार रघुनाथकी ओर देखा और उन विशाल नेत्रोंकी जरासी दृष्टिसे रघुनाथका हृदय हजार टुकडे हुआ उसी समय रंगीले मुखवाली लज्जाने फिर उसके नेत्र मूँदिये।

मौनहीको सम्मतिका लक्षण जानकर रघुनाथने धीरेसे वह कंठहार सरयूके गलेमें डाल दिया, परन्तु कन्याका पवित्र शरीर नहीं छुआ।

कन्याका शरीर रोमाञ्चित हो आया और वह पवनसे चलायमान हुए पत्तेकी नांई थर थर कांपने लगी, वह धन्यवाद क्यादे उसके कंपित मुखसे वचन भी नहीं निकला।

रघुनाथने सरयूका मौन देखकरके ही अपनेको धन्य माना। कुछ विलम्ब उपरान्त रघुनाथ खेद युक्त स्वरसे बोले—"अब पाहुनेको बिदा दो" इसवार सरयूने लाजको लजाके धीरे धीरे रघुनाथकी ओर देखा और सहज सहज पृथ्वीकी ओर नेत्र फिराके अति धीरे धीरे बोली "तुमने मुझपर बडी कृपा की, इस कोटमें फिर भी कभी आना होगा?

ओह! प्यासे चातकके लिये पहली वर्षा हुई स्वाति बूँदकी नांई, *मार्ग भूले* यात्रीके लिये उषाकी प्रथम ललाईकी नांई सरयूके मुखसे प्रथम निकली इस बातने रघुनाथका हृदय आनंदकी लहरसे सींचदिया! यह बोले।

सुदरी ! मैं पराया दास हूं युद्ध मेराकाम है, फिर भला आने न आनेकी बात कैसे कहूं ? परन्तु जबतक जीवित रहूंगा, तबतक यह हृदय शुष्क नहीं होगा, तबतक तुम्हारी सुजनता, तुम्हारा यत्न, तुम्हारी देवनिन्दितमूर्ति पलभरको भी नहीं भूलूंगा। देखो तुम्हारे पिता यहींको चले आते हैं, अब मैं बिदा होताहूं, कभी कभी मुझ निराश्रय दरिद्र पथिकका भी स्मरण करना योग्य है। सरयू उत्तर नहीं देसकी, रघुनाथने देखा कि, उसके दोनों नेत्रोंसे आसूं गिर रहे हैं, रघुनाथके नेत्रभी वारिपूर्ण हुए।

फिर रघुनाथ देवालयसे बाहर हुये और घोडेपर सवार हो दुर्गद्वारके पार होगये। रघुनाथके अधीनमें जो सवार थे, वह पहले दिन इनसे थोडी देर पीछे आये थे, उन्होंने गढके बाहर ही रात बिताई थी। वे फिर अपने असीम साहसी और दुर्दमनीय तेजस्वी हवालदारको पाकर हुंकार शब्दकर उठे परन्तु उन लोगोंको बालकके समान सरल हवालदार नहीं मिला तोरण दुर्गमें आनेके दिनसे रघुनाथकी बालोचित सरलता दूर होगई. उनका जीवन चिन्ता और प्रतिज्ञासे पूर्ण हुआ।

उसी दिन रघुनाथ हवालदारने सिंहगढमें पहुँचकर सब समाचार महाराज शिवाजीसे कहा।

पांचवाँ परिच्छेद।

शहजादे कहते नहीं क्योंहो आज मलूल।

[इन्द्रसभा]

यद्यपि कई एकवर्षसे महाराज शिवाजीकी सामर्थ्य और दुर्गसंख्या दिन दिन वृद्धि पाती थी तथापि सन् १६६२ ईसवीके प्रथम दिल्लीके सम्राट्ने उनको अपने अधिकारमें लेनेका कोई यत्न नहीं किया। उसी वर्ष शाइस्ताखां "अमीरउल्-उमरा" की उपाधि प्राप्तकर दक्षिणका शासनकर्त्ता नियुक्त हुआ और उसे शिवाजी-को ध्वंस करनेकी एक बारही आज्ञा मिली। शाइस्ताखांने उसवर्ष पूना और

चाकन दुर्ग व और कई स्थान अपने अधिकारमें कर लिये और दूसरे वर्ष अर्थात् इस आख्यायिका के कालमें इसने शिवाजीको एकबार ही ध्वंस करनेका संकल्प किया। दिल्लीश्वरकी आज्ञानुसार मारवाडाधीश प्रसिद्ध राजा यशवंत सिंहभी इसीवर्ष सन् १६६३ ई० में बहुत सेना लेकर शाइस्ताखांके साथ मिलगये बस इस समय महाराज शिवाजीको चारों ओरसे विपत्तियोंने घेराथा, मुगल और राजपूत सैन्यने पूनानगरके निकट डेरे डाले थे। शाइस्ताखां स्वयं दादाजी कन्है-देवके गृहमें, अर्थात् जहां बालसमयमें माताके सहित महाराज शिवाजी रहते थे, जाकर रहा। शाइस्ताखां शिवाजीकी चतुरताको भली भांति जानता था, इस कारण उसने आज्ञा करदी कि विना परवानेके कोई महाराष्ट्री पूनामें न आने पावै। महाराज शिवाजी, निकटवर्ती सिंहगढ नामक एक दुर्गमें रहते थे। उस समयतक महाराष्ट्री युद्ध करनेमें चतुर नहीं हुए थे, और फिर दिल्लीकी पुरानी सेनाके संग सन्मुख युद्ध करना किसी प्रकार संभव नहीं था, इसलिये शिवाजीने एक चतुरताके सिवाय स्वाधीन रक्षा और हिन्दूराज्यके विस्तार करनेका दूसरा कोई उपाय नहीं देखा।

चैत्र मासके शेषमें एकदिन संध्या समय मुगलसेनापति शाइस्ताखां अपने और मंत्रियोंको बुलाकर सभामें बैठाहै किसतरह शिवाजीको फतह कियाजाय यही परामर्श होताहै। दादाजी कन्हैदेवकेही गृहमें यह सभा हुई थी। चारों ओर उज्ज्वल दीपावली जलरही है और जनानेके भीतरसे सायंकालीन शीतलवायु उद्यान पुष्पगंध लाकर सबको पुलकित कररहा है। आकाशमें अंधकार, केवल दो एक तारे दीखते हैं, अमीर उल्लउमरा स्वयं कुछेक हँसकर बोले,—

" जहां उसको कब्जेमें लाये फिर फतह होनेमें क्या देर है "
अनवरी नामक एक खुशामदी मुसाहब बोला "हुजूरकी फौजके रोबरू शिवा-जीकी फौज इसतरह तितर बितर होजायगी जिसतरह तूफानके सामने खुश्क पत्ता उडजाता है, वराना डरकर जमीनमें घुसजायगी। "

सेनापति प्रसन्न होकर हँसने लगा।

चांदखां नामक एक पुराने सिपाहीने कई वर्षतक महाराष्ट्रियोंमें रहकर उनका बल विक्रम देखा था वह धीरे धीरे कहने लगा " मैं ख्याल करताहूं कि

वह जोरावर और मुस्तैद है किसी तरह हारनेवाला नहीं" शाइस्ताखांने पूँछा " कैसे ? " ।

चांदखाँने निवेदन किया जहांपनाहको याद होगा कि " पिछले साल जब कुछ पहाडी महाराष्ट्री चाकन किलेके भीतर घुस आये थे, तब हमारी तमाम फौजने किस मुश्किलसे दो माह भर बराबर मेहनत करके उनको बाहर निकाला, एकही किलेके फतह करनेमें हजार मुगल मारे गये थे। फिर इस साल सब मुकामोंमें हमारी फौजके रहते भी निताईजी, अहमदनगर व औरंगाबादको बराबर बरबाद कर आया था"।

सब सभासद चुपचाप रहे, और शाइस्ताखां भी कुछेक विरक्त हुआ परन्तु क्रोधको रोक हँसकर बोला—

" चांदखां तुम्हारी उमर जियादह होगई है, लेकिन तुम अबतक पहाडी चूहोंसे डरते हो। पहले तो तुम ऐसे नहीं थे"। चांदखांका मुख लाल होगया परन्तु वह निरुत्तर रहा।

अनवरी समय पाकर बोला " पीर मुरशद ! आप बजा फरमाते हैं महाराष्ट्री बेशक चूहे हैं, यह तो हम लोग भी जानते हैं कि, वे पहाडोंकी सुरंगोंमें चूहोंके माफिक घुस जाते हैं"।

शाइस्ताखां इसको बडी दिल्लगी जानकर हंसपडा उसके हंसनेसे सब मुसाहिब हँसने लगे इससे खुशामदीकीही जीत हुई।

चांदखांसे और नहीं सहा गया, वह स्पष्ट स्वरसे कहने लगा " वह चूहे जब तक पूनामें सुराख करके नहीं निकलते हैं तबहीतक खैर है" शाइस्ताखां भी इसको जानता था, परन्तु भयकी बातको टाल उच्च हास्य करके कहने लगा " इस मुकामपर दिल्लीके हजार हजार नाखूनदार बिलाव मौजूद हैं यहां चूहे कुछ नहीं कर सक्ते" सब मुसाहिब " बजा है" " दुरुस्त है" कहकर सेनापतिके इस वाक्यकी बडाई करने लगे।

महाराष्ट्रियोंके विषयमें अनेक प्रकारके रहस्य होनेपर फिर यह ठीक हुआ कि, युद्ध किस प्रकार होगा ? चाकन दुर्ग हाथ आजानेपर शाइस्ताखांने और किलों-

का अपने अधिकारमें लाना असाध्य समझा था, वह बोला " यह मुल्क किलोंसे भरा हुआ है अगर एक एक किलेपर दखल किया जाय तो कितने वक्तमें बादशाहका काम पूरा होगा, बल्कि इसका भी कुछ कयाम नहीं कि, यह काम होही जायगा " । चांदखां कार्यदक्ष था, उसने अपने अपमानकी बातको भूल कर सत्य परामर्श देनेकी चेष्टा की । " जहांपनाह ! किलेसेही महाराष्ट्रियोंको जोरहै वह मुकाबिले पर नहीं लडते जो वह लडाईमें शिकस्तभी खा जांय तो भी उनका कुछ नुकसान नहीं, क्योंकि इस मुल्कमें पहाड ज्यादा हैं इस वजहसे जब उनकी फौज एक मुकामसे दूसरे मुकामपर मौजूद होगी, तब हम उसका सुराख नहीं पासकेंगे । लेकिन एक एक किला जब हमारे कब्जेमें आ जायगा तब महाराष्ट्रियोंको जरूरही दिल्लीके बादशाहकी इतायत कबूल करनी होगी " ।

शाइस्ताखाने चाकन दुर्ग अधिकार करने उपरान्त और दुर्गोंके जय करनेकी आशा एक बारही छोड दी थी । बोला " क्यों ? जब महाराष्ट्री लडाईमें पीठ दिखाकर भागेंगे, तब क्या हम उनका पीछा नहीं कर सकेंगे ? हमारे पास क्या सवार नहीं हैं क्या वह उनके पीछे धावा करके सब मरहठोंकी फौजको माविद वह मुनहदिम नहीं कर देंगे ? " ।

चांदखांने फिर निवेदन किया "हुजूर अगर मान लिया जाय कि लडाई होनेपर जरूरही मुगलोंकी फतह होगी और हम पकड सकेंगे तो उन मरहठोंको कतल भी करेंगे, लेकिन इस पहाडी जमीनमें मरहठे सवारका पीछा कर उसको पकड सके ऐसा सवार हिन्दोस्थानमें नहीं है । यह माना कि हमारे घोडे बडे हैं, सवार बख्तर पहिरे हैं, बहुत हथियार लगाये हुए हैं पीर मुरशद ! यह भी माना की बराबर जमीनमें और मुकाबिलेकी लडाईमें हमारे सवारोंकी तेजीकी बरदाश्त किसीसे नहीं हो सक्ती और उनकी चाल किसीसे नहीं रुक सक्ती, लेकिन यह पहाडी मुल्क इन हमारे सवारोंकी चालमें हारिज होता है । छोटे छोटे दक्षिणी घोडे और उनके सवार मरहठे मेंढेकी माफिक उँची छलांगसे ऊपरको कूदते हैं, बल्कि बजाय आड्ड पहाडी जमीन और सुराखोंमें होकर भागते हैं । पीर मुरशद ! मेरी सलाह मानिये । सिंहगढमें जहाँ शिवाजी हैं उसी मुकामको घेरिये, एक या दो माहमें किला लेकर शिवाजीको कैद करलेंगे और बादशाहकी फतह होगी। नहीं तो इस मुकामपर पडे

रहकर उनकी राह देखनेसे क्या होगा? और उनके पीछे पडनेहीसे क्या फायदा होगा? देखिये! निताईजी व आसानी हमारे नजदीकसे जाकर अहमदनगर और औरंगाबादको नेस्तोनाबूद करआया, रुस्तमजमांने उसका पीछा करके क्या करलिया?"।

शाइस्ताखां क्रोध करके बोला,—"रुस्तमजमांने बगावत की है उसने जान बूझ-कर निताईजीको भागने दिया, मैं उसकी कार्रवाईकी खबर लूंगा। चांदखां! तूभी मुकाबिलेकी लडाईके बरखिलाफ सलाह देता है क्या दिल्लीके बादशाहकी फौजमें कोई हिम्मतदार नहीं है?"

प्राचीन योद्धा चांदखांका मुँह फिर रक्तवर्ण हो आया। पीछे मुंह फिराकर उसने एक बूंद आंसू डाला और फिर सेनापतिकी ओर दृष्टि करके कहनेलगा "मुझमें सलाहदेने लायक तमीज नहीं, हुजूर लडाईकी तदबीर सोचें, फिर जैसा कुछ हुक्म होगा उसकी तामील करनेमें बंदा कुछ उज्र नहीं लावेगा"।

चांदखां श्रेष्ठ परामर्शके अनुसार कार्य करता था, लेकिन शाइस्ताखांको ऐसा साहस नहीं था।

इसी समय एक प्रतिहारीने आकर समाचार दिया कि, सिंहगढका दूत महादेवजी न्यायशास्त्री नामक ब्राह्मण आया है और नीचे खडा है। शाइस्ताखां उसकी राह परख रहा था, इस कारण फौरन् उसको सभामें लानेकी आज्ञा दी। सब सभासद इस दूतके देखनेको उत्कण्ठित हुए।

क्षणभरके उपरान्त महादेवजी न्यायशास्त्रीने सभागृहमें प्रवेश किया।

न्यायशास्त्रीकी अवस्था अभी चालीस वर्षकी नहीं हुई है। आकार महाराष्ट्रियोंकी नाई कुछेक नाटा और कृष्णवर्ण है। ब्राह्मणका मुखमण्डल सुंदर, वक्षःस्थल विशाल. बाहु युगल दीर्घ, नयन गंभीर और बुद्धि तेज थी. माथेमें चंदनकी दीर्घ खोर, कंधेमें यज्ञोपवीत पडा हुआ था। शरीर मोटी अभेद कुरतीसे ढका हुआ होनेसे गठन साफ नहीं मालूम होती है। मस्तकपर पगडी इतनी भारी है कि, वदन मंडल उसकी छायासे ढकरहा है। शाइस्ताखांने आदर पूर्वक उस दूतको बुलाय बैठनेके अर्थ कहा।

शाइस्ताखांने कहा "सिंहगढकी क्या खबर है"।

महादेवजीने एक संस्कृतका श्लोक पढा।

" सन्ति नद्यो दण्डकेषु तथा पंचवटीवने ।
सरयूविच्छेदशोकं राघवस्तु कथं सहेत् ॥ "

फिर इसका अर्थ किया कि " दण्डकारण्य और पंचवटी वनमें शत शत नदियें विद्यमान हैं किन्तु उनको देखकर रघुनाथ क्या सरयूके बिछोहका दुःख भूल सकते हैं। सिंहगढ इत्यादि शत शत दुर्ग अबभी शिवाजीके अधिकारमें हैं परन्तु पूना आपके अधिकारमें है यह संताप क्या हमारे महाराज भूल सक्ते हैं ? " ।

शाइस्ताखां प्रसन्न होकर बोला—" हां अपने राजासे कह देना कि, जब खास किला हमारे दखलमें है तो लडना बेफायदाहै, लेकिन अगर बादशाहकी इतायत कबूल करलो तो अबभी उम्मेद है। " ब्राह्मणने कुछ हँसकर फिर संस्कृत पाठकिया ।

" न शक्तो हि स्वाभिलाषं गिरा ज्ञापयितुश्चातकः ।
ज्ञात्वा तु ततो वारिधरस्तोषयति याचकम् ॥ "

" अर्थात् चातक वचनोंसे अपनी अभिलाषा मेघको नहीं ज्ञात करा सक्ता, परन्तु मेघ अपनी दयाके ही वशहो वह अभिलाषा जानकर पूर्ण करते हैं। बडेको याचकके देनेकी यही रीति है। महाराज शिवाजी अब पूना और चाकनके निकल जानेसे संधि (मिलाप) प्रार्थना करते हुए लजाते हैं; परन्तु आपसे बडे आदमी उनके मनका अभिलाष जान अनुग्रह कर जो दान करेंगे वही शिरोधार्य है। "

शाइस्ताखां आनंदको रोक नहीं सका। बोला " पंडितजी ! तुम्हारी पंडिताईसे मैं इतना खुशहुआ कि, कुछ कह नहीं सक्ता, तुम लोगोंकी संस्कृत जबान मीठी और पुर मतलब होती है।

"क्या वाकईमें शिवाजी सुलहकी ख्वाहिश करते हैं ?" महादेव। " खांसाहब ! दिल्लीश्वरकी सेनाके उग्र प्रतापसे घबडाकर हमलोग केवल संधिकी ही इच्छाकर रहे हैं।

शाइस्ताखां इसबार आनंदको नहीं छिपासका और कहनेलगा " चांदखां ! मुकाबिलकी लडाई अच्छी या किलेका घेरना अच्छा ? दुश्मनने किससे ज्यादा खौफ खाया है ?" फिर प्रसन्नताको छिपाकर बोला ।

"बिरहमन ! मैं तुम्हारी शास्त्रकी तकरीरसे खुश हुआ तुम इस वक्त अगर सुलहकाही पयाम लेकर आये हो और शिवाजीने तुम्हें इस कामके लिये मुकर्रर किया है तो उसका सबूत क्या ? मैं देखा चाहताहूं " ।

तब ब्राह्मणने गंभीरभाव धारणकर वस्त्रके भीतरसे एक परवाना निकाला । बहुत विलम्बतक शाइस्ताखां उसको देखकर बोला "हां मैं इस परवानेको देखकर बहुत खुश हुआ, इस समय क्या क्या अहद दे पैमान करनेकी जरूरत है सो कीजिये ।"

महादेव । "हमारे महाराजकी यह आज्ञा है कि, जब प्रथमही आप लोगोंकी जीत हुई है तो युद्ध करना वृथा है ।"

शाइस्ताखां–"बेहतर"

महादेव–"अब महाराज संधि करना चाहते हैं ।"

शाइस्ताखां–"अच्छा"

महादेव–"महाराज अब यह जानना चाहते हैं कि, इस समय कौन कौनसे नियमोंसे दिल्लीश्वर संधि करनेमें सम्मति होंगे । यह जानकर फिर उन नियमोंके पालन करनेमें वह यत्न करेंगे ।"

शाइस्ताखां–"अव्वल दिल्लीके बादशाहकी इतायत करनी तुम्हारे राजाको मंजूर है ?" ।

महादेवजी–"उनकी सम्मति वा असम्मति जतानेका मुझको अधिकार नहीं है, आप जो मुझसे कहैंगे मैं वही उनसे निवेदन करदूंगा, उसमें वह अपनी सम्मति असम्मति फिर प्रगट करेंगे ।"

शाइस्ताखां–"अच्छा, अव्वल शर्त तो मैं कह ही चुका कि, दिल्लीके बादशाहकी इतायत करना, दोयम यह कि, बादशाहकी फौजने जिन जिन किलोंपर दखल करलिया है वह बादशाहहीके कब्जेमें रहैं । सोयम यह कि, सिंहगढ़ वगैरह औरभी कई किले तुम्हें छोड देने होंगे ।"

महादेव–"वह कौन कौनसे ?"

शाइस्ताखां–"वह दो एक दिन बाद खतके जरियेसे माळूम कर दूंगा । चहारुम, बाकी जो जो किले और देश शिवाजी अपने तहतमें रक्खेंगे, वह भी

जागीरकी माफिक उनको मिलैंगे और उनपर खिराज देना होगा यह शर्तें अपने महाराजसे जाकर कहो और इसमें उनकी मरजी या ना मरजी हमें दो एक रोजमें माल्म होजाय।"

महादेवजी—"जो आपकी आज्ञा है वही करूंगा। परन्तु जबतक संधिका-प्रस्ताव हो और जबतक संधि स्थापन न होजाय, तबतक युद्ध बंद रहे।"

शाइस्ताखां—"हरगिज नहीं, दगाबाज और फरेबी मरहठोंका मैं कभी यकीन नहीं कर सक्ता, ऐसी कोई दगाबाजी नहीं जो मरहठे न करसक्ते हों। जबतक एक बारगी सुलह न हो जाय तबतक लडाई होती रहेगी, हम तुम्हारा नुक्सान करैंगे, अगर करसको तो तुम हमारा करना।" "एवमस्तु" कहकर ब्राह्मणने बिदा ली, उससमय उस ब्राह्मणके नेत्रोंसे आगकी चिनगारियें निकलतीं थीं। वह धीरे धीरे दरबारसे बाहरहुआ। प्रत्येक द्वार, प्रत्येक घरको भली प्रकार देखकर चला। एक मुगल पहरेदारने कुछ विस्मित होकर पूछा "जनाब आप क्या देखते हैं?" न्यायशास्त्रीने उत्तर दिया "शिवाजी जब बालक थे तब इस घरमें खेला करतेथे सो मैं इस घरको देखताहूं कि, जो तुम्हारे अधिकारमें है, ऐसा ज्ञात होता है कि, एकएक करके सब दुर्ग तुम्हारे हाथमें आजायँगे, हा! भगवन्!" प्रहरी हँसकर बोला "अपना काम करो, इसके लिये नाहक रंज कियेसे क्या होगा?" "सत्य है" कहकर ब्राह्मण गृहसे बाहर आया।

ब्राह्मण शीघ्रही बहुत सारे मनुष्योंकी भीडसे पूर्ण पूनानगरीके मनुष्योंमें मिलगया।

छठवाँ परिच्छेद।

शुभकार्यका दिनस्थिर।

चौपाई।

निकट बैठ शिबिरनके माहीं। राजद्रोहिगण मंत्र दृढाहीं॥

ब्राह्मणने एक एक करके पूनाके बहुतसे मार्गोंको देखा, जिस स्थानसे होकर वह जाता था उस स्थानको भलीभांति देख लेता था। दो एक दूकानोंपर वस्तु

मोललेनेके मिससे प्रवेश कर बातोंही बातोंमें बहुतसा वृत्तान्त जान लिया था, फिर 'बाजार' के पारहो चौडे राजमार्गसे एक गलीमें प्रवेश किया, यहां रात्रिमें सर्व दीपक बुझ गये हैं, नगरवासी द्वार बंद करे हुये अपने अपने घरोंमें सो रहे हैं।

ब्राह्मण एकाकी बहुत दूर चलागया, आकाश अंधकार मय था, केवल दो एक तारे दिखाई देते थे, नागरिक सब सो रहे थे और जगत् सूनसान था, यहां ब्राह्मणको यह संदेह हुआ कि, पीछे किसीकी पगाहट होती है, यह सोचकर वह स्थिर हो खडा होगया—"क्यों अब तो वह पगाहटका शब्द सुनाई नहीं आता"।

ब्राह्मण फिर चलने लगा, क्षणभरमें फिर जानपडा कि, पीछे कोई आता है। ब्राह्मणका हृदय कुछेक चंचल हुआ, इस गंभीर रात्रिमें कौन मेरे पीछे लगा है? वह मित्र है अथवा शत्रु? शत्रुने क्या मुझे जानलिया? इस प्रकार व्याकुल हृदय से क्षणभर ब्राह्मणने यह चिन्ता की, फिर चुपचाप जो कुरती पहेर हुए था, उसकी अस्तीनसे एक तीक्ष्ण छुरी बाहर निकाली एक मार्गके पार्श्व में खडा हो, गंभीर अंधकारकी ओर कुछ विलम्बतक देखता रहा, पर वहां कोई नहीं. सब निद्रामें मग्न थे, नगर शब्द शून्य और निस्तब्ध हो रहा था।

चिन्ताकुल ब्राह्मण फिर प्रकाश पूर्ण बाजार को लौट गया, वहां अनेक दूकानों पर नाना जातीय अनेक मनुष्य अबतक क्रय विक्रय कर रहे थे, ब्राह्मणने उनमें ही मिल जानेकी चेष्टा की और फिर वहांसे सहसा एक गलीमें प्रवेश किया, फिर शीघ्रतासे एक गलीके भीतर जाय नगरके मैदानमें उपस्थित हुआ। चुपचाप बहुत देरतक सांसको रोकेहुए खडारहा। शब्दमात्र नहीं, चारोंओर मार्ग, घाट, कुटी, अट्टालिका किसीमें कुछ शब्द नहीं था, आकाश अभेद अंधकारसे जगत् को ढके हुए था। कुछेक देर पीछे एक चिल्लाहट हुई, ब्राह्मणका हृदय कांपने लगा। वह चुपचाप खडा रहा।

क्षणभरके उपरान्त फिर वही शब्द हुआ, तब महादेवजी निडर हुये क्योंकि, यह नगरवाले पहेरेदारके पहरा देनेका शब्द था। दुर्भाग्यसे जिस गलीमें महादेव छिपेथे पहेरवाला उसी गलीमें आया। गली अतितंग थी, इस कारण महादेव फिर वह छुरी हाथमें लेकर तीव्र अंधकारमें खडा रहा।

पहरुआ धीरे धीरे वहां आया जहां यह छिपे थे और इधर उधर देख उसी स्थानको देखने लगा, फिर उस स्थानको देखा जहां महादेव खडा था, महादेवका हृदय धुक धुक करने लगा उसने सांस रोक वह छुरी बलपूर्वक पकड ली।

प्रहरीने अंधकारमें कुछ नहीं देख पाया. और सहज सहज उस मार्गसे चला-गया। महादेवजीनेभी धीरे धीरे उस स्थानसे बाहर हो माथेका पसीना पोंछा।

फिर निकटवर्ती एक द्वारको खटखटाया और शाइस्ताखां का एक दक्षिणी सिपाही बाहर आया दोनों जन अति गुप्तभावसे नगरके बीचोंबीच अति गुप्त और अगम्य स्थानमें जाकर उपस्थितहो बैठ गये।

ब्राह्मणने कहा। "सब ठीक है"

सिपाही। "ठीक है"

ब्राह्मण। "परवाना मिलगया"।

सिपाही। "मिलगया"।

फिर झीनीसी पैरोंकी आहट सुन पडी, इसबार महादेवने क्रोधसे लाल लाल नेत्र कर छुरी हाथमें ले अंधकारकी ओर बहुत देरतक देखा. परन्तु कुछ दिखाई नहीं दिया फिर लौट कर सिपाही से कहा "खाली हाथ आया है?"

सिपाहीने छातीके नीचेसे छुरी निकाल कर दिखाई ब्राह्मण बोला—"भला सावधान रहना विवाह कब है?"

सिपाही। "कल"

ब्राह्मण। "आज्ञा मिलगई?"

सिपाही। "हां एक कागज दिखाया"

ब्राह्मण। "कितने आदमियोंकी?"

सिपाही। "दस बाजेवाले, तीस अस्त्रधारी इससे अधिककी आज्ञा नहीं मिली।"

ब्राह्मण। "यही बहुत है. किससमय?"

सिपाही। "एक पहर रातगये"

ब्राह्मण। अच्छा तो इसी ओरसे बरात निकलेगी?"

सिपाही । "याद है?"

ब्राह्मण । "बाजेवाले अति जोरसे बाजा बजावें"

सिपाही । "अच्छा"

ब्राह्मण । "जहांतक संभव हो जातिकुटुम्ब वालोंको इकट्ठा करना"

सिपाही । "स्मरण है ?"

तब ब्राह्मण कुछेक हंसकर बोला "हम लोगभी उस शुभकार्यमें मिलेंगे उस शुभकार्य्य की घटा समस्त भारत वर्षमें छा जायगी ।"

सहसा एक तीर तीव्र वेगसे आनकर ब्राह्मणकी छातीमें लगा, उस तीरसे निश्चयही प्राणनाश संभव था, परन्तु ब्राह्मण की कुरतीके नीचेके बख्तर से लगकर तीर खण्ड खण्ड होगया ।

फिर एक बरछा लगा, बरछेके भयंकर आघातसे ब्राह्मण भूमिमें गिरपडा, परन्तु वह अभेद बख्तर नहीं टूटा. महादेव फिर शीघ्र उठ बैठा । सामने देखा तो नग्न खड्ग हाथमें लिये हुए मुगल वीर खडा है, पाठकगण ! यह वीर वही चांदखां है । आज दरबारमें सेनापति शाइस्ताखांने चांदखांको डरपोक कहा था । युद्धकार्यमें ही चांदखां के सफेद बाल हुए थे । वह सन्मुख युद्ध करनेके सिवाय भागना नहीं जानता इस कारण अबतक इसको डरपोक किसीने नहीं कहा था । पर आज शाइस्ताखांने कहा ।

चांदखाने मनमें जो व्यथा पाई थी वह औरसे कहना योग्य न समझकर मनमें विचार किया कि, यह बदनामी मौका पाकर बजरिये नेकनामीके दूर करूंगा वरना इस लडाईमें जो कि, होनेवाली है जान नाचीजकी तनकफससे रिहाई होगी ।

ब्राह्मणका आचरण देखकर चांदखां को संदेह हुआ था, वह शिवाजीको भले प्रकार जानता था, उनकी बडी भारी सामर्थ्य अनेक दुर्ग उनकी अपूर्व और शीघ्र गामी अश्वारोही सेना, उनका हिन्दूधर्ममें विश्वास, हिन्दूराज्यको स्थापन करनेका अभिलाष हिन्दू स्वाधीनता साधनमें उनकी प्रतिज्ञा यह समस्त चांदखां

जानता था, चांदखांने सोचा कि, मुगलोंसे लडाईके शुरू होतेही शिवाजी शिकस्त मान सुलहकी ख्वाहिस करैंगे। यह गैर मुमकिन बात है, लेकिन इस ब्राह्मणनें शिवाजीका परवाना दिखाया है। यह कौन ब्राह्मण है और इसका पोशीदा मतलब क्या है।

ब्राह्मणकी बातोंसे भी चांदखांको संदेह हुआ था जब महाराष्ट्रियोंकी निन्दा श्रवण कर ब्राह्मणके नेत्र लाल हुए थे वहभी उसने देखा। यह समस्त संदेह सूचकवार्ता उसने शाइस्ताखांसे नहीं कही थी। उसने विचारा सच बोलके क्यों झिडकी खांय, लेकिन इस बागीकासिदको पकडूंगा। तबसेही दूतके पीछे पीछे आता था, मार्ग मार्गमें, गली गलीमें, छिपकर महादेवका पीछा लिया, एक पलकोभी ब्राह्मण चांदखांके नेत्रोंसे अलग नहीं हुआ था।

सिपाहीसे ब्राह्मणकी जो बात चीत हुई थी, वह चांदखांने सब सुनी थी, और भली भांति समझली इस सिपाहीको पकडके फौजदार पर लेजानेसे (प्रतिपत्ति) इज्जत पानेका संकल्प चांदखांने किया। मनमें विचारा "शाइस्ताखां! लडाईको कारमें नाहक यह बाल सफेद नहीं किये हैं मैं न डरपोंकहूं, न बागी हूं, आज जो जाल पकडकर जाहिर करूंगा उस्से मालूम होता है कि, आप फिर इस बंदेकी सलाहको कभी नहीं फेरा करैंगे" परन्तु चांदखांकी यह आशा वृथा थी।

महादेवक जमीनसे उठते उठते चांदखां तरि और बरछा निष्फल देख छलांग मार ब्राह्मणपर झपटा और खड्ग उठाय अति जोरसे मारा परन्तु आश्चर्य कि, बख्तरमें लगकर वह खड्गभी टूट गया।

"बुरे क्षणमें मेरा पीछा किया था" यह कहकर महादेवजीने अपनी अस्तीनसे तीक्ष्ण छुरी निकाल आकाशकी ओर उठाई।

वह वज्रके समान मुट्ठीसे पकडी हुई छुरी पल भरके पीछे चांदखांकी छातीमें गड गई। चांदखांका मृतकदेह पृथ्वीपर गिरपडा।

ब्राह्मणने दांतसे होंठोंको दाबलिया, उसके नेत्रोंसे चिनगारियें निकलती थीं। फिर धीरे धीरे मदादेव वह छुरी छिपाकर बोला;—

"शाइस्ताखां! महाराष्ट्रियोंकी निन्दा करनेका यह प्रथम फल है, भवानीकी कृपासे दूसरा फल कल फलेगा।"

अरे शाइस्ताखां ! आज जिस रत्नको तैने अन्यायके निरादरसे खोदियां, अब उसको विपदके समय स्मरण करनेसे नहीं पावेगा ।

वीरोचित कार्यमें जिस समय चांदखांने जीवन दान किया, उस समय सेनापति शाइस्ताखां बडी सुख निद्रामें महाराज शिवाजीको वश करनेके स्वप्न देख रहा था ।

महाराष्ट्री सिपाही चांदखांके मरनेसे विस्मित हो बोला–"महाराज क्या किया ? कल यह बात प्रगट होजायगी और हमारा सब संकल्प वृथा नष्ट होगा ।"

ब्राह्मण । "कुछ वृथा नहीं होगा । मैं जानताहूं कि. चांदखां आज सभामें अपमानित हुआ था, अब कई दिन उसके सभामें न जानेसे कोई संदेह न करेगा । यह मृतदेह इस गंभीर कुएमें डालदो और याद रक्खो कि, कल एक पहर रात्रिगये ।"

सिपाही । "हां कल एक पहर रात्रिगये" ब्राह्मणने चुपचाप पूना नगरसे पयान किया । तीन चार स्थानमें पहरेवालोंने उसे पकडा, तब उसने शाइस्ताखांका दस्तखती परवाना दिखाया और कुशल मंगलसे पूनाके बाहर होगया ।

सातवाँ परिच्छेद ।

राजाजसवंत सिंह ।

चौपाई ।

कहहु नृपति सब मोहिं सुनाई । क्यों निजधर्म दियो बिसराई ॥
भायप, ऐक्य जलांजलि दीन्हीं । नहिं कछु कान धर्मकी कीन्हीं ॥
कहत शास्त्र यह बारहि बारा । पर गुणज्ञ जन नाहिं हमारा ॥
जो निजजन गुणहीनहु होई । समय परे है अपनो सोई ॥
परको पर जानहु दिन राती । निर्गुणस्वजन अपुन सब भांती ॥

दो प्रहर रात्रिके समय राजपूत राजा जसवन्तसिंह अकेले डेरेमें बैठे हैं, हाथ पै कपोल रखकर इस गंभीर निशाकालमें भी वह क्या चिन्ता करते हैं, सन्मुख केवल एक दीपक जलता है, डेरेमें और कोई नहीं है ।

संवाद आया कि, महाराष्ट्रीय दूत साक्षात् करने आया है। राजा जसवंतसिंहने उसको आनेकी आज्ञा दी वह उस दूतकीही राह देख रहे थे।

महादेव न्यायशास्त्री डेरेमें आये, महाराज जसवंतसिंहने उनको आदर सहित बुलायकर बैठनेको कहा। दोनों बैठ गये।

कुछ देरतक जसवंतसिंह चुप रहकर कुछ चिन्ता करने लगे। महादेवभी मौन हो राजपूतकी ओर देखता रहा।

फिर जसवंतसिंह बोले—"मैंने आपके महाराजका पत्र पाया और उसमें जो लिखा है वह भी जाना, उसके सिवाय कोई और बात है?"।

महादेव—"मुझे महाराजने किसी अनुरोध करनेको नहीं भेजा बरन खेद करनेको भेजा है"।

जसवंतसिंह—"क्या तुम्हारे महाराज केवल इसीकारणसे खेद करते हैं कि, पूना और चाकन दुर्ग जो हमारे हस्तगत हो गया है?"

महादेव—"दुर्गके निकल जानेसे वह व्याकुल नहीं हैं क्योंकि, उनके असंख्य दुर्ग हैं"।

जसवंतसिंह—"फिर क्या मुगल युद्ध स्वरूप विपदमें पडकर वह खेद करते हैं"?।

महादेव—"विपदमें पडकर खेद करनेका उनको अभ्यास नहीं है"।

जसवंतसिंह—"फिर किस कारण खेद करते हैं?"।

महादेव—"हिन्दूराजतिलक क्षत्रियकुलावतंस सनातनधर्मके रक्षकोंको म्लेच्छोंका दास देखकर हमारे स्वामी शोकाकुल हैं"।

महाराज जसवंतसिंहका मुखमण्डल कुछेक लाल होगया महादेवने उसको देखा अनदेखा किया और गंभीर स्वरसे कहने लगा।

"जिन्होंने उदयपुरवाले राजा प्रतापसिंहके वंशमें विवाह किया है, मारवाड राजछत्र जिसके ऊपर शोभित हुआ है, जिसकी सुख्यातिसे राजस्थान परिपूर्ण हो रहा है, सिप्रा तीरपर जिनका पराक्रम देख औरंगजेब भीत और विस्मित हुआ था, सब आर्यावर्त जिनको सनातन हिन्दूधर्मका स्तम्भरूप जानता है, देश देश ग्राम ग्राम मंदिर मंदिरमें जिनकी जयके अर्थ हिन्दू मात्र, ब्राह्मण मात्र,

जगदीश्वरके निकट प्रार्थना करते हैं, आज उनको यवनकी ओर हो हिन्दूके विरुद्ध शस्त्र धारण किये देख महाराज दुःखित हुए हैं । राजन् ! मैं एक साधारण दूत हूं और यह भी नहीं जानता कि, क्या कह रहा हूं सो यदि अपराध हो तो क्षमा कीजिये परन्तु यह युद्धशय्या कैसी ? यह सेना और सामन्त कैसे ? यह विजयपताका क्यों उडती है ? क्या अपना अधिकार बढानेके हेतु या हिन्दू स्वाधीनता स्थापन करनेके लिये ? अथवा वीरोचित यश प्राप्त करनेके लिये ? सो आप विचारें क्योंकि, आप क्षत्रियकुलमें सिंह हैं मैं कुछ नहीं जानता "

जसवंतसिंह नीचा मुख किये रह गये, महादेव और भी कहने लगा ।

" आप राजपूत हैं । महाराष्ट्री राजपूतपुत्र हैं । पिता पुत्रमें युद्ध नहीं होसक्ता स्वयं महादेवीने ऐसा युद्ध करनेको रोका है आप आज्ञा कीजिये हम पालन करेंगे । राजपूतोंके गौरवसेही भारतका गौरव है । राजपूतोंकी कीर्तियोंका गान हमारी स्त्रियें अबतक गाती हैं राजपूतोंके उदाहरण देखकर हमारे बालकगण शिक्षित होते हैं सो उन राजपूतोंसे युद्ध ? क्षत्रकुल तिलक ! राजपूतोंके खूनमें हमारी तलवारें रंगनेसे प्रथम महाराष्ट्रियोंका नाम निर्मूल हो राज लोप होजाय, हम बरछा और खड्ग त्याग करके फिर हलधारण करना सीखें यह अच्छा है, पर हम आपसे युद्ध न करेंगे ।"

जसवंतसिंह नेत्र उठाय धीरेसे कहने लगे " प्रधान दूत ! तुम्हारे वचन बडे प्यारे हैं, परन्तु मैं दिल्लीश्वरके अधीन हूं, और महाराष्ट्रियोंसे युद्ध करनेको कह आया हूं सो युद्ध महाराष्ट्रियोंसे अवश्य करूंगा–"

फिर दूतने कुछेक उपहाससे यह वचन कहे, अच्छा ! शतशत स्वधर्मियोंका नाश हो, हिन्दू हिन्दू का मस्तक काटे, ब्राह्मण ब्राह्मणके हृदयमें छुरी भोंके, क्षत्रीके रुधिरसे क्षत्रीका खून मिले, अंतमें म्लेच्छ सम्राटकी संपूर्णत जय हो । "

जसवंतसिंहका मुख लाल होगया, किन्तु व्याकुलताको रोक कुछेक कडे भावसे बोले–

"केवल दिल्लीश्वरकी जयकेही अर्थ युद्ध नहीं; मैं तुम्हारे महाराजसे किस प्रकार मित्रता करूं ? वह विद्रोहाचारी हैं । शिवाजी जिस बातको आज अंगीकार करते हैं कल सरलतासे उस प्रतिज्ञाको तोड डालते हैं । "

ब्राह्मणके नेत्र प्रज्वलित हुए, और वह धीरे धीरे बोला " महाराज सावधान ! वृथा महाराजकी निन्दा करना आपको शोभा नहीं देता । शिवाजीने स्वधर्मी को जो वचन दिया, वह कब अन्यथा किया है ? ब्राह्मणसे जो प्रण किया है, क्षत्रीसे जो प्रतिज्ञा की है वह कब उसको भूलगये हैं ? देशमें शत शत ग्राम शत शत देवमंदिर हैं खोजिये शिवाजी सत्य पालन करने, ब्राह्मणको आश्रय देने, हिन्दूका उपकार करने, गोवत्सादिकी रक्षा करने, हिन्दू देवताओंकी पूजा देनेमें कब पराङ्मुख हैं ? परन्तु यवनोंके साथ युद्धमें, जयशील और पराजितके बीचमें कब और किस देशमें मित्रता निभी है. जब न्योला सर्पको पकडता है तब सर्प मृतकके समान होजाताहै, तो वह उसको मृतक समझकर जैसेही छोडता है वैसेही छिन्न भिन्न शरीर नागराज समयपाकर उसको काटखाता है, सो यह विद्रोहाचरण नहीं कहलाता, यह स्वभावकी रीति है । कुत्ता जब खरगोशको पकडनेकी इच्छा करता है, तब खरगोश प्राणरक्षाके हेतु कैसे उपाय करता है, एक ओर भागनेका उद्योग कर अचानक दूसरी ओर चला जाता है. सो यह चातुरी नहीं, स्वभावकी रीति है । देखिये समस्त जीवजन्तुओंको परमेश्वरने जो प्राणरक्षाका यत्न और उपाय बताया है, क्या मनुष्यको उन यत्नोंसे अजान रक्खा है ? हमारे प्राणसमान जीवनस्वरूप स्वाधीनताको जो मुसलमान सैकडों वर्षोंसे शोषण करते हैं, हृदयका शोणितरूप बल, मान, देश, गौरव, राज्याभिमान शोषण करते हैं, धर्मनाश करते हैं उन लोगोंसे हमारी मित्रता और सत्यसंबंध ? उनके निकटसे जिस उपायद्वारा उस जीवनस्वरूप स्वाधीनताकी रक्षा करसकें स्वधर्म और जाति गौरवकी रक्षा करसकें वह उपाय क्या चतुरता है, वह यत्न क्या निन्दनीय है ? जीवन रक्षाके अर्थ भागनेमें चतुर मृगकी शीघ्रगति क्या विद्रोह है ? अपने बच्चोंके बचानेको पक्षी जो व्याधेको और किसीओर लेजानेका यत्न करता है, वह कार्य क्या निन्दनीय है ? क्षत्रियराज ! दिन दिन घडी घडी मुसलमानोंसे महाराष्ट्रियोंके कौशलकी निन्दा आप सुनते हैं, परन्तु हिन्दूप्रवर ! आप हिन्दूके जीवनकी रक्षावाले केवल एकही उपायकी निन्दा मतकरो

जिये, महाराज शिवाजीकी निन्दा न कीजिके।" महादेवके लाल लाल नेत्रोंमें नीर भर आया।

ब्राह्मणके नेत्रोंमें जलभरा देखकर जसवंतसिंहके हृदयमें पीडा हुई और बोले "दूतश्रेष्ठ! मैं तुम्हें कष्ट देना नहीं चाहता. यदि कुछ अनुचित कहाहो तो क्षमा कीजिये। मैं केवल यही कहता हूं कि, देखो राजपूतगणभी स्वाधीनता की रक्षा करते हैं, परंतु वे लोग साहस और सन्मुख रणके सिवाय दूसरा काम नहीं जानते। क्या महाराष्ट्रीगण वह उपाय अवलम्बन करके वैसाही फल प्राप्त नहीं कर सक्ते?"

महादेव। "महाराज! राजपूतोंमें पुरातन स्वाधीनताहै, वह बहुत धन रखते हैं, उनके पास दुर्गम पर्वत और मरुवेष्टित देश है, सुंदर राजधानी है, सहस्र वर्षकी अपूर्वरणशिक्षा है और महाराष्ट्रियोंके पास इनमेंसे क्या क्या वस्तु हैं? वे लोग दरिद्री, वे लोग चिरपराधीन, उनकी यह प्रथमही रणशिक्षा है। जब आप लागोंके देशपर कोई चढआता है, तब आपलोग प्राचीनरीतिके अनुसार युद्ध करते हैं। प्राचीन दुर्द्धर्ष तेज और विक्रम प्रकाशित करते हैं और असंख्य राजपूतसेनाके सन्मुखसे दिल्लीश्वरकी सेना भागजाती है। परन्तु हमारे देशपर शत्रुके चढआनेसे हम क्या करें? प्रथम तो रीति और रणशिक्षा नहीं, असंख्य सेना नहीं, जो है भी उसने अबतक रण नहीं देखा। जब दिल्लीश्वरने काबुल, पंजाब, बिहार, मालवा, वीरप्रसविनी राजस्थान भूमिसे सहस्र सहस्र पुरातन रणपंडित वीरभेजे, जब बडे बडे आकारवाले अनिवार्य रणअश्व और रणहाथी भेजे, जब उनके भेजेहुए धनुष, बंदूक, बारूद, गोले, रुपये और अशरफियोंके हजारों छकडे आगये, तब दरिद्री महाराष्ट्री क्या करें? उनके पास वैसी असंख्य युद्धदर्शी सेना नहीं, वैसे हाथी घोडे नहीं, वैसा विपुल धन नहीं, सो फिर ऐसा न करें तो करें क्या? पृथ्वीनाथ! जीवनके प्रारंभमें दरिद्र जातिको ऐसे आचरणके सिवाय और कोई उपाय नहीं है। ईश्वर करे महाराष्ट्रियोंकी जाति दीर्घजीवी हो। जब उन लोगोंको धन मिलेगा और वे युद्धकरनेका उपाय जान जायँगे, तब दो तीनसौ वर्षकी रणशिक्षा पानेपर, वेभी राजपूतोंके असाधारण गुण ग्रहण करलेंगे"

यह समस्तवार्ता सुन जसवंतसिंह चिन्तायुक्त हो माथेपर हाथ रख एकाग्र चित्तसे कुछ विचारने लगे। महादेवने देखा कि, मेरी बातोंने इसके दिलपर कुछ असर किया इस कारण फिर धीरे धीरे कहने लगा;–

" आप हिन्दू श्रेष्ठ हैं, फिर हिन्दुओंकी प्रतिष्ठा बढानेमें आप क्या संदेह करते हैं ? हिन्दूधर्मके जय होनेकी आपभी इच्छा करते हैं, शिवाजीभी इसके सिवाय और कुछ नहीं चाहते । मुसलमानोंके शासनको ध्वंस करना, हिन्दूजातिकी प्रतिष्ठा बढाना, स्थान स्थानमें देवालय बनाना, हिन्दूशास्त्रकी चर्चा, ब्राह्मणको शाश्रय देना; सनातन धर्मका गौरव बढाना, गौरक्षा करना, यही शिवाजीका आशय है । यदि आप इश कार्यमें उनकी सहायता न करें तो अकेले इस क पूरा कीजिये, आप इस देशका राज्य ग्रहण करके यवन लोगोंको पराजितकर महाराष्ट्रमें स्वधर्मीय लोगोंकी स्वाधीनताको स्थापन कीजिये । जो आप आज्ञा दें तो अभी दुर्गद्वार खोल दिया जायगा, प्रजा आपको कर देगी, आप शिवाजीसे सहस्रगुण बलवान, सहस्रगुण दूरदर्शी और सहस्रगुण उपयुक्त हैं । शिवाजी प्रसन्न चित्तसे आपके एक सेनापति होकर यवनवंश ध्वंस करेंगे । बस इसके सिवाय उनकी कोई वासना नहीं !"

इस बातके कहनेसे उच्चाभिलाषी जसवंतसिंहके नेत्र मानों आनंदसे परिपूर्ण होगये और वह कुछ देर चिन्ता करके बोले "मारवाड और महाराष्ट्र बहुत दूर होनेके कारण एक राजाके अधीनमें नहीं रह सकता ।"

महादेव । "तब किसी अपने योग्य पुत्रको वह राज्य दे दीजिये, अथवा किसी संबंधी वीरको सौंप दीजिये । शिवाजी क्षत्री राजाके अधीनमें कार्य करना स्वीकार करलेंगे परन्तु कभी क्षत्रिय वीरोंसे नहीं लडेंगे ।"

जसवंतसिंह फिर चिन्ता करके बोले " हमारा कोई ऐसा संबंधी नहीं है जो इस विपद्कालमें औरंगजेबसे इस देशकी रक्षा करसके । "

महादेव " किसी क्षत्री सेनापतिको नियुक्त कीजिये, हिन्दूधर्म और स्वाधीनताके रक्षा होनेसे शिवाजीकी मनोकामना पूर्ण होगी और वह सानंद चित्तसे राज परित्यागकर वानप्रस्थ अवलंबन करेंगे " ।

जसवंतसिंह-"ऐसा कोई सेनापति भी हमारे पास नहीं । "

महादेव-"अच्छा तो आप उसकी सहायता करें कि, जो इस बडेभारी कार्यके करनेकी इच्छा करे । आपकी सहायतासे आपके आशीर्वादसे शिवाजी अवश्यही स्वदेश और स्वधर्मकी प्रतिष्ठा बढालेंगे । क्षत्रियराज ! क्षत्रिय वीरकी

सहायता कीजिये, भारतवर्षमें ऐसा कोई हिन्दू नहीं, आकाशमें ऐसा देवता नहीं, जो इस कार्यमें आपकी प्रशंसा न करें । "

जसवंतसिंह कुछ चिन्ता करके बोले, " द्विजवर ! तुम्हारा तर्क अखंडनीय है परन्तु दिल्लीश्वरने स्नेहपूर्वक मुझे इसकार्यके करनेको भेजा है, सो भला मैं विद्रोह किसप्रकार करूं ? क्योंकि यह भलोंका कार्य नहीं है । "

महादेव—"दिल्लीश्वरने जो हिन्दुओंको काफिर बताकर जिजियाकर स्थापन किया है, यह कार्य क्या भले पुरुषोंका है ? "

जसवंतसिंह क्रोधित कंपित स्वरसे बोले—"द्विजवर ! द्विजवर ! ! बस रहने दो बहुत कहलिया । आजसे शिवाजी मेरे मित्र, मैं शिवाजीका मित्र । राजपूतोंकी प्रतिज्ञा कभी व्यर्थ नहीं होती, आजसे शिवाजीका प्रण और मेरा प्रण एक है । शिवाजीकी इच्छा और मेरी इच्छा अभिन्न है । उस आर्यकुल विरोधी दिल्लीश्वरके विरुद्ध जिसने इतने दिनतक युद्ध किया, वह महात्मा कहां है ? जो एकबार उसको हृदयसे लगायकर मनका संताप दूर करूं । "

महाराष्ट्री दूतने हँसकर जसवंतसिंहके कानमें कुछ बात कही । जिसके सुनतेही महाराज जसवंतसिंह चमक उठे और चातककी नाईं कुछ देरतक मौन धारण कर दूतकी ओर देखनेलगे । फिर आनंदमें मग्नहो अति आदरपूर्वक उसे हृदयसे लगाया । दोनों चुपके चुपके बहुत कालतक वार्तालाप करते रहे । बहुत बातचीत होनेके उपरान्त महादेव बोला—" यदि महाराज अनुग्रहपूर्वक कोई छल करके पूनासे कुछ दूर रहें तो अच्छा है । "

जसवंतसिंह—"क्यों ? क्या कल पूनाको अधिकारमें करनेकी तैयारी कीजायगी ?"

दूत हँसकर बोला । " नहीं नहीं एक विवाह होगा, महाराजके रहनेसे उस शुभकार्यमें विघ्न पडनेकी संभावना हो सक्ती है । "

जसवंतसिंह बोले । " अच्छा दूर हो रहूंगा " फिर दूतने विदा मांगी तब जसवंतसिंह हँसकर कहने लगे—

"जान पडता है, न्यायशास्त्रीका न्यायशास्त्र बहुत दिनोंसे छूटगया है अब भी कोई तर्क याद है या नहीं ? "

महादेव-"तथापि जो विद्या याद है, उससे दिल्लीका सेनापति शाइस्ताखां विस्मित हुआ है।"

महाराज जसवंतसिंह द्वारतक संग आये और बिदाके समय बोले " तो युद्धके विषयमें जैसी बातचीत हुई वैसाही कार्य कीजिये।"

महादेव-"उसीप्रकार कार्य करनेको स्वामीसे निवेदन किया जायगा।"

जसवंतसिंह-"हां भूलगया, उसीप्रकार कार्य करनेको अपने महाराजसे कहना!" और हँसते हँसते डेरेमें चलेगये।

महाराज जसवंतसिंहका एक विश्वासी मंत्री कुछ कालके अनन्तर डेरेमें आय पूँछने लगा " आपके डेरेसे अभी एक सवार जो सिंहगढके सामनेको जाता है वह कौन है?"

जसवंतसिंहने उत्तर दिया, "वह हिन्दू जातिका आशारूप और सनातन धर्मका पहरेदार है।"

आठवाँ परिच्छेद।

शिवाजी।

निश्चरहीन करौं मही, भुज उठाय प्रणकीन।

(तुलसीदास)

पूर्वकी ओर ललाई दृष्टि आती है. इसीसमय ब्राह्मणवेषधारी शिवाजीने सिंहगढमें प्रवेश किया। उन्होंने पगडी और रुईकी कुरती उतारडाली, प्रातःकालके प्रकाशसे मस्तकका लोहशिरस्त्राण और शरीरका चर्म झलकने लगा. छातीमें तीक्ष्ण छुरी और म्यानमें प्रसिद्ध भवानी नामक खड्ग शोभा देरहा है। दोनों भुजा दीर्घवक्षस्थल विशाल, शरीर कुछ ठिगणा होनेपरभी डौल सुंदर है। दृढबंधन और पेशिये " बख्तर " के नीचेसे साफ दृष्टि आती हैं, पेशवा मोरेश्वर त्रिमूल पिंगले आनंदसहित उनको पुकारकर बोले " जय भवानीकी!" आप इतनीदेर पीछे कुशलसे तो आये?

शिवाजी । " आपके प्रसादसे अबतक तो समस्त विपदोंसे उद्धारही पाया है । "

मोरेश्वर । " सब ठीक होगया ? "

शिवाजी । " सब "

मोरेश्वर । " विवाह आजही होगा ? '

शिवाजी । " आजही "

मोरेश्वर । " शाइस्ताखां और तीक्ष्णबुद्धि चांदखांको तो इस बातकी खबर नहीं ? "

शिवाजी । " शाइस्ताखां तो डराहुआ शिवाजीसे संधि होनेकी राह देख रहा है, और वीर चांदखां सदाकी नींदमें सोगया, इसकारण अब वह युद्ध नहीं करेगा । " शिवाजीने वह सब वृत्तान्त कह सुनाया ।

मोरेश्वर । " महाराज जसवंतसिंह ? "

शिवाजी । "आपने पत्रमें जो युक्तियें दिखाई थीं उनका मन उनसेही विचलित हुआ. मैंने जाकर देखा कि, वह कर्त्तव्यहीन हुए बैठे है. बस फिर सरलतासे हमारा कार्य सिद्ध होगया । "

मोरेश्वर । " भवानीकी जय हो ! महाराज ! जो कार्य आपने एक रात्रिमें इकले साधन करलिया, उस कार्यको सहस्र पुरुषभी इतना शीघ्र नहीं करसक्ते । जिस असीम साहसी कार्यमें आपने हाथ डाला था, उसको विचारनेसे हृदय कांप उठताहै । शिवाजी ! शिवाजी ! ! आगेको ऐसे कार्योंमें एकाएक न कूदना, आपका अमंगल होनेसे फिर महाराष्ट्रदेशमें क्या रहजायगा ? "

शिवाजी गंभीरभावसे बोले " मोरेश्वर ! जो विपदसे भय करता तो मै अबतक एक साधारण जागिरदार होता । यदि विपदसे भयकरें तो यह महान आशय कैसे साधन हों ? सदा विपदसे घिरेरहें, कुछ चिन्ता नहीं परन्तु भवानीजीकी कृपासे महाराष्ट्रदेश स्वाधीन होजाय । "

मोरेश्वर । "वीरश्रेष्ठ ! आपकी जयको, कोई नहीं रोकसक्ता, स्वयं भवानीही रक्षा करेंगी । परन्तु दो पहर रात्रिमें, तिसपर शत्रुके डेरोंमें अकेले कपटवेषसे जाना, सो आप अंगीकार कीजिये कि, अब ऐसा काम नहीं होगा, क्या आपके

पास विश्वासी सेवक नहीं है ?" शिवाजीने देखा कि, विश्वासी पेशवाके नेत्रोंमें एक बूँद जल है, तब हँसकर बोले-"आज तो एक महाविपद्में पडगया था।"

मोरेश्वर। "किसमें ?"

शिवाजी। "आपने मुझ ऐसे मूर्खकोभी संस्कृतके श्लोक सिखाये थे, जो अपना नामभी लिखना नहीं जानता, वह संस्कृत कैसे याद रक्खेगा ?"

मोरेश्वर। "क्यों, क्या हुआ ?"

शिवाजी। "और कुछ नहीं, शाइस्ताखांकी सभामें जाकर न्यायशास्त्रीजी प्रायः सब श्लोक--भूल गये थे।"

मोरेश्वर। "फिर क्या हुआ ?"

शिवाजी। "दो एक अशुद्ध श्लोक याद थे उनसेही कार्य सिद्ध होगया" यह कह हँसते हँसते महाराज शिवाजी शयनागारमें चलेगये।

शिवाजीसे हमारा यही प्रथम परिचय है, इस स्थानपर हम उनका कुछ पूर्व वृत्तान्त कहना चाहते हैं, इतिहास जाननेवाले पाठक इच्छा करनेसे नीचे लिखे वृत्तान्तको छोडभी सकते हैं।

सन् १६२७ ई० में शिवाजीका जन्म हुआ, बस उपन्यासिक वृत्तान्तके समय उनकी वयस छियालिस (४६) वर्षकी थी। उनके पिताका नाम शाहाजी और दादाका मालोजी भोंसले था। हम पहले अध्यायमें फलटन देशके देशमुख प्रसिद्ध निम्बालकर वंशका वृत्तान्त कहआये हैं, उसी वंशके योगपाल रावकी दीपाबाई रानीसे मालोजीने विवाह कियाथा। बहुत दिन संतानके न होनेसे अहमदनगर निवासी शाह शरीफ नामक एक यवनोंके पीरसे मालोजीने बहुत प्रार्थना की और पीरने भी मालोजीके संतानार्थ ईश्वरसे विनय की। उसके कुछ दिन पीछे दीपाबाईके गर्भसे एक संतान हुई और मालोजीने उस पीरके नामानुसार पुत्रका नाम शाहाजी रक्खा।

अहमदनगरके विख्यात लक्ष्जी यादवरावका नाम पहलेही अध्यायमें कहागया है। सन् १५९९ ई०में होलीके दिन मालोजी अपने पुत्र शाहाजीको लेकर यादवरावके स्थानपर गये थे, उस समय शाहाजीकी उम्र पांच वर्षकी थी और यादवरावकी कन्या जीजीकी आयुभी तीन चार वर्षकी होगी. वहांपर यह दोनों बालक आनंद

सहित खेलने लगे । उनको देख यादवरावने संतुष्ट हो अपनी कन्याको पुकारकर कहा, "तू इस बालकसे विवाह करेगी ?" फिर और मनुष्योंसे कहा "दोनोंका क्या सुंदर जोडा मिला है" इसीसमय शाहाजी और जीजीका परस्पर फाग खेलना देखकर सब हँसपडे, परन्तु मालोजी सहसा खडे होकर बोले "भाइयो ! साक्षी रहना, यादवराव हमारे संबंधी हुए यह बात अभी आपने सुनी । " सबने इस बातमें सम्मति प्रकाश की. यादवराव कुलीन वंशका था, शाहाजीसे अपनी कन्याका विवाह करनेकी इच्छा थी परन्तु मालोजीकी यह चतुरता देखकर विस्मित होगया ।

दूसरे दिन यादवरावने मालोजीको निमंत्रण दिया, परन्तु संबंधीके यहां उन्होंने भोजन करना स्वीकार नहीं किया और कहला भेजा कि, हम नहीं आवेंगे ।

यादवरावकी स्त्री यादवरावसे भी अधिक वंशमर्यादाकी अभिमानिनी थी. यह सुननेमें आता है कि, एक दिन यादवरावने हँसीमें यह कह दिया था कि, शाहाजीसे अपनी कन्याका विवाह कर दूंगा, इस बातपर उनकी स्त्रीने उनका बहुत निरादर किया । इस बातसे मालोजी क्रोधातुर हो एक ग्राममें चलेगये और यह प्रकाश करादिया कि, भवानी देवीने साक्षात् अवतीर्ण हो उन्हें बहुतसा धन दिया है । महाराष्ट्रियोंमें कहावत है कि, भवानीने इस समय मालोजीसे कहा था कि "मालोजी ! तुम्हारे वंशमें एक पुरुष राजा होगा, वह शंभुके समान गुणवान होकर महाराष्ट्रदेशमें न्याय विचार फिर स्थापित करेगा और ब्राह्मण व देवताओंके शत्रुओंका संहार करेगा । उसके समयसे संवत् मानाजायगा और उसकी संतान संतति सत्ताईस पीढीतक राज्य करैगी ।"

जो कुछ हो इसमें संदेह नहीं कि, इस समय मालोजीने बहुत संपत्ति पाई थी, उस धनको व्ययकर इन्होंने अपनी उन्नति करनी चाही और इस विषयमें उनके साले योगपालने भी उनकी बहुत सहायता की थी । थोडे ही दिन पीछे मालोजी अहमदनगरवाले सुलतानके अधीनमें पाँचहजार सवारोंके सेनापति और राजा भोंसलेकी उपाधि प्राप्तकर शिवनेरी और चाकणदुर्ग इन दोनों दुर्गोंके देशोंका भार प्राप्त किया और जागीरमें पूना व सुपा नगर पाया । फिर तो यादवरावको कुछ संकोच नहीं रहा और सन् १६०४ ई० में बडी धूमधामसे शाहाजीके साथ उसने जीजीबाईका विवाह करदिया और अमदनगरका सुलतान स्वयं उस

विवाहमें उपस्थित था। उस समय शाहाजीकी अवस्था दशवर्षकी थी। कालक्रमसे मालोजीकी मृत्यु होने उपरान्त शाहाजी अपने पिताकी जागीर और पदके अधिकारी हुए।

इस समयमें दिल्लीश्वर अकबर शाह अहमदनगरके राज्यको दिल्लीके अधीनमें लानेके लिये युद्ध करतेथे। वह युद्ध प्रायः पचास वर्षतक समाप्त नहीं हुआथा. अकबरके पीछे जहांगीर और उसके उपरान्त शाहजहांने अहमदनगरको जीतलिया। पीछे सम्राट्के समयमें अर्थात् सन् १६३७ ई० में यह राज्य संपूर्णरूपसे दिल्लीके अधीन होगया, और युद्ध समाप्त हुआ। इस युद्धकालमें शाहाजीभी उद्योगहीन नहीं थे। सन् १६२० ई०में (जहांगीरके शासनकालमें) वे अहमदनगरके प्रधान सेनापति मलिक अम्बरके अधीनमेंथे और एक महायुद्धमें अपना साहस विक्रम प्रकाश करके सबसे आदर पायाथा। नौवर्ष उपरान्त यह दिल्लीश्वर शाहजहांकी ओरहुए और इस बादशाहने उनको पांचसहस्र सवारों का सेनापति कर बहुतसी जागीरें दीं। परन्तु सम्राटोंका अनुग्रह आज है कल नहीं, तीनवर्षके पीछे शाहाजीकी कुछ जागीर बादशाहने लेकर फतहखांको देदी, इसकारण शाहाजी क्रोधित हो बादशाहका पक्ष त्यागकर सन् १६३२ ई० में विजयपुरके सुलतानकी ओर चले गये और अपनी मृत्यु पर्यन्त अर्थात् बत्तीस वर्षतक कभी विजयपुरके विरुद्ध शस्त्र नहीं बांधा।

नाश होतेहुए अहमदनगरके राज्यको अपने असाधारण बाहुबलको प्रगटकर दिल्लीके अधीनसे निकालनेको शाहाजीने दिल्लीकी सेनासे बहुत युद्ध किया। जब सुलतान शत्रुओंके हाथसे मारागया, तब शाहाजीने उसी वंशके एक पुरुषको सुलतान बना सिंहासनपर बैठालदिया और कुछ चतुर ब्राह्मणोंकी सहायतासे प्रजापालनकी सुंदर रीति स्थापित कर बहुतसे दुर्ग अधिकारमें किये और सुलतान के नामसे सेनासंग्रह करने लगे।

सम्राट् शाहजहांने यह सब देख क्रोधित हो शाहाजी और उनके प्रभु विजयपुरके सुलतानको एकबारही शिकस्त देनेके लिये अडतालीसहजार सवार और बहुतसे पैदल भेजे। दिल्लीश्वरसे युद्ध करनेकी सामर्थ्य विजयपुरके सुलतान और शाहाजीमें नहीं थी, कई वर्ष युद्ध होने के पीछे संधि हुई. अहमदनगरके राज्यका अंत होगया,

(सन् १६३०) और शाहाजी विजयपुरके अधीनमें जागीदार और सेनापति रहे । इन्होंने सुलतानकी आज्ञासे कर्णाटकदेशके बहुत अंश जीतलिये इसकारण विजयपुरके उत्तरमें पूनाके समीप उनकी जैसी जागीर थी दक्षिणकर्णाटक देशमें भी वैसी ही बहुत जागीर उनको मिली ।

जीजीबाई के गर्भसे शाहाजी के शम्भुजी और शिवाजी नामक दो पुत्र हुए । पहलेही इस कहावतको लिखआये हैं कि, जीजीका पिता लक्षजी यादवराव एक प्राचीन देवगढवाले हिन्दूराजाके वंशसे उत्पन्न था. जो यह बात ठीकहो तो शिवाजीके पुरातन राजवंशमें उत्पन्न होनेमें कोई संदेह नहीं । सन् १६३० ई० में शाहाजीने तुकाबाई नामकी और एक कन्याका पाणिग्रहण किया, अभिमानिनी जीजीबाई इससे क्रुद्ध हो स्वामीको त्याग पुत्र शिवाजीको ले पूनाकी जागीरमें आकर रहनेलगी. शाहाजी तुकाबाईको लेकर कर्णाटकमें रहे और वहां उनको तुकाबाईके गर्भसे वेंकोजी नामक एक पुत्र हुआ ।

शाहाजी के दो अतिविश्वासपात्र ब्राह्मण मंत्री और कर्मचारीथे । दादोजी कोंडदेव पूनाकी ओर जीजीबाई व बालक शिवाजीकी रक्षा करतेथे और नारायण पंत नामक एक और कर्मचारी कर्णाटकमें जागीरकी रक्षा करता था ।

सन् १६२७ ई० में शिवनेरी दुर्गके मध्य शिवाजीका जन्महुआ । यह दुर्ग पूनासे अनुमान पचीसकोश उत्तरको जुन्नर नामसे ख्यात है । जब शिवाजी तीनवर्षके थे, तब उनके पिता शाहाजीने तुकाबाईसे विवाह किया और प्रथम स्त्री अर्थात् शिवाजीकी माता जीजीसे उनका विछोह होगया । शाहाजी कर्णाटककी ओर चलेगये, जीजी अपने पुत्र सहित पूनामें आय कन्हैदेवके आश्रयसे वास करने लगीं ।

शिवाजीके रहनेको दादोजीने पूनामें बडा गृह बनवादिया था सो इससे प्रथम हम उसी गृहमें शाइस्ताखांसे और पाठक गणोंसे भेंट करा चुकेहैं ।

मा बेटे उसी स्थानमें रहने लगे और बालावस्थासेही शिवाजी दादोजीके यत्नसे शिक्षा पाने लगे । शिवाजीको नाम लिखना भी नहीं आता था, परन्तु थोडी उमरमेंही धनुष बाणका व्यवहार, बरछा चलाना, अनेक प्रकारके महाराष्ट्रीय खड्ग व छूरियोंका चलाना सीखगयेथे । घोडेपर चढनाभी अच्छा आताथा । महाराष्ट्री स्वभावसेही घोडेक चलानेमें चतुर होतेहैं, किन्तु शिवाजी उनसे भी अधिक विख्यात थे,

इसीप्रकार कसरत और युद्धशिक्षासे बालक शिवाजीकी देह शीघ्रही सुडौल और बलवान् होगई।

केवल अस्त्रविद्यामेंही शिवाजी समय नहीं बिताते थे, बरन वह जब अवसर पाते दादोजीके चरणोंमें बैठ महाभारत व रामायणके वीररस पूरित इतिहासों को श्रवण करते थे। सुनते सुनते इनके हृदयमें साहसका उदय हुआ, हिन्दूधर्मकी नीव भलीप्रकार दृढहुई. पहले वीरोंकी वीरताई प्राप्त करनेकी इच्छा प्रबल होने लगी, और साथ साथही मुसलमानोंसे बैरभाव उत्पन्न होगया। शिवाजीने शीघ्रही शास्त्रानुसार सब क्रियाकर्म सीख लिये. कथा श्रवण करनेकी ऐसी इच्छा थी कि, जब कुछ कालके पीछे उन्होंने देश और प्रतिष्ठा प्राप्त की, तब भी जहां कहीं कथा होती, वह बहुत कष्ट और विपदें सहकरभी वहां जानेकी चेष्टा करतेथे।

इसी भांति दादोजीके यत्नसे शिवाजी थोडेही कालमें स्वधर्मानुरक्त, और अतिशय यवनविद्वेषी होगये. उन्होंने सोलह वर्षमेंही स्वाधीन जागीरदार होनेके लिये अनेक प्रकारके संकल्प किये वह अपने समान उत्साही युवाओंको और चोरोंको चारोंओरसे इकट्ठा करने लगे, पर्वत परिपूर्ण कोंकणदेशमें उनके संग सदा आया जाया करतेथे। वह पर्वत किसप्रकार नांघे जाते हैं? मार्ग कहांको है? किस मार्गसे किस दुर्गमें पहुँचेंगे? और कौनसे दुर्ग अतिदुर्गम हैं? किस रीतिसे दुर्गपर चढाई की जाती है? कैसे रक्षा होती है? इन्हीं सब चिन्ताओंमें बालक शिवाजीके दिन बीततेथे। कभी कभी कई एकदिन बराबर इन्हीं पर्वत और तलैटियोंमें रहजाते थे! कोई दुर्ग, कोई मार्ग, कोई तलैटी ऐसी नहीं थी जिसको शिवाजी नहीं जानते हों, फिर दो एक दुर्गको अपने अधिकारमें लानेकी चिन्ता करने लगे।

बालककी ऐसी बातें और यह आचरण देखकर वृद्ध दादोजी डरे उन्होंने अनेक प्रकारसे समझाय बालकको उस पंथसे हटाकर जिससे जागीरकी भली-भांति रक्षा हो, वह शिखानेकी चेष्टा की। परन्तु शिवाजीके हृदयमें जो वीरताका अंकुर जमगया वह नहीं उखडा। शिवाजी, दादोजीका पिताकी तुल्य सन्मान करते थे, परन्तु जिस ऊंचे मार्गमें वह चलतेथे, उसका छोडना उन्होंने भला

मावले जातिको कष्टका सहनेवाला और विश्वास योग होनेके कारण शिवाजी उनसे बडा स्नेह करते थे, उनके मित्रोंमें एसाजीकंक तानाजी मालुसरे व बाजीफसलकर नामक तीनजन मावले प्रियतम और अगुए थे । अंतमें इनकीही सहायतासे सन् १६४६ ई० में तोरण दुर्गके किलेदारको किसी प्रकारसे अपने अधिकारमें लाकर शिवाजीने वह दुर्ग हस्तगत किया । इस उपन्यासके प्रारंभमें ही तोरण दुर्गका वर्णन किया गया है । इस प्रथम विजयके समय शिवाजीकी उमर उन्नीस बर्षकी थी । इसके एकही वर्ष पीछे तोरण दुर्गके एक कोश दक्षिण पूर्वमें एक तुङ्गगिरि श्रृंगके ऊपर शिवाजीने एक कोट बनाया और उसका नाम रायगढ रक्खा ।

विजयपुरके सुलतानने यह समस्त समाचार पाय शिवाजीके पिता शाहाजीको निरादरकर इन सब उपद्रवोंका कारण पूँछा । विजयपुरके विश्वासी कर्मचारी शाहाजी इस बातको कुछभी नहीं जानतेथे, उन्होंने दादोजीसे इसका कारण पूँछा । दादोजीने शिवाजीको फिर बुलाया । इस आचरणसे सर्वनाश होगा, यह भी उचित रीतिसे समझादिया और विजयपुरके अधीनमें कार्य करके शिवाजीके पिताने कैसा विपुल धन, जागीर, सामर्थ्य और सन्मान पाया था, वह भी दिखाया । शिवाजी पितातुल्य दादाजीसे और क्या कहें मीठी बातोंसे उत्तर देदिया, परन्तु अपने कार्यसे नहीं चूके । कुछदिन पीछे दादोजीकी मृत्यु हुई । मृत्युके कुछ विलम्ब पूर्वही दादोजीने और एकवार शिवाजीको निकट बुलाया । शिवाजी यह विचारकर उनके पासगये कि, वृद्ध फिर हमें डाटेंगे, परन्तु उस समय जो उन्होंने कहा उससे शिवाजी विस्मित होगये । मृत्यु शय्यापर दादोजीकी आँखें खुलीं, वह स्नेहसहित शिवाजीसे कहने लगे "बेटा जो चेष्टा तुम करते हो उससे बडी और कोई चेष्टा नहीं है । इसी ऊंचे मार्गमें चलकर देशकी स्वाधीनताको पालनकर ब्राह्मण, गोवत्सादिक और किसानोंकी रक्षामें मन देना, देवालय कलुषित करनेवालोंको उचित दंड देकर जो पंथ देवी ईशानीने तुम्हें दिखाया है उससे न हटना ।" वृद्धने यह कहकर प्राण छोडदिये, शिवाजीका हृदय इस दिव्य उपदेशको पाकर उत्साह और साहससे दशगुण बढगया, उस समय शिवाजीकी आयु वीसवर्षकी थी ।

उसी वर्षमें चाकण और कन्दाना दुर्गके किलेदारोंको शिवाजीने धन देनेके लालचसे अपने वशकर दोनों किलोंपर अपना अधिकार करलिया और कन्दाना नाम बदलकर सिंहगढ रक्खा। सो हम चाकण और सिंहगढकी कथा पहलेही लिख आये हैं। शिवाजीकी सौतेली माका भ्राता (तुकाबाईका भाई) बाजी मोहिते को दुर्गका भार मिलाथा। एकदिन अर्द्धरात्रिके समय अपनी मावली सेनाको ले शिवाजीने सहसा इस कोटपर चढाईकर उसको अपने अधिकारमें कर-लिया। अपने मामापर कोई अत्याचार न किया और उनको अपने पिताके निकट भेजदिया। तदनन्तर पुरन्दर दुर्गके अधीश्वरकी मृत्यु होने उपरान्त उसके पुत्रोंमे विरोध उत्पन्न हुआ, शिवाजी उनमेंसे छोटे भाइयोंकी सहायताके मिषसे स्वयं उस दुर्गपर अधिकार कर बैठे। इस अनुचित आचरणपर शिवाजीके तीनों भ्राता उनसे नाराज होगये, परन्तु जब शिवाजीने देशको स्वाधीन करनेका अपना महान आशय उनसे कहा, व उस कार्यकी सिद्धिके अर्थ सहायता मांगी, तब उन लोगोंका क्रोध शान्त होगया। शिवाजी बातें बनानेमें अनुपम थे, उनकी बातें सुनकर और उनका आशय समझकर तीनों भ्राताओंने शिवाजीके अधी-नमें कार्य करना स्वीकार किया।

इसीप्रकार शिवाजीने एक एक करके अनेक दुर्ग अपने हाथमें करालिये, उन सब दुर्गोंका नाम लिखकर इस उपन्यासको बढ़ानेकी आवश्यकता नहीं है। सन् १६४८ ई० में शिवाजीके कर्मचारी आबाजी स्वर्णदेवने कल्याण दुर्ग और समस्त कल्याणीके दुर्गको जीतलिया। तब विजयपुरके सुलतानने क्रोधित हो शिवाजीके पिता शाहाजीको कारागारमें भेजा और उनको एक पत्थरके गृहमें रख यह आज्ञा दी कि जो मुकरिर वक्तमें शिवाजी हमारे कब्जेमें आना मंजूर नहीं करेगा तो इस घरका द्वार (जिसमें शाहाजी थे) बंद कियाजायगा। शिवाजीने दिल्ली-श्वरसे प्रार्थना करके पिताके प्राण बचाये परन्तु तो भी चारवर्षतक शाहाजी विजयपुरमें नजरबंद रहे थे।

जौलिके राजाचन्द्ररावको शिवाजीने अपनी ओर लाने और यवनोंकी अधी-नता बेडी तोडदेनेके अर्थ सलाह दी। जब वह इस बातपर सम्मत न हुआ तब शिवाजीने अपने आदमियोंसे उस राजा और उसके भाईको मरवाय

रात्रिकालमें हमलाकर उस किलेको जीतलिया । शिवाजीने अपने कार्य सिद्ध करनेको बहुत कार्य निन्दनीयभी किये थे. परन्तु इससे अधिक नीच कार्य उन्होंने नहीं कियाथा. समस्त जौलीदेशमें शिवाजीने अपना अधिकार जमाया और उसीवर्ष (सन् १६५६ ई०) में प्रतापगढ नामक एक नवनि दुर्ग बनवाया, अपने प्रधानमंत्री सम्राजपंतको (पेशवा) का खिताब दिया । परन्तु दोवर्ष पीछे सम्राज कोंकणदेशमें फतहखांसे हारा. तब शिवाजीने उसे अयोग्य समझ अधिकार रहित कर दिया और मोरेश्वर त्रिमुल पिंगली को अपना पेशवा बनाया । पाठकगण प्रथमही मोरेश्वरसे साक्षात कर आये हैं । समस्त कोंकणदेशको जीतनेके लिये बहुत सेना इकट्ठी की गई थी ।

अब विजयपुरके सुलतानने शिवाजीको एकबारही विध्वंस करनेका संकल्प किया। उसने अब्बुलफजल एक प्रसिद्ध वीरको ५००० हजार सवार और ७००० हजार पैदल और बहुतसीं तोफें लेकर शिवाजके ऊपर भेजा । अब्बुलफजलने सुलतानसे गर्वितहोकर कहा था कि “ बहुत जल्दी उस नाचीज बागीको जंजीरसे बांध सुलतानके पायतख्त के नजदीक हाजिर करूंगा ।”

(सन् १६५८ ई० में) इस सेनासे युद्ध करना असंभव जान शिवाजीने संधि की प्रार्थना की । अब्बुलफजलने गोपीनाथ नामक एक ब्राह्मणको शिवाजके स्थानपर भेजा । उस ब्राह्मणसे प्रतापगढ दुर्गके निकट सभामें शिवाजी मिले. बहुत विलम्बतक कथोपकथन होने उपरान्त रात्रि व्यतीत करनेके लिये गोपीनाथको एक गृहमें ठहरादिया ।

रातके समयमें शिवाजी गोपीनाथसे मिलने आये। शिवाजीने गोपीनाथको अनेकप्रकार समझा बुझाकर कहा “आप ब्राह्मण हमारे पूज्य हैं किन्तु मेरी बात सुनिये मैंने जो कुछ कियाहै हिन्दू जातिके अर्थ, हिन्दू धर्मके अर्थ किया है; स्वयं जगजननी भवानीने मुझे ब्राह्मण और गोवत्सादिककी रक्षाके अर्थ उत्तेजित कर हिन्दू देव और देवालयोंकी अप्रतिष्ठा करनेवालोंको दंड देनेकी आज्ञा दी है और सनातनधर्मके शत्रुओंको दंडदेनेको कहा है । आपभी ब्राह्मण हैं, भवानीकी आज्ञा मान अपने जातिवाले और देशवाले लोगोंमें स्वच्छंद वास कीजिये । ” इसप्रकार उत्तेजित वाक्य कह शिवाजीने गोपीनाथसे प्रतिज्ञा की कि जय होनेपर तुमको हेराग्राम देंगे और तुम्हारे बेटे पोते

उस ग्रामकी संपत्तिको भोगेंगे और यह ग्राम तुम्हाराही रहेगा। गोपीनाथने इन बातोंसे प्रसन्न होकर शिवाजीकी सहायता करना स्वीकार किया. परामर्श स्थिर हुआ कि कार्यकी सिद्धिके लिये शिवाजीसे अब्बुलफजलकी मुलाकात अवश्य होनी चाहिये।

कईदिन पीछे प्रतापगढ दुर्गके निकटही मुलाकात हुई, अब्बुलफजलकी पांचसौ सेना दुर्गसे कुछ दूर पर खडीरही और वह स्वयं केवल एक सेवकके संग पालकीमें बैठ नियत कियेहुए गृहमें आगया। शिवाजीने बहुत यत्नसे उसदिन स्नान पूजादिक प्रभातहीको समाप्त कर स्नेहमयी माताके चरणोंमें शिर रख उनसे आशीर्वाद ग्रहण किया। रुईकी कुरती और पगडीके नीचे लोहेका बख्तर और कूडी धारणकर दुर्गसे उतर बालसखा तानाजी मालुसरेको साथ ले अब्बुलफजलके निकट आये मिलनेके मिषसे तीक्ष्ण छुरी अब्बुलफजलकी छातीमें भोंकदी और उसे पृथ्वीपर गिराया। शिवाजीका मनोरथ सफल हुआ, परन्तु इस निन्दाके कार्यसे उनके यशपर सदाके लिये कलंक रहा, इसके पीछे उसी समय शिवाजीकी गुप्तसेनाने आकर अब्बुलफजलकी सेनाको पराजित किया, अनाजीदत्त शिवाजीके प्रसिद्ध कर्मचारीने पन्हला और यवनगढ लेलिया, शिवाजीने वसंतगढ और विशालगढपर अपना अधिकार जमाया विजयपुरके दूसरे सेनापति रुस्तम जमाको सन्मुख समरमें हराय विजयपुरके द्वारपर्यन्त जायकर देश लूटलाये।

विजयपुरके साथ युद्ध औरभी तीनवर्षतक चला था, परन्तु किसी पक्षकीभी जय भलीभांति नहीं हुई। पीछे (सन् १६६२ ई० में) शाहाजीने बीचमें पड विजयपुर और शिवाजीके बीचमें संधि स्थापन करादी। जब शाहाजी अपने पुत्र शिवाजीको देखने आये, तब शिवाजीने पिता भक्तिकी सीमा दिखादी। आप घोडेपरसे उतरपडे और राजाओंके समान जानकर पिताजीको प्रणाम किया, पैदल उनकी पालकीके संग संग चलने लगे, उन्होंने बैठनेकी आज्ञा दी तो भी उन्होंने पिताके सन्मुख आसन ग्रहण नहीं किया। कुछदिन पुत्रके समीप वासकर शाहाजी परमप्रसन्न हो विजयपुरको गये, और परस्पर संधि स्थापन करादी। शिवाजीने पिताजीकी कराई हुई इस संधिके विरुद्ध कभी कोई काम नहीं किया। जबतक शाहाजी जीते थे, तबतक शिवाजीमें व विजयपुर वालोंमें कोई युद्ध नहीं हुआ, उनके पीछे जो युद्ध हुआभी उसमें शिवाजीने चढाई नहीं की थी।

सन् १६६२ ई० में यह संधि स्थापन हुई । प्रथमही कहआये हैं कि, इसी वर्षमें मुगलोंसे युद्ध प्रारंभ हुआ और हमारे उपन्यासका प्रारंभभी इसी समयसे हुआ है । मुगलोंसे युद्ध प्रारंभ होनेके समय शिवाजीने समस्त कोंकणदेशको अपने अधिकारमें करलिया था, उनके पास सातहजार सवार और पचासहजार पैदल सेना थी।

नववाँ परिच्छेद।

शुभकार्य सिद्ध हुआ।

उहि २ जूझो रणखेतनमें, कीरति चली अगारू जाय।
गगन स्वर्ग बिच यह यश पहुँचै, गावें सुर नर मुनि गुणग्राम।
जरहिं शत्रुगण शोकानलमें, दियना कुलको जाय बुझाय॥

(आल्हखड)

सूर्य भगवान् अस्ताचल चूडावलम्बी हुये हैं, सिंहगढ दुर्गमें सेना चुपचाप सज्जित होरही है, बाहरके मनुष्य नहीं जान सकते कि, किलेमें क्या होता है ?

दुर्गके एक ऊंचे स्थानमें कई महावीर जन खडे हैं, उस दुर्गकी चोटीसे क्या शोभा दृष्टि आती है ? दुर्गके नीचेमें पूर्वकी ओर नीरा नदी प्रवाहित हुई है, उस नदीके किनारोंने वसंतकालके नवपुष्प पत्र और दूर्वादलसे शुशोभित हो अतिमनोहर रूप धारण किया है, उत्तरकी ओर बहुत दूरतक सुंदर हरेहरे खेत सूर्यकी किरणोंके पडनेसे उज्ज्वल दिखाई देते हैं । विस्तारसे वसी हुई सुंदर पूना नगरी शोभा पा रही है, वह योद्धा उसी ओर देखते हुये यह चिन्ता करते हैं कि आज इस नगरीमें क्या भयंकर होनहार घटना होगी ? कोई कोई दक्षिण और कोई कोई पश्चिमकी ओर देखते हैं, ऊंचे पर्वतोंके पीछे ऊंचे पर्वत जहांतक दृष्टि पहुँचती है वहांतक अनंत पर्वतश्रेणी नीलमेघमालासे छाईहुई हैं, अथवा अस्ताचल चूडावलम्बी सूर्यनारायणकी किरणोंसे अपूर्व शोभा धारण कररही हैं, परन्तु हम जानते हैं कि, यह वीरगण इस अनुपम पर्वतके दिखावको नहीं देखते बरन कुछ औरही चिन्ता करते हैं । जिस संग्रामसे या जिस बडे साहसके कार्यसे

एककालहीमें बहुत दिनोंका चाहा हुआ फल मिलताहो या एकही बारमें शल्यानाश होजाय, उसके प्राप्त कालमें एक मुहूर्त्तको अतिशय साहसवाला हृदयभी चिन्तापूर्ण और स्तंभित होजाता है । आज शाइस्ताखां और मुगलोंकी सेना छिन्न भिन्न और पराजित होगी, या विषम साहससे महाराष्ट्र–सूर्य एक वारही चिर अंधकारमें छिपजायगा. इसी प्रकारकी चिन्ता इन योद्धाओंके हृदयमें खल बलाती है । किसीने इस चिंताको प्रगट नहीं किया. सब यही कह रहेथे कि, भवानीके आशीर्वादसे अवश्यही जय होगी, तो भी जब योद्धा योद्धाकी ओर देखने लगे, तब किसीके मनका भाव छिप न सका । केवल बीस वा पचीस योद्धा लेकर शिवाजी शत्रुसेनाके मध्यमें जाकर चढ़ाई करेंगे । ऐसे भयंकर कार्यको कभी शिवाजीने किया या नहीं भगवान् ही जाने । फिर भला क्यों नहीं वीरोंके ललाटपर क्षणभरके लिये चिन्तारूपी मेघ छाजायंगे ? उसी वीर मंडलीमें बहुदर्शी पेशवा मोरेश्वर त्रिमूल पिंगली थे । यह बालकपनसेही शिवाजीके पिता शाहाजीके पास रहकर युद्धकार्यमें लगे रहते थे, फिर महाराज शिवाजीके पास आकर प्रतापगढका चमत्कार दुर्ग उन्होंने ही बनाया । चार वर्ष हुए पेशवाकी उपाधि पाय उन्होंने उस पदकी योग्यता भली भांति दर्शाई थी । जब शिवाजीने अब्दुलफजलका वध किया तब मोरेश्वरने ही उसकी सेनापर आक्रमण कर उसे परास्त किया था, फिर मुगलोंसे युद्ध प्रारंभ होनेपर यही पैदल सेनाके सरनोबत अर्थात् सेनाध्यक्ष थे । युद्धमें साहसी, विपदमें स्थिर और अविचलित, परामर्शमें बुद्धिमान् और दूरदर्शी इन मोरेश्वरसे अधिक कार्यमें चतुर कर्मचारी वहां शिवाजीका यथार्थ बंधु और कोई न था ।

तहां आबाजी स्वर्णदेव नामक दूसरे एक जन दूरदर्शी और चतुर बुद्धिके ब्राह्मण थे । उनका नाम तो नीलोपंत स्वर्णदेव था, परन्तु यह आबाजीहीके नामसे विख्यात थे । उन्होंने सन् १६४८ ई० म कल्याण दुर्ग और समस्त कल्याणदेश जय किया और अब रायगढका प्रसिद्ध दुर्ग बनवाना आरंभ करदिया था । प्रसिद्ध नामवाले अनाजी दत्तभी आज सिंहगढमें आये थे । उन्होंने चार वर्ष हुए कि, पन्हाला और पवनगढ हस्तगत किया था । यह भी शिवाजीके कर्मचारियोंमें एक प्रधान और अतिशय कार्यचतुर थे ।

सवारोंके सेनापति निताईजी और पहलकर सिंहगढमें नहीं थे, यह किसीप्रकार मुगल सेनाके सन्मुखसे जाकर औरंगाबाद और अहमदनगरको विध्वंस कर आये थे, जिसको पाठकोंने शाइस्ताखांकी सभामें चांदखांके मुखसे सुना है। इस समय सिंहगढमें केवल थोडेसे सवार एक नीची पदवीके सेनापतिकी अधीनतामें रहते थे।

पहले अध्यायमें शिवाजीके प्रधान मावले जातिवाले तीन बालमित्रोंका नाम लिख आये हैं उनमें बाजीफसलकर तीनवर्ष पहलेही स्वर्गवासी हुए थे, तानाजी मालुसरे और येसाजी कङ्क आज सिंहगढमें उपस्थित थे। वह बालावस्थाकी मित्रता, जवानीका विषम साहस अबतक नहीं भूले और शिवाजीको प्राणोंकि समान चाहते थे। यह बहुत बार रात्रिमें मावली सेना लेकर शिवाजीके साथ सैकडों पहाडी किलोंपर चुपचाप चढगये थे और उनको अपने अधिकारमें करलिया था। सूर्य अस्त होगये, सन्ध्याकी छाया धीरे धीरे जगत्में उतरती आती है, वह वीरमण्डली अबतक कोटके ऊपर खडी है कि, इतनेमें शिवाजी वहां आनकर उपस्थित हुए। उनका वदनमंडल गंभीर और दृढ प्रतिज्ञासे युक्त था, और भयका लेशमात्र भी दृष्टि नहीं आता, उनके नेत्र उज्वलथे, वह वस्त्रके नीचे बख्तर और अस्त्र लगाये हुए थे, आज रात्रिमें बडे भयंकर कार्यके कारण तैयार हुए थे। उनकी दृष्टि स्थिर और अविचलित थी।

वह धीरे धीरे बोले। "सब ठीक है ? भाइयो विदा दो।"

कुछ देरतक सब चुप रहे, फिर मोरेश्वर बोले "क्या आपने यह स्थिर करलिया कि आज रात्रिमें स्वर्णदेव, या अन्नाजी या मैं आपके संग नहीं जाने पावेंगे? महात्मन्! विपद्कालमें कब हम लोगोंने आपका साथ नहीं दिया है।

शिवाजी। "पेशवाजी! क्षमा कीजिये और अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं है. आप लोगोंका साहस, आप लोगोंका विक्रम, आप लोगोंकी विद्वत्ता मैं भलीप्रकार जानताहूं किन्तु आज क्षमा कीजिये। भवानीकी आज्ञासे आज मैंने बडी कडी प्रतिज्ञा की है. आज यातो यह कार्य साधन होगा, नहीं तो इन अकिञ्चन कर प्राणोंको न रक्खूँगा। आप आशीर्वाद कीजिये कि जयलाभ करूं. यदि अमंगल हो और आजके कार्यमें मेरे प्राण जाँय. तथापि आप तीन जनोंके

रहनेसे महाराष्ट्रका सभी कुछ रहेगा। यदि आप लोग मेरे साथ प्राण दे देंगे तो देश किसकी बुद्धिबलसे रहेगा ? स्वाधीनता किसके बाहुबलसे रहेगी ? हिन्दू गौरवकी रक्षा कौन करेगा ? अब यात्राकालमें और कुछ न कहिये। ,,

पेशवाने समझा कि, अब कहना वृथा है. फिर और कुछ नहीं कहा। तब शिवाजी पेशवासे बोले—

प्रिय मोरेश्वर ! " आपने पिताके निकट कार्य किया है, आप हमारे पिताकी तुल्य हैं. आशीर्वाद दीजिये कि आज जय लाभ हो. ब्राह्मणका आशीर्वाद अवश्य ही फलेगा। आबाजी तानाजी ! आपभी आशीर्वाद दीजिये कि मैं कार्य करने को जाऊं " सबने नेत्रों में नीर भरकर बिदा दी।

फिर शिवाजीने तानाजी और येसाजीसे कहा " बालकपनके मित्र बिदा दो "

दोनों खेदके मारे मौन रहगये. कुछ विलम्ब पर तानाजी बोले;—

प्रभू किस अपराधसे हमैं आप संग नहीं लेचलते ? वह कौनसी रातका ब्यौरा है ? या कौनसे युद्धकी जय है ? कि मैं महाराजके संग नहीं था ? पहली वार्ता स्मरण-कर देखिये कि कोकणदेशमें आपके साथ कौन फिरता था ? पहाड़ोंकी चोटियोंपर, तलैटियेंमें, पर्वतोंकी कंदरा व नदियोंके तीरपर कौन आपके साथ दिनको शिकार खेलता, रात्रिमें एक साथ सोता, वा दुर्ग जीतनेके परामर्श कौन करता था ? विचार देखिये कि, वह यही तीन जन थे। येसाजी मृतबाजी और यह दास तानाजी। बाजीने अपने प्रभुके कार्यमें शरीर देदिया, हमारीभी इसके सिवाय और कुछ इच्छा नहीं है। आज्ञा दीजिये कि आपके साथ हमलोगभी चलें, जय हुई तो प्रभुके आनंदमें आनंद मनावेंगे यदि आपका अमंगल हुआ तो विचार देखिये कि हमारे इस स्थान पर जीवित रहनेसे कोई उपकार नहीं हो सकता हम लोगोंका ऐसा बुद्धिबल नहीं जो फिर राज्यकार्यमें सहायता करसकें। आप अपने बालमित्रोंको निराश न कीजिये। "

महाराज शिवाजीने देखा कि तानाजीके नेत्रोंमें जलभर आया तब उन्होंने मोहित हो तानाजी और येसाजीको भेंट करके कहा भ्रात: ! " मोरे नहिं अदेय कछु तोरे " शीघ्र—रणमेंको तैयार हो जाओ। दोनों पवनवेगसे दुर्गके नीचे उतरे जहां वर्षाकालके सायंकालीन काले काले बादलोंके समान अगणित सेना सज रही थी शिवाजी अन्तःपुरमें चले गये।

दुखिनी जीजी घरमें इकली बैठीहुई शिवाजी अपने पुत्रको आजकी विपद्से रक्षाकरनेके लिये प्रार्थना करती थी इतनेमें शिवाजी आकर बोले "माता आशीर्वाद करो मैं बिदा होताहूं।"

जीजी—स्नेह पूर्ण स्वरसे बोली बेटा ! आ तुझे एक बार हृदयसे लगालूं । जनै कब यह तेरी विपद् दूर होगी और कब मेरा शोक और चिन्ता जायगी ?"

शिवाजी । "मातः ! तुम्हारे आशीर्वादसे किसविपद्से निस्तार और किस समरमें जय नहीं पाई है ?"

जीजी । "पुत्र ! चिरंजीवी हो ईशानी तुम्हारी रक्षा करें ! यह कह स्नेह सहित पुत्रके मस्तकपर हाथ रक्खा और दोनों नेत्रोंसे अश्रुजल बहकर दुर्बल वक्ष-स्थलके ऊपर गिरनेलगा ।

शिवाजीने सबसे बिदा लेली थी, अबतक उनकी दृष्टि स्थिर और स्वर कंपित था, परन्तु अब नहीं रोक सके, दोनों नेत्र डबडबा आये गद्गद वचनोंसे बोले—

"स्नेहमयी जननि ! मेरी ईशानी तुम्हीं हो, तुम्हारीही पूजा जन्मभर तक करूंगा, तुम्हारेही आशीर्वादसे सब विपदोंको तुच्छ समझताहूं" यह कहकर वीरश्रेष्ठ माताके चरणोंमें लोट मातृस्नेहसे उदयहुए पवित्र अश्रुवारिसे माताके पवित्र पद युगल धोने लगे ।

जीजीने पुत्रको हाथ पकडकर उठाया, और आँसूडालकर बिदाके समय कहा, "पुत्र ! हिन्दूधर्मकी जयकरो स्वयं देवराज शंभु तुम्हारी सहायता करेंगे" । शिवाजी आंसू पोंछते हुए धीरे धीरे बाहर गये ।

समस्त सेना सजी सजाई तैयार थी । शिवाजी चुपचाप घोडेपर चढे, और पर सेना चुपके चुपके दुर्गद्वारपर पहुँच गई ।

दुर्गद्वारसे पार होनेके समय एकजन अतिछोटी उमरवाले योद्धाने शिवाजीके सन्मुख आयकर शिरनवाया, शिवाजीने उसको पहिचानकर पूँछा—

"अय रघुनाथ हवलदार ! तुम्हारी क्या प्रार्थना है ?"

रघुनाथ । "महाराज ! जब यह दास तोरण दुर्गसे पत्रादि लाया था, उस-दिन प्रसन्न होकर आपने कुछ देना अंगीकार किया था ।"

शिवाजी । "आज इस कठिन कार्यके प्रारंभमें क्या पुरस्कार लेने आये हो ?"

"रघुनाथ। "यही पुरस्कार चाहिये कि, आप मुझे आजके कार्यको करने के लिये संग ले चलनेकी आज्ञा दें, जिन पचीस मावले योद्धाओंके साथ आप पूना नगरमें प्रवेश करेंगे दासकोभी उनके संग अपने साथ चलने दीजिये।

शिवाजी। "क्यों इच्छापूर्वक इस संकटमें पडते हो? और तुम्हारा इस विषयमें विशेष अधिकार भी तो नहीं है?"

रघुनाथ। "राजन्! मैं लघु सिपाही हूं, मेरा विशेष अधिकार क्या होगा? इतनाही है कि मेरा इस जगत्में कोई नहीं है, और कोई मरेगा तो लोग शोक करेंगे, यदि मैं इस रणमें माराजाऊं तो मेरे लिये शोक करनेवाला भी कोई नहीं है, और जो मैं आपको कार्यसे संतुष्ट करके जीताहुआ लौट आऊं, तब–तब आगममें मेरा मंगल है।"

रघुनाथके वह काले काले भौंरोंके लजानेवाले बाल नत्रोंके ऊपर पडे हैं, सरल उदार मुखमण्डलपर बीर प्रतिज्ञा विराजरही है। थोडी उमरके योद्धाकी यह वार्ता सुन और उदार मुखमण्डल देखकर शिवाजी संतुष्ट हुये, अपने संग पूनाके चलनेकी आज्ञा दी। रघुनाथ शिरनवाय छलांगमार घोडेपर चढगये।

सिंहगढसे लेकर पूनातकके सब मार्गमें शिवाजीने अपनी सेना रक्खी। संध्याकी छायामें चुपचाप उस पंथके स्थान स्थानमें सेना टिकाने लगे।

वह कार्य पूरा होगया, रात्रिने संसारमें गाढ अंधकार विस्तार किया, शिवाजी तानाजी और येसाजी, केवल पचीस मावलियोंको साथले पूनाके निकट एक बडे वनबागमें पहुँचकर वहां छिपरहे। रघुनाथ परछाईके समान महाराज शिवाजीके पीछे रहे।

और अधिक गाढ अंधकारने उस आमके बागको ढकलिया, संध्याकी शीतल वायु आकर उस उपवनमें मर्मर शब्द करने लगी, संध्याके पथिक एक एक करके उस काननको करवटमें छोड पूनाकी ओर चलेगये, उन्होंने निबिड अंधकारके सिवाय और कुछ नहीं देखा, व पत्रोंके मर्मर शब्दको छोडकर कुछ नहीं सुनपाया।

क्रमसे पूनानगर शब्दहीन हुआ दीपावली निर्वाण हुई उस मौनी नगरसे कभी कभी प्रहरियोंका उंचा शब्द और समय समयमें सियारोंका अमंगल हुआन वायुके प्रवाहसे सुनाई आता था।

अचानक तड तड तड शब्द हुआ, शिवाजी चकित हृदयसे उसी ओर देखने लगे, वह शब्द गलियोंके भीतर होता है, नगरके बाहरसे कुछ दिखाई नहीं देता।

फिर तड तड तड शब्द आया, शिवाजीने फिर देखा तो बहुत आदमी मसालें लिये बाजा बजाते बजाते सुंदर राजमार्गपर चलेआते हैं, यही बरात है।

बरात समीप आई। पूनाके चारों ओर दीवार नहीं थी, इस कारण सब साफ दिखाई देता है। मार्ग लोगोंकी भीडसे भरा है, नानाप्रकारके बाजे बजनेसे अधिक उच्चशब्द होता है। बरातके संग अनेक सवार और अधिक पैदल हैं।

शिवाजीने चुपचाप बालकपनके मित्र तानाजी और येसाजीको हृदयसे लगाया। एक दूसरेको देखने लगे। ''कदाचित् यही अंतिम दर्शन है,—यह विचार सबके मनमें उत्पन्न हो नेत्रोंके मार्गसे प्रगट हुआ, परन्तु बोला कोई नहीं था, चुपचाप शिवाजी और उनके संगी बरातके साथ मिलगये।

विवाहवाले राजभवनके निकट पहुँचे, तब राजभवनकी कामिनियें आकर खिड-कीसे बरात देखने लगीं धीरे धीरे बरात चलीगई और स्त्रियेंभी शयन करनेके गई; उन यात्रियोंमेंसे कोई तीस मनुष्य शाइस्ताखाँके गृहके समीप छिप रहे, विवाहका कुलाहल थमा और शुभकार्यभी सिद्ध होताचला।

रजनी और अधिक गंभीर हुई, शाइस्ताखांके बबरचीखानेके वहां थोडा थोडा शब्द होनेलगा, खां साहबके परिवारकी सब स्त्रियें कोई सोरही थीं, कोई सोनेको थीं उन्होंने उस शब्दको सुनकर भी कुछ ध्यान न किया।

एक, दो, तीन, इसप्रकार बराबर तीन ईंटे निकल पडीं रेता झरझर करके गिरा। तब स्त्रियें संदेह सहित उस स्थानको देखने आईं,। देखा तो मोकलेके भीतर मनुष्यके पीछे मनुष्य चैंठियोंकी लगारके समान गृहमें चले आते हैं तब उन्होंने चिल्लाकर शाइस्ताखांको जगाया और उससे सब वृत्तान्त कह सुनाया। खां साहब स्वप्नमें देखते थे कि शिवाजीसे संधि प्रार्थनाके अर्थ विनती कररहे हैं, अब उन्होंने सहसा जागरित होकर सुना कि शिवाजीने पूना हस्तगत कर हमारे महलोंपर आक्रमण किया है।

खां साहब भागनेकी चेष्टासे एक द्वारपर आये, वहां देखा तो बख्तर पहिरे हुए एक महाराष्ट्रीय योद्धा खडा है दूसरे द्वारपर गये, वहां भी एक खडा है। मारे

डरके सबद्वार बंदकर खिडकीसे कूद भागना चाहते थे कि इतनेमें 'हर हर महादेव, कहकर महाराष्ट्रियोंने उसके बगली गृहको घेर लिया।

चारों ओर कुलाहल मचा कि राजपुरी शत्रुओंसे घिर गई है, महलोंके रक्षक सहसा घिरकर ज्ञान शून्य होगये, अनेक घायलभी हुए थे, तथापि बचे बचाये रक्षक अपने प्रभुकी रक्षाके लिये दौडआये और उन पचीस मावलियोंको चारों ओरसे घेरलिया। शीघ्रही भयंकर शब्दसे राजमहल परिपूर्ण होगया किसी घरका दीपक बुझगया है, अंधकारमें मावलेगण पिशाचोंके समान चिल्ला चिल्लाकर हत्या करनेलगे; किसी घरमें मसालके प्रकाशसे हिंदू मुसलमान युद्ध करते हैं, किवाडोंके झनझना शब्दसे और आक्रमण करने वालोंके वारंवार हर्षके शब्दसे विपद्से घिरेहुए और घायलोंके चिल्लाने व आर्तनाद करनेसे महल परिपूरित होगया उसी समय शिवाजी बरछा हाथमें लिये कूदकर योद्धाओंके बीचमें आन पहुँचे और पुकार कर कहा कि "सनातन धर्मकी जय हो" मावलेगण भी उनके साथ साथही हुंकार कर उठे, मुगल प्रहरी कुछ भाग गये, और शेष घायल हुए व मारे गये। शिवाजी भयंकर बरछेसे द्वारको तोड शाइस्ताखांके शयनगृहमें पहुंचे।

सेनापतिका प्राण बचानेको फौरन् कुछ मुगल उस घरकी ओर दौडे. शिवाजीने देखा कि सबके आगे मृतक चांदखांका विक्रमशालीपुत्र शमशेरखां है। उसने इसका कुछ ध्यान न किया कि पिताने आत्महत्या कर प्राण खोये हैं. बरन वह प्रभुकार्यको प्राणपनसे सिद्ध करनेको तैयार है! शिवाजीने एक मुहूर्ततक खडे रहकर 'म्यान' से तलवार निकाली और बोले "युवक! तुम्हारे पिताके रक्तसे मेरे हाथ अबतक कलुषित होरहे हैं इससे मैं तुम्हारा प्राण नहीं लूंगा, तुम मार्ग छोड़ दो"।

"अरे काफिर! अयकीतिल!! जालिमकी यही सजा है"। शमशेरखांसे अपनेको बचानेसें पहलेही शिवाजीने उसका उज्ज्वल खड्ग अपने शिरपर देखा।

उन्होंने प्राणोंकी आशा त्याग इष्ट देवी भवानीका नाम लिया और देखा कि पीछेसे एक बरछेवालेने आकर उस खड्गधारी शमशेरखांको पृथ्वीपर गिरा दिया। शिवाजीने पश्चात् फिर देखा तो रघुनाथ हवालदार!

" हवालदार ! तुम्हारा यह कार्य स्मरण रहेगा " केवल इतनाही कहकर शिवाजी आग बढ़े ।

इस अवसरको पाय खिडकीमेंसे रस्सी डाल उसके द्वारा उतरकर शाइस्ताखां भागा । कई मावले उस खिडकीके मुखकी ओर दौडे, एकने खड्ग मारा और उस खड्गके प्रहारसे खां साहबकी एक अंगूली कटगई परन्तु खां साहबने पीछे फिर कर न देखा और भाग गये उनका पुत्र अब्दुलफतेखां और समस्त प्रहरी मारेगये फिर शिवाजीने देखा कि घर, आंगन, खूनसे रंग गया है, जगह जगह प्रहरियोंके मृतक देह पडे हैं, स्त्रियों और भागने वालोंके आर्तनादसे राजभवन पूरित है और अब-तक मावलेगण मुगलोंका विनाश करनेको चारों ओर दौड रहे हैं । मसालके स्वच्छ प्रकाशमें किसीका मृतदेह किसीका छिन्न मुण्ड कहीं रुधिरकी कीच भयं-कर दृष्टि आती थी । तब शिवाजीने अपने मावलियोंको निकट बुलाया । प्रत्येक समय प्रत्येक युद्धमें जय पानेपर वह वृथा प्राणनाश होते देख अप्रसन्न होते थे और यही यत्न करते थे कि शत्रुका भी प्राण न जाय, उन्होंने अपने साथियोंसे कहा " हम लोगोंका कार्य सिद्ध होगया डरपोक शाइस्ताखां अब हमसे युद्ध नहीं करेगा अब बहुत शीघ्र सिंहगढकी ओर चलो " ।

अंधेरी रातमें शिवाजी सहजसेही पूनासे बाहर हो सिंहगढकी ओर चले, प्रायः दो कोश आकर मसाल जलानेकी आज्ञा दी । बहुत सारी मसालें जलीं उन मसा-लोंके प्रकाशसे शाइस्ताखांने पूनाके मैदानसे देखा कि मरहठोंकी सेना निरापद सिंहगढ़ पहुंच गई ।

दूसरे दिन प्रभातकाल होतेही क्रोधित मुगल सेनाने सिंहगढपर आक्रमण किया परन्तु गढकी तोपोंके गोलोंसे छिन्नभिन्न हो भागना पडा । कर्त्ताजी गुर्जर और इनकी सवार सेनाने जो कि मरहठे मनुष्योंकी थी बहुत दूरतक उन मुगलोंका पीछा किया।

छोटे युद्धसे साहसी योद्धाकी युद्धप्यास और भी बढती है । परन्तु शाइस्ताखां ऐसा लडैया नहीं था, उसने औरंगजेबको एक पत्र लिखा उसमें अपनी सेनाकी भलीभांति निन्दा की और यहभी जताया कि यशवंतसिंह लोभके वश होकर शिवाजीकी सहायता करते हैं । औरंगजेबने दोनोंको अयोग्य विचारकर बुला भेजा और अपने पुत्र सुलतान मुआजिमको दक्षिण देशमें भेजा, पीछेसे उसकी सहायता

करनेके लिये महाराज यशवंतसिंह भेजेगये इसके उपरान्त एक वर्षतक कोई विशेष युद्ध नहीं हुआ। सन् १६६४ ई० के प्रारंभमेंही शिवाजीके पिता शाहाजीकी मृत्यु होनेपर शिवाजीने गढमेंही श्राद्धादि समाप्त किया, फिर रायगढमें जाय राजाकी उपाधि धारण की और अपने नामका शिक्का चलाया। अब हम इस नये भूपतिके निकटसे बिदा लेते हैं।

पाठको! तोरण दुर्गसे आयेहुए बहुत दिन हुए, चलो इस अवसरमें एकबार उस स्थानमें जाकर देखें कि वहां क्या होता है।

दशवाँ परिच्छेद।

आशा।

हृदयबिच धरे पियाको ध्यान।
नैनमूँदि बैठि रसालतर. आशलगी समझान॥ १॥
"बेग प्राणधनको" भेंटहुंगी, सुमिरौं श्री भगवान॥ २॥

जिस दिनसे रघुनाथ तोरण दुर्गमें आये थे, तबसे उनका हृदय उन्मत्त और चंचल होगया। उस प्रथम प्रेमकी आनंदमयी लहरमें एक और बालिकाका हृदय डूब गया था! जब छतपर सन्ध्या समय सरयूकी दृष्टि सहसा उस तरुण वीरपर पडी, तैसेही उसका हृदय सहसा नई उत्कण्ठासे चमकित और स्तंभित हुआ था। फिर सरयूने देखा तो वही उदार बदन मण्डल है, वही ऊंचा तरुण वेशधारी अवयव है, प्रथम प्रेमकी तरंगके वेगसे सरयूका हृदय विह्वल होगया।

उसी चलायमान हृदयसे रघुनाथको भोजन कराने गई थी, उसी ओर खडे होकर देवविनिन्दित अंगोंकी ओर देखती रहगई, कभी कभी स्पन्दहीन हो चातककी नाईं देखती रही थी, आवश्यकता पडने पर सामनेभी आई थी। प्रेम विदग्धा सरयू नेत्रभी न फिरासकी और जैसेही चार आंखेंहुई वैसेही लाजने अधिकार दिया और वह सहज सहजसे चलीगई। चली तो आई परन्तु हृदयमें

एक नूतन भावका संचार हुआ, रघुनाथने उसकी ओर चलायमान दृष्टिसे क्यों देखा, रघुनाथ इस प्रकार चपल चित्तहोकर भोजन क्यों करते हैं? वे लंबे लंबे श्वास क्यों लेते हैं! उनके हाथ क्यों कांपते हैं? जगदीश्वर! इस देव समान पुरुषने क्या इस अभागिनीको अपने मनमें स्थान दिया है?

दूसरे दिन फिर उसी युवा वीरको देखा फिर हृदय, मन, प्राण, उसी ओर दौडे। जब योद्धा बिदा लेकर घोडेपर चढ चलागया, सरयूका प्राणभी संगही लेगया, केवल शरीर पत्थर प्रतिमाके समान उस मंदिरमें रहा! योद्धा समर छेत्रमें चला गया, वीरका मन ऊंची ऊंची अभिलाषाओंसे उफनकर चला, सरयू इकली खिडकीके धोरे खडी हो चुपचाप बराबर गिरती हुई आँसुओंकी धारको पोंछती अपने गालोंपर बहाती रही।

सरयू यह बात किसीसे कैसे कहे, यह मर्मभेदी दुःख किसको सुनावै?

बहुत देरतक बालिका झरोंखेके धोरे खडी रही। घोडा और घोडेका सवार बहुत देरका चलागया, परन्तु वह लडकी पलकहीन नेत्रोंसे उसी ओर देखती है. सूर्यके प्रकाशसे पर्वत माला बहुत दूरतक दृष्टि आती है, पहाडोंपर लगेहुए पेड समुद्रकी लहरोंके समान हवासे हिल रहे हैं। ऊपर पहाडोंकी चोटी परसे स्थान स्थानमें झरने झररहे हैं, वही झरनोंका जल नदी होकर बहा जाता है। नीचे सुंदर पहाडकी तराईमें ग्रामकी कुटियें दिखाई देती हैं, सुंदर हरे हरे खेत समस्त दृष्टि आते हैं, उनके बीचमें होकर पर्वतोंकी कन्या धीरे धीरे बह रही हैं, और मेघ विहीन सूर्य इस सुंदर दृश्यके ऊपर अपने प्रकाशकी हिलोर आनंदसे बिछाये हुए हैं। परन्तु सरयू कुछ नहीं देखती थी, उसका मन इस मनमोहिनी शोभाके देखनेमें मगन नहीं था। वह केवल एक पर्वतके मार्गको देख रही थी क्योंकि उसका मन हरकर एक चित्तचोर उसी ओर चलागया था।

बालिकाने देखते देखते और कुछ नहीं देख पाया। उसके नेत्र फिर गाल हुये आंसू बहकर गर्दन और छातीपर गिरने लगे, उस लडकीका हृदय विदीर्ण होता था।

हृदयहीन सरयूबाला गृहके कार्यमें लगी, स्नेहमयी कन्या पिताकी सेवा करने लगी, उसके हृदयकी चिन्ता किसीसे कहने सुननेकी नहीं थी, इस कारण प्रफुल्ल मन कुछेक उदास था, सरयूने धीरे धीरे पहलेके समान कार्यमें मन लगाया। धीरजही रमणियोंका प्रधान गुण है, धीरजहीको स्त्रियें बालकपनसे अभ्यास करतीं हैं। इस विषम संसारके नानाशोक दुःख, पीडा, यातना और भयंकर घबराहटमें स्त्रियें धीरज धारणकर संसारके कार्य निर्वाह करती हैं। असहनीय शोक यातनाको हृदयमें छिपाकर हंसमुखी स्वामीकी सेवामें लगी रहती हैं, और कठिन पीडाको तुच्छ समझ स्नेहमयी यत्नसहित संतानका लालन पालन करती हैं। सुना है कि प्राचीनकालमें तपस्वी इन्द्रियोंके सुखको तुच्छ जान सहजसेही सहस्रों दुःख सहन करते थे। परन्तु जब इस संसारकी प्रेममयी स्त्रियोंको सहस्र पीडा, सहस्र दुःख, सहस्र अपमान सहन करके भी एक चित्तसे स्वामीकी सेवा करते देखते हैं, जब स्नेहमयी जननीको पीडा, दरिद्र, संसारकी अगणित और महायन्त्रणा सरलतासे सहते हुए पुत्र कन्याके पालन पोषणमें मगन देखते हैं, तब हम बनवासी तपस्वियोंकी वह वार्ता भूलकर इस संसारमें गृहस्थिनी तपसियोंकी सहिष्णुता देखकर विस्मित होते हैं। रमणीरत्न सरयूबालाने बाल्यकालसेही सहनशीलताका अभ्यास किया था, वह चुपचाप पिताकी सेवा करती हुई संसारके कार्योंको निर्वाहकर हृदयकी व्यथाको हृदयमेंही दुराने लगी।

संध्याकालमें पिताके भोजन समय उनके निकट बैठी, अपने हाथसे पिताके शयन करनेके लिये बिस्तर बिछादिया, फिर मंद मंद चालसे अपने शयनागारमें चलीगई, अथवा उस सूनसान रात्रिमें फिर धीरे धीरे उस खिडकीके निकट चुप चाप बैठी रही।

फिर भोर हुआ, फिर दिन बीतनेपर संध्या हुई, सप्ताह बीत गया, एक मास बीता परन्तु वह तरुणवीर नहीं आया, न उसका कोई समाचारही पायागया। सरयूबाला उसी पर्वतके मार्गकी ओर देखती रही।

ग्याहरवाँ परिच्छेद।

चिन्ता।

शैर–अब कोई किस उम्मैदपर तुमसे लगाये दिल।
बरबाद तुमने करदिये लेकर हजारों दिल॥

जनार्दन स्वभावसेही सरल स्वभावके मनुष्य थे, सारे दिन शास्त्रानुशलिन, या देवपूजामें लगे रहते थे, वह प्रभात और सायंकालमें किलेदारके निकट मिलने जाते और कभी कभी स्थानपरभी रहा करते थे। वह एक मात्र कन्यासे अति स्नेह करते, भोजनके समय कन्याको समीप न देखनेसे उनका आहार नहीं होता, रात्रिमें कभी शास्त्रके इतिहास कहा करते, और सरयू मन देकर सुना करती थी। इसके अतिरिक्त वह सदा अपने कार्यमें लगे रहते थे, कन्याभी पहलेकी नाई पिताकी सेवाभी करती और गृहकार्यभी किया करती थी। उसके हृदयकी चिन्ता और कभी कभी ईषत् म्लान मुखको जनार्दन देखकर भी ध्यानमें न लातेथे।

बालिकाके हृदयमें सहसा जो भाव उदय हो, वह अधिक दिनतक नहीं रहता है, उसदिन संध्याकालमें और प्रभातको सरयूके हृदयमें सहसा जिस भावका अंकुर जमाथा वह एक सप्ताह, वा एक मासमेंही लोप होना संभव था। यदि सरयूकी जीवित रहती, या छोटी छोटी बहनें अथवा संघनियें खेलनेको होतीं या कोई जाति कुटुम्बका होता, तब उस माताको देखकर, वा खेलमें मग्नहो वह उस नवभावको भूल जाती। परन्तु सरयू जन्मसे इकली थी, उसने पिताके सिवाय और अपने कुटुम्बियोंको नहीं देखा था न किसीको जानतीथी, इस कारण बाल्यावस्थासेही धीर शान्त व चिंताशील थी। प्रथम यौवनमें जिसका रूप देख सरयूका हृदय डोलगया मन उन्मत्त हुआ अपूर्व सुखकी फुहार उसके ऊपर पडी, सरयू उसकी चिन्तामें मग्न हुई, दिनमें सायंकालमें प्रभातमें वही चिन्ता करती, इस कारण उस मूर्तिका विलोप होना तो एक ओर रहा बरन वह धीरे हृदयमें गंभीर अंकित होने लगी।

वह चिन्ता क्या है? यही चिंता है कि सरयू उसी तरुण सेनापतिकी चिन्ता करती। वे इतने दिनों युद्धके उल्लासमें मग्न हुए हैं, दुर्ग हस्तगत करते हैं, शत्रुओंका

विध्वंस करते हैं विक्रम और बाहुबलसे वीरनाम पाया है इस समय क्या इस अभागिनीको वह चित्तमें स्थान दिये हुए हैं? वे कह गये थे कि मैं सदा तुम्हें स्मरण रक्खूंगा क्या यह वार्ता उन्हें याद है? मनुष्योंका मन अनेक कार्य, अनेक चिन्ता, अनेक शोक और अनेक उल्लासोंसे सदा परिपूर्ण रहता है! जीवन आशा पूर्ण है आज यह करैंगे कल वह करैंगे इसी प्रकारकी अनेक आशाओंमें जीवन बीतता है । आशा फलवती हो या न हो जीवनमें सदा उल्लास भरा रहता है । राजद्वारमें, समरक्षेत्रमें, शोक, गृह व नाट्यशालामें अनेक प्रकारके कार्योंमें हृदय भांति भांतिकी चिन्तासे परिपूर्ण रहता है परन्तु अभागिनी अबलाओं पै क्या है? प्रेमही हमारा जीवन प्रेमही हमारा जगत् है जीवितेश्वर! कहीं इससे निराश मत करना धीरे धीरे एक बूंद आंसू सरयूके कपोलोंपर बह आया ।

फिर चिन्ता करती वे तरुण वीर क्या अबतक इस अभागिनीको नहीं भूले हैं? क्या इस समय इस उमरमें उनका मन स्थिर है? हाय! नये नये सुख पाकर मुझे कभीभी भूल गये होंगे । उन्हें स्त्रियोंकी क्या कमी है । सुखकी क्या कमी है? नवीन वीर इतने दिन पीछे इस अभागिनीको भूल गये । हाय नदीकी तरंगें निकटके कूलको लेकर कुछ विलंब तक खेलती हैं. उनके खेलनेसे सुमन आनंदमें मग्न हो नाचने लगता है, फिर लहरें कहीं चली जाती हैं, फूल सूखजाता है, परन्तु जल फिर नहीं आता। हमारे हृदय, हमारे जीवन, पुरुषोंके खेलकी सामग्री हैं पलभरमें खेल समाप्त होनेपर, अबलाका सारा जीवन खेद और दुःखपूर्ण है! चुपचाप सरयून एक बूंद आंसू और गिराया ।

रात्रिमें जब वह दुर्ग, और चारोंओर पर्वतमाला रोहिणीपतिकी सुधामय किरणोंमें निस्तब्ध सोई रहती, तब नील आकाश और शुभ्र निशापतिकी ओर देखते, देखते उस बालिकाके हृदयमें कितने भाव उदय होते थे, उनको कौन कह सक्ती है? ऐसा जान पडता है कि मानो उसीपर्वत मार्गके ऊपर हो एक नवीन अश्वारोही आरहा है, अश्वका रंग श्वेत है । सवारके केश उसी प्रकारसे नेत्र और माथेपर पडे हैं । मानो दुर्गमें आकर अश्वारोही उतरा और उसके मस्तकपर सुवर्ण खचित टोप बलवान सुगोल दोनों भुजाओंमें सोनेके बाजू और दाहिने हाथमें वही दीर्घ बरछा है मानो योद्धा फिर आहार करने बैठे, सरयू उनको भोजन कराती है अथवा रजनीमें

उसी छतपर सरयू योद्धाका हाथ पकडकर एक बारही अपने मनकी बात खोलकर कह रही है कभी कभी हृदयके भर आनेसे रोतीभी है वीरके शान्त और शीतल वक्षमें सरयू मुँह छिपाय पुक्का छोडकर रो रही है ओह! वह दिन कभी आवेगा? वह आनंदमय प्रतिमा क्या सरयू फिर देख पावेगी?

चिन्ताका पार नहीं, अगाध समुद्रमें उठती हुई तरंगमालाके समान एकपर एक चली आती उसपर फिर और एक सरयू विचारने लगी, मानों युद्ध समाप्त हो गया. तरुण सेनापतिने बहुत कीर्ति पायकर बडी उपाधि पाई है, परंतु वे सरयूको अबतक नहीं भूले। जैसे पिता उनसे सरयूका विवाह करनेको राजी हुए हैं मानो घर लोक परिपूर्ण है चारों ओर दीवे जलरहे हैं, बाजे बज रहे हैं, गीतगायेजाते हैं और जने क्या क्या होता है सरयू न जानती है न उसे समय मिलता है। मानो सरयू कंपित शरीर हो उस देवमूर्तिके निकट बैठी है और मानो उसने युवाके हाथमें अपना पसीजा हुआ और कांपता हुआ हाथ दे रक्खा हैं मानो उस रात्रिमें जीवितेश्वरको पाया अरे! आनंदसे बालिकाका हृदय उफनता है, वह आनंदके आंसुओंको न रोकसकी और उस वीरके शीतल हृदयमें शिर रख बारंबार रो रही है। सरयू सरयू!! उन्मादके वश न हो सँभालो।

कभी सोचती रघुनाथ प्रसिद्ध नहीं हुए, न उन्हें उपाधि मिली, रघुनाथ वही दरिद्र हैं, परन्तु सरयूने उस रघुनाथ रूपी परमधनको पाया है। पर्वतोंके नीचे जो सुंदर तलैटी दृष्टि आती हैं, जहां शान्तवाहिनी नदी शान्तभावसे वही जाती हैं, जहां हरे हरे सुंदर खेत चंद्रमाकी चांदनीमें शयन कर रहे हैं उस रमणीक स्थानकी बहुत सारी पर्णकुटीरोंमेंसे मानों एक कुटी सरयूकीभी है। जैसे दिन ढलने पर सरयूने अपने हाथसे रसोई बनाई और यत्नपूर्वक प्राणनाथके लिये तैयार कर रक्खी है कुटीके सन्मुख दूबके ऊपर सरयू बैठी है, एक ओर शिशु संतान खेलरही है, सरयू दूरके खेतोंकी ओर देखरही है और जैसे उसी ओर समस्त दिन परिश्रमकर एक दीर्घाकार पुरुष कुटीके सामनेको चला आता है। सरयूका हृदय नाचउठा, वह शिशु संतानको गोदमें ले खडी होगई मानों फिर उस श्रेष्ठ पुरुषने आकर प्रथम शिशुको

और पीछे उसकी माताको भलीभांति भेंटकर चूमलिया। नारायण सरयूका मस्तक घूमनेलगा, सरयू धन नहीं चाहती सोना चांदी नहीं चाहती, प्रसिद्धता नहीं चाहती, परन्तु भगवन्! सरयूको उस छोटी पर्णकुटी और उस श्रेष्ठ पुरुषसे निराश मतकरना गंभीर निशामें थककर सरयू उसी छतके ऊपर सोगई; बहुत देरतक सोती रहीं और एक भयंकर स्वप्न देखा, कि मानों भयानक समर क्षेत्र है, उसमें सहस्रों मुगल, सहस्रों मरहटे, छिन्न मस्तक छिन्नबाहु पडे हैं, रणभूमि रक्तसे लाल हो रही है, उसी रणभूमिमें वह नवीन वीर पडाहै ? उसके हृदयसे रुधिर बहता है और उज्ज्वलताशून्य दोनों नेत्रोंसे सरयूकी ओर देखता है। सरयू कम्पायमान हो चिल्लाकर जाग पडी देखा तो सूर्य उदय हो आया है, सब शरीरमें पसीना होता है, कंप चढगया है और दीर्घ केशपाश, छाती, कंधे और बाहोंपर पडे हैं।

इसी प्रकार एकमास, दोमास, तीनमास बीतगये, परन्तु रघुनाथ नहीं आये। ग्रीष्मपर वर्षा आई, उसपर सुंदर शरत् कालके शुभचंद्रने तारावलीको संग ले जगतको सुधापूर्ण और शान्तमय करदिया, परन्तु सरयूका तप्त हृदय शान्त नहीं हुआ। शीत आया, चलागया, फिर मधुमय वसंतकाल आया, फूल खिलने लगे आमोंपर मौर आये, वृक्ष मंजरित हुए, किन्तु पूर्ववसंतमें जो मधुरमूर्त्ति सरयूने देखी थी वह मधुकालके संग फिरकर नहीं आई।

वसंत समय व्यतीत हुआ, सरयू उसी पर्वतके मार्गकी ओर देखती रही परन्तु उस मार्गमें वह नवीन वीर नहीं दिखाई दिया।

बाँरहवाँ परिच्छेद।

निराशा।

शेर–वहभी होंगे कोई उम्मेद वर आई जिनकी।
अपनां मतलबतो न इस चर्खे कुहनसे निकला॥

बराबर चिन्ता करते सरयूका शरीर अब सन्न हो आया. मुखमलीन और दोनों नेत्र कुछेककालसे होगये। जिस लावण्यको देखकर दुर्गमें सब विस्मितहो

तेथे, वह अपूर्व प्रफुल्ल लावण्य अब नहीं है शरीर बिखराहुआ, दोनों अधर शुष्क नेत्रोंकी प्रफुल्ल ज्योति घटगई है, शरीरका यत्न नहीं, मनमें प्रफुल्लता नहीं, जनार्दन कभी कभी स्नेह सहित पूछते "बेटी! तेरा शरीर दुर्बल क्यों हुआ जाता है?" अथवा "सरयू! तेरी खाने पीनेमें रुचि क्यों नहीं है?" परन्तु सरयू उत्तर न देती, पिताभी कुछ न जानसक्ते और हँसकर दूसरी बातें करने लगते, बस सरलस्वभाव जनार्दनको यह भेद कुछ नहीं ज्ञातहुआ—

किन्तु जिस कपडेमें आग रहेगी, वह उस वस्त्रको अवश्य जलावैगीही, अतएव अतियत्नसे छिपाई हुई चिन्ता धीरे धीरे सरयूके हृदयको भस्म करनेलगी। शरीर और अधिक व्याकुल होनेलगा, वदनमंडल पीला पडगया, दोनों आँखें गडगई, बालिकाका शरीर और नहीं सहन करसका सरयूको संकटदायक पीडा हुई। भयंकर ज्वर शरीरको दग्ध करनेलगा, बालिका उसकी ज्वालासे घबडाकर "जल जल" पुकारती अथवा कभी कभी अज्ञान होकर अनेक प्रकारकी बातें करने लगती थी।

जनार्दन डरगये. परन्तु वह कारण नहीं जानते हैं। शारीरिक पीडा समझ बडे बडे वैद्योंको बुलाय कन्याकी चिकित्सा कराने लगे।

बालिकाका अंगभंगिभाव देखकर वैद्यलोग भयभीतहुए। बालिकाके शरीरमें कभी कभी पसीना आजाता, कभी शीत कंटकितहो उठता। सर्वदा अचेतन अवस्थामें रहती अनेकप्रकारकी वृथा बातें करती वह बातें ऐसी तीव्र और अस्पष्ट होतीं कि कोई उनको समझ नहीं सकता था।

छोटी छोटी रुधिरशून्य उंगलिये सदा कांपती रहतीं कभी बालिका हाथ फैलाती, कभी कांप उठती कभी चिल्ला उठती थी।

हाय! उस रोगीके मनमें कैसी कैसी चिन्ता उठती होंगी वह स्वप्नमें कैसी कैसी सूरत मूरतें देखती होगी उन बातोंको कौन कह सकता है?

कभी सन्मुखमें विस्तारित मारवाड भूमि देखती, बालूका ढेर धूधूकरता हुआ सूर्यके तीक्ष्ण तापसे तप गया है, उसी मरुभूमिमें, उसी धूपमें, मानो सरयू इकली जा रही है। हाय! प्याससे छाती फटी जाती है, जल! जल! जल! एक बूंद

पानी पी प्राण रक्षा कर शरीरकी त्वचा दग्ध हुई जाती है, जल! जल! उस मरुभूमिमें पेड नहीं ग्राम नहीं, केवल तप्तारेता, सरयूके पैर जले जाते हैं।

आकाशमें मेघ नहीं, जो हैं भी, वह धूपके तापको और बढा रहे हैं। फिर सरयूको जल कौन दे? सहसा अट्टहास सुनाई आया. सरयूने फिरकर आकाशकी ओर देखा कि रघुनाथ उसका कष्टदेख उपहास करके हंसरहे हैं; बालिका देख व क्रोधसे प्रलापकर उठी। सोताहुआ रोगी चिल्लाउठा, वैद्य डरगये।

फिर स्वप्नमें देखा कि वन अंधकारमय और जन शून्य है। उस वनमें सरयू जल्दीसे दौडीजाती है और एक व्याघ्र उसके पीछे झपटाहुआ आता है। चिल्लाकर सरयू भागरही है. उसके शब्दसे वन प्रतिध्वनित होता है. वनके कांटों से शरीर लोहूलुहान होगया है. पैरोंमें दाभकी अनी लगनेसे रुधिर प्रवाहित होता है. किन्तु भयसे खडी नहीं हो सक्ती।

हरे हरे!! शरीर जलता है पैर जलते हैं यह ज्वाला कैसे निवारण हो? इतने हीमें सन्मुख क्या देखा? कि वही श्रेष्ठ पुरुष खडे हैं. उन्होंने बायें हाथसे सरयूकी रक्षा की और दहिने हाथकी चालनामें खड्ग द्वारा व्याघ्रको मारडाला। आहा! सरयूके प्राण शीतलहुए. शान्तरोगीकी चंचलता रुकी. रोगीको गंभीर निद्रा आगई। उसदिन यह सुलक्षण देखकर वैद्यगण चलेगये।

इसीप्रकार एकमास पर्यन्त सरयू रोगग्रसित और अज्ञान रही। कभी कभी रोगकी ऐसी तीव्रता होती कि चिकित्सक लोगभी जीनेकी आशा त्याग करते। जनार्दन अपनी स्त्रीके मरने उपरान्त ऐसे उदासीन रहे कि सदा शास्त्रानुशीलन और पूजाके कार्यमेंही लगे रहते थे। एक दिनकोभी शास्त्र पाठसे निवृत्त नहीं हुये। परन्तु आज समझपडा कि संसार का माया मोह किसको कहते हैं, वृद्ध निरानंद कन्याके समीप बैठे रहते और रात्रिमें जाकर उसकी सेवा करते थे। बहुत दिन बीतने उपरान्त अनेक यत्ने और बराबर औषधियोंका सेवन करनेसे रोग कुछ घटने लगा; अनेक दिन पीछे सरयू शय्या परसे उठी, अन्न भोजन किया, इधर उधर टहलनेकी सामर्थ्य हुई, परन्तु वदन मंडल पीला, शरीरमें मानो रक्तमांस कुछ हैही नहीं.। किसीने सच कहा है कि—

मरीजे इश्क पर रहमत खुदाकी।
मरज बढता गया ज्यों ज्यों दवाकी॥

रात एकपहर गई है. क्षीण दुर्बल सरयू छतपर बैठ ग्रीष्मकालकी रातमें मंद-मंद पवनको सेवन करती है वह अब तक अतिदुबली है अभी शरीरकी ज्वाला भलीप्रकार नहीं गई, इसी कारण हवामें बैठना अच्छा लगता है।

धीरे धीरे पिछली ग्रीष्मकी बातें याद आने लगीं, जो युवा उनको वृथा आशा देगये थे, उनकीही बातें स्मरण हुई। चिंताकी तीव्रता अभी नहीं है क्योंकि शरीर अति दुर्बल है इस कारण चिन्ताशक्तिभी दुर्बल है, जिसप्रकार मंदमंद गतिसे सरयू टहलती, वैसेही उसकी चिन्ताशक्तिभी धीरे धीरे पहले वर्षकी बातोंको मनमें उठाती है।

निशाकालीन मंदमंद वायुमें मानो सहज सहज पहली बातें याद आनेलगीं, गलेमें वही हार पडा था, सरयू उसी हारकी ओर देखने लगी। देखते देखते एक बूंद जल सूखे कपोलोंसे बहकर नीचेगिरा, सरयू विलाप करने लगी "वे चाहे मुझे भूलगये हैं, पर मैं उन्हें कैसे भूलजाऊं? जबलों शरीरमें प्राण रहेंगे, तबलों इसहारको अतियत्नसे पहरेरहूंगी" फिर आंसूडाल दिये हार पहिरानेके समय जो मीठी बातें रघुनाथने कहींथीं, वह याद आई रघुनाथका रूप नेत्रोंके सामने फिरने लगा। ऐसा जानपडा कि, मानो उसी मीठीवाणीसे रघुनाथने पुकारा "सरयू!"

सरयू कांपउठी, फिर पीडितहो हंसकर विचारा "हाय! क्या मैं अपने आपेमें नहीं हूं? सब समय वही दृष्टि आते हैं अभी जानपडा कि, उन्होंने वैसीही मीठी वाणीसे मुझे पुकारा। भगवन्! यह छल कैसा?"

फिर वही कोकिल विनिन्दित शब्द सुनाई आया "सरयू!" सरयूने घबराकर पीछे दृष्टि फेरकर देखा तो-रघुनाथ खड़े हैं।

तेरहवाँपरिच्छेद।

मिलन।

शैर-"उसे देखकर मुझसे कहता है यह दिल।
मैं बिस्मिलहूं जिसका वह कातिल यही है॥

देखते देखते रघुनाथ समीप आये, और सहसा झुककर सरयूके दोनों चरण पकडकर बोले, "सरयू! प्राणेश्वरी! मुझे क्षमाकर, मेरे समान पापी इस जगत्‌में नहीं है पर तुम मुझे क्षमा करो।" रघुनाथके नेत्रजलसे सरयूके दोनों चरण भीजगये।

सरयू आनंद विस्मय और लाजसे वाक्‌शून्य होगई, रघुनाथको हाथ पकडके उठाया और कुछ न करसकी, आनंदसे उसका शरीर इसप्रकार कांपने लगा कि, जिस प्रकार वायुसे पेड काँपते हैं। जिसके प्रेममय वदनको एकवर्षसे चिन्ता किया था, जिसके हृदय, मन, प्राण, समर्पण किया था जगदीश्वर! क्या सरयूको वह खोयाहुआ धन आज फिर मिलगया?

रघुनाथ फिर कंपितस्वरसे बोले "सरयू! तुमने भी चिंता की थी, तुम रोग ग्रसित हुई थी, उस यातनामें भी तुमने मेरा नाम लिया था,--और मैं, कहां था-सरयू! क्या तुम इस पापीको क्षमा करसकतीहो?" सरयूने देखा, चांदनीमें वह कृष्ण केश शोभित, उदार, देव निन्दित मुख आंसुओंसे गीला है, उन खंजनके लजानेवाले नेत्रोंसे आंसू लगातार बहे चलेजाते हैं। सरयूके भी नेत्र भर आये।

रघुनाथ फिर बोले, "हा! यह पीला वदन देखकर मेरा हृदय फटाजाता है, मैंने तुम्हें कैसे कैसे शोक दिये हैं तुमने मुझे मनमें क्या समझा होगा" फिर धीरेसे अपनी छातीपर सरयूका हाथ रखकर बोले "परन्तु सरयू यदि तुम इस हृदयकी व्यथा जानती यदि तुम जानती कि, दिनमें रात्रिमें डेरोंमें क्षेत्रोंमें युद्धमें इस मोहिनी मूर्तिका कितना ध्यान किया है तो जो कष्ट मैंने तुमको दिया है, वह अवश्यही क्षमा कर देती। जगदीश्वर! मैं क्या जानता था, कि इस अभागेके लिये सरयूबाला चिन्ता करेगी और इसे स्मरण रक्खेगी?"

एक दूसरेकी ओर देखनेलगे, चार नेत्रोंके मिलतेही आंसुओंने झडी लगादी दोनोंके हृदय भारी आये, सरयूके दोनों हाथ रघुनाथने अपने हाथमें पकडलिये हैं. दोनोंका हृदय परिपूर्ण, मुखसे बात नहीं, मन प्राण और हृदयकी वेगवती चिन्ता मानो उन सजल नेत्रोंसे प्रकाशित होरही है ।

हे चंद्र ! रघुनाथ और सरयूके ऊपर अमृतकी वर्षा करो । तुम रातमें जागकर सब देखतेहो, परन्तु संसारमें ऐसी शोभा नहीं देखी होगी । तरुणाईमें जब यह मन प्रथम प्रेमके उल्लाससे उफन उठता है, तब नई सूर्य किरणोंके समान नये प्रेमकी आनंद हिलोर मनरूपी जगत्में पडती है, जब बहुत दिनोंके बिछुडे हुए एक दूसरेकी ओर देखते उन्मत्तके समान हो जाते हैं, जब परस्परके प्रेमसे आनन्दितहो दोनों लोकोंको भूलजाते हैं. स्थानको, समयको, दोष, गुणको, नीचे पृथ्वी व ऊपर आकाशको, भूलजाते हैं, केवल उस प्रेमानंदके सिवाय और सबको भूलजातेहैं;—तब उसी समय मानो संसारमें इन्द्रपुरी उतरआती है ।

हे सुधाकर ! और भी थोडा अमृतवर्षाओ । पवनदेव ! मंद मंद चलो; ऐसे सुखके स्थानमें तुम कभी नहीं चलेहोंगे ? जो अनुचित कार्य सरयू करती है, वह उसको नहीं जानती वह यह भी नहीं जानती कि, मैंने अज्ञात कुल शील पुरुषका हाथ पकडलिया है, वह केवल यही जानती है कि, जिस मूर्तिका एक वर्षसे ध्यान किया है, अब उस मूर्तिके साक्षात् दर्शन होरहे हैं ।

और हे रघुनाथ ! यह कार्य क्या अच्छोंके करने योग्य है ? रघुनाथभी नहीं जानते क्योंकि वह उन्मत्त हैं ।

उस राकाशशिकी विमलनिस्तब्ध चांदनीमें रघुनाथने थोडेमें अपना सब वृत्तान्त सरयूसे कह सुनाया, सरयू पुलकायमान हो उन मीठी बातोंको सुनने लगी । एक वर्षसे रघुनाथ अनेक स्थानोंमें बहुत युद्धोंमें लगेहुये थे, तोरणदुर्गमें आनेका एकदिन कोभी अवकाश नहीं पाया । अब महाराज शिवाजी राजगढमें जाय राजा उपाधि धारण कर देशशासन प्रणालीमें दत्तचित्तहुए हैं, तब रघुनाथने उनसे बिदा पाई । रघुनाथ केवल दरिद्रीहवालदार हैं, उनपर नामकी विख्याति नहीं, धन, नहीं पद नहीं फिर वह सरयू रत्नको कैसे पावेंगे ? हे जगदीश्वर ! सहायकर ! रघुनाथ यत्न करनेमें कसर नहीं करेंगे रघुनाथ उस रत्नको पायकर हृदयमें धारण करेंगे, अथवा

उसकी चेष्टामें अपने तुच्छकर जीवको दान करदेंगे, रघुनाथने आजही दुर्गमें आकर सरयूके रोगका वृत्तान्त सुना था, रात्रिमें एक बार सरयूको गुप्त खडेहोकर देखेंगे यह विचारकर धीरे छतपर आये थे परन्तु वह पीतवदन देख चुप न रहसके धीरे धीरे नाम उच्चारणकर निकट चलेआये, यदि इसमें कुछ दोषहो तो उसे सरयू क्षमा करदेगी, रघुनाथ फिर कल प्रभातही जायँगे, परन्तु जबतक देहमें प्राण रहेगा सरयूकी चिन्ता, सरयूका चंद्रमुख कभी नहीं भूलेंगे क्या सरयू कभी इस साधारण मनुष्यका स्मरण करेगी ?

पुलकित चित्तसे सरयू यह सब बातें सुनरही थी आहा! उसका तप्त-हृदय शीतल हुआ दग्ध हृदय जुडाया। परन्तु रात्रि अधिक गई है, पिता भी शयन कर रहे हैं, अब क्या सरयूको रघुनाथके निकट बैठेरहना उचित है ? इन बातोंके मनमें पडतेही सरयू उठी रघुनाथके हाथसे अपनी मृणालसम बाहु छुडायकर बोली।

" रघुनाथ ! " यह मीठानाम लेतेही सरयू लाजसे नीचे मुखकिये रहगई और कुछ न कहसकी। रघुनाथका हृदय आनन्द लहरीमें नृत्य करनेलगा। यह बोले, " सरयू ! सरयू ! और एक बार ऐसीही मधुर वाणीसे यह नाम पुकारो, मैं एक वर्षकी चिन्ता, एक वर्षका कष्ट, संपूर्ण भूल जाऊंगा। "

सरयू अति लजाती हुई बोली " रघुनाथ ! भगवान् तुम्हारी रक्षा करके तुम्हें जयलाभ करावें। इस अभागिनीकी ईश्वरके चरणोंमें यही विनती है। इसके सिवाय और कुछ चिन्ता नहीं है। " यह कह सरयू धीरे धीरे शयना-गारमें चलीगई।

उसदिन रघुनाथ तोरणदुर्गमें रहे, दूसरे दिन किलेदारसे बिदा होकर दुर्ग त्याग चलेगये।

कई महीने बीतगये, सरयूकी चिन्ता पहलेकी नाईं बलवान नहीं तो भी वैसी खेदयुक्त नहीं थी। वह आनंद और सुखकीही चिन्ता करती, माया मोहिनी आशा आकर उसके कानमें कहती, " शीघ्रयुद्ध समाप्त होगा, शीघ्र रघुनाथ विजय पावेंगे और तबभी वह तुझे नहीं भूलेंगे। " सरयूका शरीरभी प्रथमकी नाईं पुष्ट और लावण्य युक्त होगया। यह देख जनार्दन निश्चिन्त होकर वेद शास्त्रोंकी चर्चामें मन देनेलगे।

कुछ मास पीछे संवाद आया, कि सम्राट्ने अंबरके राजा जयसिंहको शिवाजीके सहित युद्ध करने भेजा है, जनार्दन महाराज जयसिंहसे मिलनेके बडे अभिलाषित थे, उन्होंने किलेदारकी अनुमति पायकर तोरण दुर्गसे यात्रा की, जनार्दन सरल हृदय शास्त्रज्ञ ब्राह्मण थे, उसको शत्रुके डेरेमें जानेसे किलेदौर व शिवाजीने कुछ बाधा न दी, बरन उनकी यह इच्छा थी कि, जयसिंहसे संधि होजाय, क्योंकि वह कदापि इनसे लडना नहीं चाहते थे ।

सब ठीकठाककर, जनार्दन कन्या सरयूके सहित तोरण दुर्गसे चले, कन्याका हृदय आनंदसे उछलने लगा ।—क्यों ?

सरयूकी चिन्ता दूर हुई, 'सरयूके शरीरसे लावण्य फटा पडता था सरयूका हृदय सदा हर्षसे भडकता रहता और उसके मुखपर सदा हँसी रहती ।

सरयूके आनंदसे पिता और भी आनन्दित हुए, दोनों निरापद राजा जयसिंहके डेरोंमें पहुँचगये । प्रियपाठक गण ! अब हम तोरण दुर्गमें रहकर क्या करेंगे चलो हम भी उसी स्थानपर चलें ।

चौदहवाँपरिच्छेद ।

राजा जयसिंह ।

चौपाई ।

वीर धुरीण नृपति अति बाँको । कोउ न पटुतर है उपमाको ।

पहलेही कह आये हैं कि, औरंगजेबने शाइस्ताखां और यशवंतसिंह दोनोंको अयोग्य समझकर बुलाभेजा और अपने पुत्र सुलतान मुआजिमको दक्षिणमें प्रेरण किया और उसकी सहायताके लिये फिर महाराजा यशवंत सिंहको भेजा था । जब इनसे कुछ कार्य न होसका, तो पीछे बादशाहने उनको दूसरे स्थानमें भेज दक्षिणमें अम्बराधिपति प्रसिद्ध राजा जयसिंह और उनके साथ दिलावरखां नामक एक विक्रमशाली अफगान सेनापतिको भेजदिया । सन् १६६८ ई० में चैत्रमासके अन्तमें जयसिंह पूनामें आये । वह शाइस्ताखांके समान निरुत्साह बैठे न रहे

बरन उन्होंने दिलावरखांको पुरन्दर दुर्गपर आक्रमण करनेकी आज्ञादी और स्वयं सिंहगढको घेरकर राजगढतक सेना सहित आगे बढआये ।

महाराज शिवाजी हिन्दू सेनापतिसे युद्ध करनेमें सम्मत नहीं हुए । वह जयसिंहके नामको, उनकी सेनाके प्रमाणको, तीक्ष्ण बुद्धिको, दौर्दण्ड प्रतापको, और पराक्रमको भलीभांति जानते थे उस प्रकारका पराक्रमी सेनापति सम्राट् औरंगजेबके यहां कोई नहीं था, और तात्कालिक फरासीसी भ्रमणकारी बर्नियर भी लिखगया है कि "हम जानते हैं, समस्त भारत वर्षमें जयसिंहके समान विचक्षण, बुद्धिमान, दूरदर्शी दूसरा मनुष्य और कोई नहीं था ।" शिवाजी प्रथमसेही हिम्मतहार बारबार जयसिंहके निकट संधिप्रार्थना करने लगे । तीक्ष्ण बुद्धि जयसिंह चतुर शिवाजीको भलीप्रकार जानते थे, इस कारण इस प्रार्थनापर उन्होंने विश्वास नहीं किया, अंतमें शिवाजीके विश्वासी मंत्री रघुनाथपंत न्याय शास्त्री जयसिंहके निकट आये और राजाको उचित प्रकारसे समझा दिया कि, शिवाजी आपके संग चतुरता नहीं करते हैं, वह क्षत्रिय हैं, क्षत्रोचित सन्मानको जानते हैं । शास्त्रज्ञ ब्राह्मणका यह सत्य वाक्य राजा जयसिंहने विश्वास किया और ब्राह्मणका हाथ पकडकर बोले, "द्विजवर ! आपके कहनेसे मुझे आशा हुई आप शिवाजीसे कहदीजिये कि, बादशाह औरंगजेब उनके विद्रोहाचरणको क्षमा कर भलीभांति सन्मान करैंगे सो इसके अर्थ मैं यह वचन देताहूं । आप अपने महाराजसे कहना, मैं राजपूतहूं राजपूतका वचन झूंठा नहीं होता ।" रघुनाथपतं यह समाचार शिवाजीके निकट लेगये ।

इसके कुछेक दिन पीछे वर्षाकालमें एकदिन राजा जयसिंह अपने डेरोंमें सभाके मध्य बैठे थे, इतनेमें प्रतिहारीने आकर संवाद दिया कि–

महाराजकी जयहो ! महाराज शिवाजी स्वयं द्वारपर खडे हैं और वह महाराजसे मिलना चाहते हैं ।"

सब सभासद विस्मित हुये, राजा जयसिंह स्वयं शिवाजीके लेनेको डेरेके बाहर चले आये और बहुत आदर मानसहित लेआये हृदयसे लगाय डेरेमें लाय कर राजगद्दीपै अपनी दक्षिण ओर आसन दिया ।

शिवाजी भी यह प्रतिष्ठा वह आदर मान प्राप्तकर प्रसन्न हुये । राजा जयसिंह कुछ देरतक मधुरालाप कर बोले "राजन्! आपने हमारे डेरेमें आकर हम लोगोंको सन्मानित किया है, इस डेरेको भी आप अपना घरही समझिये।"

शिवाजी। "राजेन्द्र! यह दास आपकी आज्ञा पालनसे कब विमुख है? आपने रघुनाथपंतके द्वारा इस दासको आनेकी आज्ञा दी थी, दास उपस्थित है। आपके महान् आचरणोंसे मैंही सन्मानित हुआ हूं।"

जयसिंह। "रघुनाथ शास्त्रीसे जो कहा था, वह याद है। नृपतिवर! मैंने जो कहा था, वह करूंगा दिल्लीश्वर आपके विद्रोहाचरणकी क्षमा दे यथेष्ट सन्मान कर आपकी रक्षा करेंगे इस विषयमें मैं वचन दे चुका हूं। यह सब करूंगा, राजपूतकी वार्ता अन्यथा नहीं होती "प्राणजांय बरु वचन न जाई"।

इस प्रकार कुछ देरतक वार्तालाप होनेपर सभा भंग हुई, डेरेमें शिवाजी जयसिंहके सिवाय और कोई नहीं रहा, तब शिवाजीने कपटा-नंदके चिह्न त्याग किये और कपोलपर हाथ धरकर चिन्ता करने लगे। जयसिंहने देखा कि, उनके नेत्रोंमें जल है।

जयसिंह बोले। "राजन्! आप यदि आत्मसमर्पण करके शोकाकुल हुये हों, तो यह खेद निष्प्रयोजन है। आप विश्वास करके यहां आये हैं, राजपूत विश्वस्तके ऊपर हस्तक्षेप नहीं करते! आजही रात्रिमें आप मेरी अश्वशालासे चढनेके लिये अश्व लेकर फिर प्रस्थान कीजिये, आप निरापद आये हैं, निरापद जांयगे, मेरी आज्ञासे कोई राजपूत आपके ऊपर हस्तक्षेप नहीं करेगा. हां, फिर युद्धमें जयलाभ करें वह अच्छा है, परन्तु हम लोग क्षात्रियधर्मको कभी नहीं भूलेंगे।

राजा जयसिंहका इतना माहात्म्य देख शिवाजी विस्मितहो धीरे धीरे बोले—

"महाराज! आपके समान पुरुषके निकट पराजय स्वीकारकर आना अंगीकार किया है, इस कारण मुझको खेद नहीं। बाल्यकालसे जिस हिन्दू धर्मके अर्थ, जिस हिन्दू गौरवके अर्थ चेष्टाकी है, वह महान् उद्यम, वह महाशय, आज एक बारही नाशको प्राप्त होगया, बस इसी चिन्तासे हृदय विदीर्ण होता है, परन्तु मैं इस बातको भी स्थिर करके आपके डेरे में आया था सो इस कारण भी खेद नहीं है।"

जयसिंह । "फिर किस कारण आप व्याकुलसे हैं ?"

शिवाजी । "बालावस्थामें आप लोगोंके गौरव गीतगाने मुझे अच्छे लगतेथे; अब भी देखा कि, वह गीत मिथ्या नहीं, संसारमें यदि माहात्म्य, सत्य, धर्म है, तो राजपूतके शरीरमें विद्यमान है । यही राजपूत यवनोंकी अधीनता स्वीकार करैं ? महाराज जयसिंह म्लेच्छराज औरंगजेबके सेनापतिहो ?"

जयसिंह "क्षत्रियराज ! बास्तवमें यह यथार्थ दुःखका कारण है, परन्तु राजपूतोंने सहजमें अधीनता स्वीकार नहीं की, जब तक सामर्थ्य रही दिल्लीश्वरसे युद्ध किया, अब बिधाताके निर्बन्धसे पराधीन हुए हैं । यह तो आपको ज्ञात होगा कि, मेवार वीर प्रवर प्रातःस्मरणीय राना प्रतापने असाध्यके साधन में भी यत्न किया था, परन्तु देखिये अब उनकी संतान दिल्लीश्वरको कर देती है ।"

शिवाजी । "इसी कारण पूछताहूं कि, जिससे आप लोगोंका इतने दिनसे वैर भाव है, उस कार्यमें आप इतना यत्न क्यों करते हैं ?"

जयसिंह । "जब दिल्लीश्वरका सेनापतिपद ग्रहण किया, उसी समय उनकी कार्यसिद्धिके अर्थ सत्य दान करदिया, जिस विषयमें सत्य दान किया है, उस कार्यको पूरा करेंगे ।"

शिवाजी । "सत्य क्या सबके निकट सब समय पालनीय है ? जो हमारे देशके शत्रु, धर्मके विरुद्धाचारी, उनसे सत्य का क्या संबंध ?"

जयसिंह । "आप क्षत्रिय होकर यह बात पूछते हैं ? राजपूतहोकर क्या यह बात पूछते हैं ? राजपूतोंका इतिहास पढिये, हजार वर्ष मुसलमानोंसे युद्ध किया, परन्तु कभी सत्य छोडा है ? कभी जयपाई, कभी पराजित हुए, परन्तु जय, पराजय, सम्पद्, विपद्में सर्वदा सत्यपालन किया है । अब वह हमारी गौरवकी स्वाधीनता नहीं. किन्तु सत्यपालन करनेका गौरव तो है । देश, विदेशमें, शत्रु मित्रमें, राजपूतोंका नाम प्रतिष्ठित है । क्षत्रियराज ! टोडरमलने बंगदेश जय किया था, मानसिंहने काबुलसे उडीशा पर्यन्त दिल्लीश्वरकी विजय पताका उडाई थी, परन्तु कभी किसीने दिये विश्वासके विरुद्ध आचरण नहीं किया, मुसलमान बादशाहके निकट जो सत्य दिया उसका पालन बराबर किया । महाराष्ट्रराज ! राजपूतोंका वचनही संधिपत्र है, अनेक संधिपत्र उल्लंघन हो जाते हैं, परन्तु राजपूतोंका वचन कभी उल्लंघन नहीं होता ।"

शिवाजी । " महाराज यशवंतसिंह हिन्दू धर्मके एक प्रधान प्रहरी हैं, उन्होंने भी मुसलमानोंके अर्थ हिन्दुओंसे युद्ध करना अस्वीकार किया था । "

जयसिंह । " यशवंतसिंह वीरश्रेष्ठ हैं और इसमें भी संदेह नहीं कि, वह हिन्दू धर्मके प्रहरी हैं । उनका मरु भूमिमय मारवाड देश; उनकी मारवाडी सेनाकी कठोर जातिवाली साहसी सेना इस जगत्‌में नहीं है । यदि यशवंतसिंह उसी मरुभूमिसे वेष्टित हो उसी सेनाकी सहायसे हिन्दोस्थानकी रक्षा और हिन्दूधर्मकी रक्षामें यत्न करते तो हमलोग उनको धन्यवाद देते । यदि वह जयहिं औरंगजेबको परास्त कर दिल्लीमें हिन्दुओंकी पताका उडाते, भारतवर्षमें हिन्दूधर्मकी रक्षा करते तब हम उनको सम्राट् कहकर सन्मान करते । अथवा यदि युद्धमें परास्त हो स्वदेश और स्वधर्मकी रक्षा करनेके लिये वीरप्रवर प्रतापके समान उसी मरु भूमिमें प्राण त्यागन करते तो हम उनको देवता जानकर पूजा करते । परन्तु जिस दिन वह दिल्लीश्वरके सेनापति होगये उसी दिनसे वह यवनोंके कार्यसाधनमें व्रतीहुए हैं । वह कार्य अच्छा हो या बुरा व्रत ग्रहण करके उसको गुप्तभावसे उल्लंघन करना क्षत्रियोंका कार्य नहीं है यशवंत सिंहने कलंकसे अपने यशमें कलंक लगाया है । जबसे वह क्षिप्रा नदीके तीर औरंगजेबसे परास्त हुए थे तबसे वह उसके अतिविद्वेषी होउठे नहीं तो वह ऐसा नीच कार्य कभी नहीं करते " ।

चतुर शिवाजीने देखा कि, जयसिंह यशवंतसिंह नहीं है । फिर कुछ विलम्ब पश्चात् बोले:—

"हिन्दूधर्मकी उन्नति चाहना निन्दित कार्य है ? हिन्दुओंको भ्राता समझ सहायता करना क्या अनुचित कार्य है ? " ।

जयसिंह--"मैंने यह नहीं कहा यशवंतसिंहने क्यों नहीं औरंगजेबका कार्य त्यागकर जगत् और ईश्वरके सन्मुख आपका पक्ष लिया ? आप जिस प्रकार स्वाधीनताकी चेष्टा करते हैं उन्होंने क्यों वह मार्ग अवलम्बन नहीं किया ? सम्राट्‌के कार्यमें निरत रहके गुप्तभावसे विरुद्धाचरण करना कपटता है । क्षत्रियराज ! कपटाचरण क्या क्षत्रियोचित कार्य है ? ।

शिवाजी—"यदि वे हमारे साथ प्रगट होकर मिलजाते तो औरंगजेब और सेनापतिको भेजता तब संभवतः हम दोनों युद्धमें परास्त होकर मारेगये होते "

जयसिंह—" युद्धमें प्राणत्याग करना इससे अधिक क्षत्रियका सौभाग्य क्या है? क्या राजपूत समरमें मरनेसे डरते हैं ? "।

शिवाजीका मुख लाल होगया और वह बोले " हे राजपूत ! महाराष्ट्री भी नहीं डरते यदि इस अकिञ्चन जीवन दान करनेसे हमारा कार्य सिद्ध हो, हिन्दू स्वाधीनता, हिन्दू गौरव फिर स्थापित हो तब भवानीके सन्मुख इसी मुहूर्त यह वक्ष-स्थल विदीर्ण कर दूं अथवा हे राजपूत वीर ! तुम अव्यर्थ बरछा धारण कर इस हृदयमें आघात करो, मैं हर्षसहित प्राणत्याग करूंगा। किन्तु जिस हिन्दू गौरवकी चेष्टाके बालावस्थामें स्वप्न देखता था, जिसके कारण शत शत युद्धोंमें जायकर शत शत शत्रुओंको परास्त किया इन्हीं तीस वर्षतक पर्वतोंमें तलैटियोंमें डेरोंमें शत्रुओंके बीचमें, दिनमें सायंकालमें गंभीर रात्रिमें चिन्ता की है, मेरे मरनेसे उस हिन्दूधर्मका उस हिन्दू स्वाधीनताका उस हिन्दू गौरव का क्या होगा ? मेरे और यशवंतसिंहके प्राण देनेसे क्या समस्तकी रक्षा हो जायगी ! "।

जयसिंहने शिवाजीकी तेजस्वी वार्त्ता सुनकर उनके नेत्रोंमें जल देखा, किन्तु वे पूर्ववत् स्थिरभावसे धीरे धीरे उसका उत्तर देने लगे—

" सत्यपालनमें यदि सनातन हिन्दूधर्मकी रक्षा न हो तो क्या सत्य लंघनमें होगी ? वीरके रुधिरसे यदि स्वाधीनताका बीज अंकुरित न हो, तब क्या वीरकी चतुरतासे होगा ? "।

शिवाजी हारे—क्षणेक उपरान्त फिर बोले—

"महाराज मैं आपको पिताकी तुल्य समझताहूं आपके समान तीक्ष्ण बुद्धि योद्धा मैंने कभी नहीं देखा, मैं आपका पुत्रतुल्य हूं। एक बात आपसे पूँछता हूं आप पितृतुल्य श्रेष्ठ परामर्श दीजिये। मैं बाल्यकालमें जब कोंकण देशके असंख्य पर्वत और तलैटियोंमें भ्रमण करता मेरे हृदयमें नानाप्रकारकी चिन्ता उदय होतीं और स्वप्न दीखते। ये विचारता मानो साक्षात् भवानीजी मुझे स्वाधीनता स्थापनके अर्थ आज्ञादेती हैं. देवालयोंकी संख्या बढानेको, ब्राह्मणोंका सन्मान बढानेको गोरक्षा करने धर्मविरोधी यवनोंको दूर करनेमें देवी साक्षात् उत्तेजना करती थी। मैं बालक था उस स्वप्नसे भूलकर खड्गपकड, वीरश्रेष्ठोंको पराजित कर दुर्गोंपर अधिकार जमानेलगा यही स्वप्न अब यौवनमें देखा है,—कि हिन्दूनामका गौरव,

हिन्दूधर्मकी प्राधान्यता हिन्दू स्वाधीनता स्थापनहुई ? इसी स्वप्नके बलसे शत्रु जयकिये, देश जयकिये, देवालय स्थापन किये, राज्यविस्तार किया । वीरश्रेष्ठ ! क्या मेरा यह आशय बुरा है ? क्या यह स्वप्न अलीक स्वप्न मात्र है;– आप पुत्रको उपदेश दीजिये । ”

दूरदर्शी धर्मपरायण राजाजयसिंह क्षणेक मौन रहगये, फिर धीरे धीरे कहने लगे "हे राजन् ! आपके आशयसे अधिक और कोई बडाउद्येश नहीं है, आपके स्वप्नसे यथार्थ और मैं कुछ नहीं जानता । शिवाजी ! तुम्हारा महान उद्येश मुझसे छिपानहीं है मैंने शत्रुसे मित्रसे, तुम्हारे आशयकी प्रशंसा की है, पुत्र रामसिंहको तुम्हारा उदाहरण दिखाकर शिक्षादी है; राजपूत स्वाधीनताका गौरव अभीतक नहीं भूले हैं, और शिवाजी ! तुम्हारा स्वप्नभी स्वप्न नहीं है, चारोंओर देखकर जितना विचारताहूं उस्से विदित होता है कि अब मुगल राज्यका अंत आगया,—यत्न चेष्टा सब विफल है. यवन राज्य कलंकराशिसे पूर्णहुआ है, विलासप्रियतासे जर्जरित हुआ है, गिरने पर हुए गृहकी नाई अब नहीं रहसकता । बोधहोता है कि शीघ्र अथवा विलम्बमें प्रासाद तुल्य मुगलराज्य धूलमें मिलजायगा "तिसके पीछे फिर हिन्दूप्रधान होंगे । महाराष्ट्रीय जीवन अंकुरित होता है, जानपडता है कि महाराष्ट्रीय यौवन तेज भारतवर्षमें फैलजायगा । शिवाजी ! तुम्हारा स्वप्न स्वप्न नहीं, भवानीने तुम्हें मिथ्या उत्तेजना नहीं की है । ”

उत्साह और आनंदसे शिवाजीका शरीर कंटकितहो उठा, उन्होंने फिर पूँछा ।

"तब फिर आप सरीखे महात्मा उस गिराऊ मुगल प्रासादके केवल एक स्तम्भ स्वरूप क्यों होरहे हैं ? ”

"जयसिंह । सत्यपालन राजपूतोंका धर्म है, जिसे सत्य किया है, उसका पालन करैंगे । परन्तु असाध्यको कहांतक साधेंगे ? गिराऊ गृहतो अवश्यही गिरेगा ”

शिवाजी । "अच्छा, सत्यपालन कीजिये, कपटाचारी औरंगजेबके निकट धर्माचरण करते देख देवता लोगभी आपको साधुवाद करते हैं, परन्तु मैं औरंगजेबके निकट कभी सत्यपालन नहीं करसकता, मैं यदि चतुराईसे भी अपने धर्मकी उन्नति साधन करनेका अवसर पाय औरंगजेबसे विरुद्धाचरण करूं तो क्या वह चातुरी निन्दनीय होसकती है ? ”

जयसिंह। "वीरश्रेष्ठ। चतुरता करना सबसमय निन्दनीय है, और महान्कार्य साधनकरनेमेंतो अतिही निन्दनीय है। महाराष्ट्रियोंकी प्रतिष्ठातो बढेहीगी. बोध होता है कि उनका बाहुबल क्रमशः वृद्धि प्राप्तकर उन्हें भारतवर्षका अधीश्वर बनादेगा। परन्तु शिवाजी, जो शिक्षा आप आज देते हैं, कदापि उस शिक्षामें न भूलिये। आप बुरा न मानिये आज उनको नगर लूटना सिखायाजाता है, कल वे भारतवर्षको लूटेंगे आज उनको चतुरतासे जयलाभ करना शिखाया जाता है फिर वे सन्मुख युद्ध करना कभी नहीं सीखेंगे। जो जाति भविष्यत्में भारतवर्षकी अधीश्वर होगी, आप उस जातिके बाल्यगुरु हैं अतएव गुरुकी नाईं धर्मशिक्षा दीजिये। आज यदि आप कुशिक्षादेंगे तौ शतवर्ष पर्यन्त देश देशमें उस शिक्षाका फल दृष्टि आवेगा। वृद्ध बहुदर्शी, राजपूतकी वार्त्तामान, महाराष्ट्रियोंको सन्मुख समर करना सिखाइये, चतुरता बिसरवाइये; आप हिन्दू श्रेष्ठ हैं! आपके महान् आशयको मैंने शत शतबार धन्यवाद दियाहै जो आपही यह उन्नत शिक्षा न देंगे तो कौन देगा? हे महाराष्ट्रके शिक्षागुरु! सावधान! आपके प्रत्येक कार्यका फल बहुकाल व्यापी और देश व्यापी होगा।"

यह श्रेष्ठ वाक्य सुन देरतक शिवाजी चुपरहे फिर बोले,–

"आप परमगुरु हैं! आपके उपदेश शिर माथे हैं, किन्तु यदि मैंने आज औरंगजेबकी अधीनता स्वीकार करली तो फिर शिक्षा कैसे दे सकूंगा?"

जयसिंह–"जय पराजयकी स्थिरता नहीं। आज हमारी जय हुई, कल तुम्हारी जय होसकती है, आज तुम औरंगजेबके अधीन हुए हो, समयके हेर फेरसें कल स्वाधीन होसकते हो।

शिवाजी–"जगदीश्वर ऐसाही करे, परन्तु जबतक आप ओरंगजेबके सेनापति रहेंगे, तबतक हमारी स्वाधीनताकी आशा दुराशा मात्र है। मुझे स्वयं भवानीजीने हिन्दू सेनापतिसे युद्ध करनेको निषेध किया है।"

जयसिंह हँसकर बोले:–"शरीर क्षणमें छूटजाता है यह वृद्ध शरीर कबतक रहेगा?–परन्तु जबतक रहेगा सत्य पालनसे विमुख नहीं होगा।"

शिवाजी–"आप दीर्घजीवीहों।"

जयसिंह—"शिवाजी ! अब विदा दीजिये;—मैंने औरंगजेबके पिताके निकट कार्य किया है, अब औरंजेबके निकट कार्य करताहूं, जबतक जीवन है, दिल्लीका वृद्ध सेनापति विरुद्धाचरण नहीं करेगा,—परन्तु क्षत्रियप्रवर ! निश्चिन्त रहो, महाराष्ट्रका गौरव और हिन्दूओंकी प्रधानता किसीके रोके नहीं रुकसकती ! वृद्धकी बातमानो, बहुदर्शिताकी बात ग्रहण करो, मुगलराज्य अब नहीं रह सकता, हिन्दुओंका तेज अब निवारित नहीं होसकता, सब देशमें हिन्दुओंका गौरव और नाम साथ साथही तुम्हारा गौरव नाम प्रतिध्वनित होगा ।

शिवाजी अश्रुपूर्ण लोचनसे जयसिंहको भेंटकर बोले;—"धर्मात्मन् ! आपके मुखमें फूल चंदन पडे, आपकाही कहना सार्थक हो ! मैंने आत्मसमर्पण किया, अब आपसे युद्ध नहीं करूंगा, क्षत्रिय प्रवर ! जो कभी स्वाधीनता प्राप्त होगी, तो फिर एकबार आपसे मिलूंगा और एकदिन पिताके चरणोंमें बैठकर उपदेश ग्रहण करूंगा । "

पंद्रहवाँपरिच्छेद ।

(दुर्गविजय)

मार मार धरु धरु धरु मारू ।
शीशतोर गहि भुजा उपारू ॥

(गो० तु० दा०)

शीघ्र ही संधि स्थापन होगई । शिवाजीने मुगलोंसे जितने दुर्ग छीन लिये थे, वे सब लौटाय दिये, लोपहुए अहमदनगरके राज्यमें जो बत्तीस दुर्ग वहाँ अधिकार करके बनाये थे, उनमेंसे भी बीस फेर दिये बारह औरंगजेबके अधीनमें जागीरकी भांति अपने पास रक्खे । जो देश उन्होंने केवल सम्राट्को दिया, उसके बदलेमें विजयपुर राज्यके अन्तर्गत कई एक देश सम्राट्ने शिवाजीको देदिये और शिवाजीका अष्टमवर्षीय राजकुमार शंभुजी पांच हजारका मनसबदार नियत हुआ ।

शिवाजीसे युद्ध समाप्त होनेपर राजा जयसिंह विजयपुरके राज्यको ध्वंस करके उस देशको दिल्लीश्वरके अधिकारमें लानेका यत्न करने लगे । शिवाजीके पिताने जो संधि शिवाजी और विजयपुरके बीचमें स्थापन करादी थी, शिवाजीने उसको लंघन नहीं किया, किन्तु शिवाजीके विपद्कालमें विजयपुरके सुलतानने संधिकी अवज्ञाकर शिवाजीके राज्यपर चढाई करनेमें कुछ शंका नहीं की । इस कारण अब शिवाजीने जयसिंहका पक्ष अवलंबनकर विजयपुरके सुलतान अली आदिलशाहसे युद्ध किया, और अपनी मावली सेनाके बलसे उसके बहुत कोट अपने अधिकारमें करलिये ।

जयसिंहसे शिवाजीकी मित्रता दिन दिन बढने लगी और परस्पर अतिसुहृद्भाव उत्पन्न होगया । दोनों सदा एकसाथ रहते और युद्धमें एक दूसरेकी सहायता करते थे । बहुत क्या कहें कि शिवाजीका एक युवा हवालदार नित्य जयसिंहकी छावनीमें उनके पुरोहितके भवनमें जाताथा । नाम बतलानेकी क्या आवश्यकता है ? पाठकगण स्वयंही समझलेंगे !

सरलस्वभाव पुरोहित जनार्दनभी रघुनाथको पुत्रवत् देखने लगे । वह उनको नित्य अपने गृह बुलाते, रघुनाथको भी जब समय मिलता, पुरोहितके स्थानपर जातेथे । इस अवस्थामें सरयू और रघुनाथसे प्रति दिन भेंट होतीथी, प्रेमकी वार्त्ता चलती, दोनोंके जीवन, मन, प्राण, प्रथम प्रेमकी अनिर्वचनीय आनंद लहरीमें बहने लगे । अब सरयू और रघुनाथके समान जगत् में कौन सुखी है ? सरलहृदय जनार्दन इन दोनोंके हृदयका भाव कुछ नहीं जानतेथे, कभी उनको एकत्र बात चीत करते देख, " रघुनाथ घरकाही लडका है " यह समझके निषेध नहीं करते-जनार्दनको रघुनाथ भी पिता कहके पुकारते थे ।

थोडेही कालमें विजयपुरके बहुत दुर्गोंपर अधिकार कर शिवाजीने पीछेसे एक अतिशय दुर्गमदुर्ग लेनेका संकल्प किया । वह शत्रुको यह संवाद प्रथम नहीं देते थे कि, कब कौनसे दुर्गपर चढाई करेंगे, बरन उनकी (शिवाजीकी) सेनाको भी यह बात नहीं जान पडती थी । उस दुर्गसे ५।६ कोश दूर जयसिंहके डेरेके निकटही शिवाजीका डेराथा । उन्होंने सायंकालमें एक सहस्र मावली सेनाको तैयार होनेकी आज्ञा दी, एक प्रहर रात्रिगये गंभीर अंधकारमें आज्ञा हुई कि आज रुद्रमण्डल दुर्गपर चढाई होगी । चुपचाप शिवाजीकी एक सहस्र सेना दुर्गपर चली ।

महा अँधियारी रात्रिमें वह सेना दुर्गके नीचे पहुँचगई । चारोंओर भूमि बराबर थी, उसके बीचमें एक पर्वत शिखरके ऊपर दुर्ग रुद्रमण्डल बना है । पर्वतपै जानेको केवल एक मार्ग है, अव युद्धकालमें वहभी मार्ग बंद होगया, और कहीं कोई मार्गादि नहीं केवल जंगल, शिलाराशि व कंकणोंसे पूर्ण था । शिवाजीने उसी कठिन मार्गसे अपनी सेनाको पर्वतपर चढनेकी आज्ञादी, उनको मावली और महाराष्ट्रीय सेना पर्वती बिलावकी नाई पेडसे पहाड और एक पहाड़से दूसरे पहाडपर कुलाचें मारती हुई ऊपर चढने लगी । कहीं खडे होकर कहीं बैठकर, कहीं वृक्षोंकी डालियें पकडके लटककर, कहीं फलांगकर यह सेना आगे बढने लगी हम नहीं कह सकते कि, महाराष्ट्रियोंकी नाई और भी कोई सेना ऐसे दुर्गम पर्वतोंपर चढ सकती है ? सहस्र सिपाही इस प्रकार पर्वतपर चढे जाते थे, परन्तु जरा खटका नहीं होता. हां, इस सूनसान दोपहरकी रात्रिमें केवल पवन कभी उन पर्वत वृक्षोंके मध्यसे सनसन और मरमर शब्द करता था ।

आधे मार्गमें पहुँचकर शिवाजीको दुर्गके ऊपर एक उज्ज्वल प्रकाश दृष्टि आया ! यह चिन्ताग्रस्त हो वहीं खडे होगये. क्या "शत्रुओंने आनेका वृत्तान्त जानलिया ? नहीं तो किलेकी भीतोंके ऊपर ऐसा प्रकाश क्यों ?" प्रकाशकी किरणैं दुर्गके नीचेतक पडतीथीं, मानो दुर्गवासियोंने शत्रुकी प्रतीक्षा करकेही यह प्रकाश किया है कि, अंधकारमें कोई दुर्गपर चढाई न करसके । क्षणकाल चिन्ता करते हुए उस प्रकाशको देखते रहे, फिर अपनी सेनाको और भी सावधानतासे वृक्ष और पत्थरोंपर चलनेको कहा । चुपचाप महाराष्ट्रीयगण उस पर्वतपर चढने लगे । जहाँ बडे बडे पेड झाडी, और बडे शिला खडेथे, उन्हीं उन्हीं स्थानोंमें होकर यह लोग चले ! परन्तु शब्दतक नहीं, अंधकारमें चुपचाप शिवाजी उस पर्वतपर चढने लगे ।

थोडीदेर पीछे एक साफ सुथरे स्थानपर आपहुँचे, जहां कि यह प्रकाश स्पष्ट रूपसे पडताथा, वहां जातीहुई सेना ऊपरसे भली प्रकार देखी जा सकती थी । शिवाजी फिर रुके, और पेडकी ओटमें हो इधर उधर देखने लगे, सामने १०० सौ हाथ तक कोई छोटा मोटा भी पेड नहीं था, पर उसके आगे फिर पेडोंकी पांति है । इस सौ हाथ मैदानमें कैसे जाना हो ? इधर उधर देखा कि जानेका

कोई मार्ग नहीं, नीचे दृष्टि करी तो देखा कि बहुत दूर निकल आये यदि फिर नीचे उतर दूसरे मार्गसे चलते हैं तो दुर्गपर पहुँचनेके प्रथमही प्रभात हो जायगा। शिवाजी कुछ विलम्बतक मौनरहे, फिर बालावस्थाके सुहृद् विश्वासी योद्धा तानाजी मालुसरेको बुलाय वृक्षकी आडमें खडे होकर अति धीरे धीरे कुछ परामर्श करनेलगे। क्षणभर पीछे तानाजीके चले जानेपर शिवाजी बाट देखने लगे, उनकी सेनाभी अपने महाराजकी आज्ञा पानेकी बाट जोहती रही।

आध घडी पीछे तानाजी लौट आये, उनका शरीर पसीनेसे भीगा था। केशोंसे और समस्त कपडोंसे पसीना बह रहाथा। उन्होंने शिवाजीके समीप आय अतिमृदुस्वरसे कुछ कहा, तब कुछ विलम्ब पीछे शिवाजी बोले "ऐसाही कियाजाय क्योंकि अब और उपाय नहीं।" उन्होंने फिर सेनापतियोंको आगे बढनेकी आज्ञा दी। तानाजी आगे आगे चले।

पानी बरसनेसे एक स्थानपर पत्थर टूटकर नालीसी बन गई थी। दोनों किनारे ऊंचे, बीचमें गहरी थी; बरसातमें यह गंभीर नाली पानीसे भरजाती थी, अब भी इसमें जल है। उस जलमार्गमें जाने और दोनों किनारोंके ऊंचा होनेसे कदाचित् शत्रु न देखसकें, यह परामर्श स्थिर हुआ, और सब सेना धीरे धीरे उसी नालेके मध्य हो पर्वतपर चढनेलगी। सैकडों छोटी छोटी शिलाओंके ऊपर गिरकर तमोमय रात्रिमें अनंतशब्द युक्तहो पहाडी जल उतर रहाथा उन्हीं शिलाखंडोंके ऊपर उस पानीको फाडकर सहस्रसेना चुपचाप पहाडपर चढ़ने लगी। वह बहुत शीघ्र ऊपरके पेडोंमें पहुँच गई, तब शिवाजीने मनही मनमें भवानीजीको धन्यवाद दिया।

सहसा उनके धोरे खडाहुआ एक सिपाही गिरा शिवाजीने देखा कि उसकी छातीमें तीर लगा है। एक तीरके बाद दुसरा फिर तीसरा आया? शत्रुगण जाग रहेथे, जब शिवाजीकी सेना उस नालीमें होकर पर्वतपर चढरहीथी, तब उनको संदेह हुआ और उन्होंने उसी ओर तीर छोड़ा।

शिवाजीकी सबसेना पेडोंके आडमें खडी होगई तीर आने बंदहोगये, शिवाजीने समझा कि, शत्रुने केवल संदेह किया है, कुछ भली भांति सेना नहीं देखी है। इस्से उन्होंने किलेकी ओर फिरकर देखा तो एक प्रकाशके स्थानमें दो तीन प्रकाश हो

रहे हैं, कभी कभी पहरेदारभी इधर उधर जाते हैं। अबतक यह दुर्गकी परिखासे केवल ३०७ हाथ दूर थे। शीवाजीने जाना कि, सेना सावधान होगई, आज दुर्ग बिना भयंकर युद्ध किये नहीं लिया जायसकेगा।

शिवाजीके मित्र तानाजी मालुसरेभी यह वृत्तान्त देखकर धीरे धीरे बोले:— "राजन्! अबतक तो नीचे चले जानेका अवसर है, आज दुर्ग अधिकारमें न आया, कल आयगा, परन्तु आज इसके लेनेकी चेष्टा करनेसे सबके विनाश होनेकी संभावना है"। विपदमें शिवाजीका साहस और उत्साह सहस्र गुण बढ जाता था। उन्होंने कहा "जयसिंहसे जो कह आया हूं, वह करूंगा या आज यह रुद्रमण्डलही लूंगा, अथवा इस युद्धमें प्राणहीन होंगे"। शिवाजीके दोनों नेत्र प्रकाशित हुए, स्वर स्थिर और अकंपित हुआ, तानाजी और परामर्श देना वृथा समझकर बोले—" विपदमें आपके संग भिन्न मुझे और स्थान नहीं है आप आगे चलें"।

शिवाजी उस वृक्षकी पांतिके मध्यमें हो आगे बढने लगे। उन्होंने शत्रुको धोखा देनेके अर्थ एक शत (१००) वीरोंको दुर्गके दूसरी ओर जाने और कुलाहल करनेकी आज्ञा दी। एक घडीमें किलेके दूसरी ओर कुलाहल सुन " उसी पार्श्वमें शिवाजी दुर्गपर चढाई करते हैं यह जानकर दुर्गके प्रहरी और समस्त सैन्य उसी ओरको धावमान हुई, इधर जो प्राचीरोंपर दो तीन जगह प्रकाश हो रहे थे, वह निर्वाण होगये। तब शिवाजी बोले—" महाराष्ट्रियगण! सैकडों युद्धमें तुमने अपने विक्रमका परिचय दिया है, शिवाजीका नाम रक्खा है, आज एकबार फिर वही परिचय देना उचित है। तानाजी! आज बाल्यकालकी मित्रता निबाहो"। फिर रघुनाथको भी पार्श्वमें देखकर बोले " हवालदार! एक दिन हमारे प्राण बचाये थे, आज मान बचाओ"। शिवाजीके वचनोंसे सबके हृदय साहससे परिपूर्ण हो गये, उस गंभीर अन्धकारमें चुपचाप सब आगे बढे और थोडेही विलम्बमें दुर्ग प्राचीरके निकट पहुँचगये। आधीरात हो गई थी, आकाशमें प्रकाश नहीं, केवल रहरहकर रात्रि समीरण उन पर्वत वृक्षोंके मध्यमें मर्मर शब्दसे प्रवाहित हो रही थी।

रुद्रमण्डलकी कोटभीतसे शिवाजी अभी पचास हाथ दूर हैं इतनेमें वह देखते क्या हैं कि, प्राचीरके ऊपर एक प्रहरी खडा है; वृक्षके भीतर शब्द सुनकर प्रहरी

इस ओर आया। एक मावलेने चुपचाप तीर छोडा,—बस हतभाग्य पहरेदारका मृतकशरीर कोटकी भीतसे नीचे गिरपडा।

उस शब्दको श्रवणकर और एक, दो, दश, शत इसी प्रकार क्रमक्रमसे ३०० जन भीतके ऊपर नीचे इकट्ठे होगये. शिवाजी रोषवश हो हाथसे हाथ मलने लगे और छिपे रहनेका अवसर न जानकर सेनाको आगे बढनेकी आज्ञा दी।

तबहीं महाराष्ट्रियोंका " हर हर महादेव " शब्द भयंकर होकर दिगदिगन्तमें व्याप्त होगया, एक दल प्राचीर लाँघनेके अर्थ दौडगया और एक दल वृक्षोंके अन्तरमें रहकर अतिशीघ्रतासे भीतपर चढेहुए मुसलमानोंको तीरद्वारा विद्ध करने लगा। यवनगण शत्रुके आगमनसे लेशमात्र भय न कर "अल्लाह अकबर" कहकर पृथ्वी आकाशको कंपित करने लगे, कोई कोई भीतके ऊपरसेही तीर बरछा चलाने लगे। किसीने उत्साहसे परिपूर्ण हो प्राचीरसे छलांगमार वृक्षोंके मध्यमें ही आय महाराष्ट्रियोंपर आघात किया।

शीघ्रही उस प्राचीरके नीचे और वृक्षोंके मध्यमें भयंकर समर होने लगा। प्राचीर परके खडेहुए यवन बरछा चलायकर शत्रुओंको मारने लगे, ढेरके ढेर मृतक शरीरोंसे कोटका खांचा परिपूरित होगया, वीर लोग इन्हीं मृतक देहोंके ऊपर खडे होकर खड्ग व बरछा चलाने लगे, रक्तसे चढाई करनेवालोंका शरीर रँगीला होगया, शत शत मुसलमान वृक्षोंके भीतर तक आगये थे शिवाजीके मावलियोंने सिंहके समान तडपकर उनपर दौडे, प्रबल प्रतापशाली अफगान लोगभी युद्धमें अनाडी नहीं थे, पर्वतपर रुधिर बह निकला, वृक्षोंके अंतरालमें कंकडोंके ऊपर शिलाखंडोंके निकट बहुतसे महाराष्ट्री खडे होकर अव्यर्थ तीर बरछा चलाने लगे। वृक्ष पत्र और वृक्षशाखाओंके भीतरसे वह तीर यवनोंकी संख्या घटाने लगे, चढाई करनेवाले मावलियों व अफगानोंके क्षण क्षण सिंहनादसे और घायल लोगोंके चिल्लानेसे रातके समय आकाशमण्डल कंपित होने लगा।

सहसा इन सब शब्दोंको मथन करताहुआ दुर्गकी दीवारसे " महाराज शिवाजकी जय " ऐसा वज्रनादके समान गर्जन सुनाई आया, एक मुहूर्त्त तक सब उसी ओर देखते रहे. दृष्टि आया कि, शत्रुको भेदकर मृत देहोंके ऊपर खडा हो,

रुधिरसे भीगेहुए बरछेके ऊपर सहारादे एक महाराष्ट्रीय वीर छलांग मारकर दुर्ग मण्डलकी भीतपर चढगया है. उसने पठानोंका झंडा लातमारकर तोडदिया और पताकाधारी एक अथवा दोप्रहरियोंको बरछे और खड्गसे मारदिया है, वही अपूर्व वीर प्राचीरके ऊपर खडाहो वज्रनादसे "महाराज शिवाजीकी जय" पुकार रहा है, पाठको ! यह आपके पूर्वपरिचित वीर रघुनाथ हवालदार हैं ।

हिन्दू मुसलमानोंने एक मुहूर्ततक समर निवारणकर विस्मयोत्फुल्ल नेत्रोंसे तारोंके प्रकाशमें उस दीर्घ वीर मूर्त्तिकी ओर देखा । वीरका लोहेसे बनाहुआ टोप तारोंके प्रकाशमें चमक रहाथा, हस्त बाहु दोनों चरण रुधिरसे भीगेहुएहैं विशाल छातीमें दो एक तीरोंके घाव लगेहुए हैं, दीर्घ भुजामें रुधिरसे भीगे हुआ दीर्घ बरछा शोभायमान है । प्रकाशित नेत्रोंपर कालीकाली जुल्फ पडी हैं। शत्रुभी नौकाके सन्मुख तरंगोंके समान, इस वीरके दोनों ओर हो चले गये, उस कालसमान बरछाधारीके निकट जानेको किसीका साहस न हुआ । एक मुहूर्तको यह जानागया कि, मानो स्वयं रणदेव दीर्घबरछा धारणकर आकाशसे दुर्गकी भीतपर उतरेहुए हैं ।

कुछ कालतक सब चुप रहे. फिर अफगान लोग शत्रुको प्राचीरपर चढाहुआ देखकर चारोंओरसे सवेग आने लगे, काले बादलोंके समान आकर शत्रुओंने रघुनाथको घेर लिया !

यद्यपि रघुनाथ खड्ग और बरछेके चलानेमें अद्वितीय हैं, परन्तु असंख्य वीरोंसे युद्धकरना असंभव है बरन रघुनाथके जीवनमें संशय है ।

परन्तु मावलीगणभी शान्त नहीं थे । वह रघुनाथका विक्रम देख उत्साहसे परिपूरित हो कोटाभिमुख धावमान हुए और सिंहके समान छलांगें मारतेहुए चारों ओरसे रघुनाथको रक्षित कर युद्ध करने लगे । एक, दो, पचास, सौ, दोसौ सेना इसी प्रकार प्राचीरके ऊपर व दोनों तरफमें आयकर इकट्ठी हुई छुरी और खड्गाघात से पठानोंकी श्रेणी तितर बितरकर मार्ग साफ बनाय सिंहनाद द्वारा दुर्ग परिपूरित किया. सहस्र महाराष्ट्रियोंसे दो तीन सौ पठान युद्ध नहीं कर सके वे महाराष्ट्रियों-की गतिको नहीं रोकसके परन्तु तौभी सिंहसमान पराक्रम प्रकाश करके उनकी गति रोकनेकी चेष्टा कियेही जाते थे ।

उस तुमुलसंग्रामके बीच एक और वज्रनाद सुनाई आया, शिवाजी और तानाजी प्राचीरसे कूदकर दुर्गके भीतरको दौडे. सेनाने समझा कि, अब यहां युद्ध करनेकी क्या आवश्यकता है, इससे सब प्रभुके साथ साथ कोटके भीतरको चली पठान लोग कुछ मारेगये और कुछ घायल थे, इस कारणसे वह महाराष्ट्रियोंका पीछा न कर सके।

शिवाजी दामिनीकी रेखाके समान वेगसे किलेदारके गृहमें पहुँचे, यह गृह अतिकठिन और रक्षित था, सहस्र महाराष्ट्रियोंके बरछाघातसे द्वार कांप तो गया परन्तु टूटा नहीं। शिवाजीकी आज्ञानुसार महाराष्ट्रियोंने उस प्रासादको घेरकर बाहरके समस्त प्रहरियोंको मारडाला। तब शिवाजीने वज्रतुल्य गंभीरवाणी कहकर किलेदारसे कहा। "घर खोल दो, नहीं तो महलमें आग लगादी जायगी, जिससे सब यहांके रहनेवाले भस्म हो जांयगे"। निडर पठानने उत्तर दिया "आग लग जाय कुछ परवाह नहीं, लेकिन काफिरोंके रूबरू दरवाजा नहीं खोलेंगे"।

तत्क्षण सौ महाराष्ट्री मशाल लाकर जनाने द्वारपर अग्नि लगाने लगे. ऊपर किलेदार और उसके साथियोंने तीर और बरछा चलायकर अग्नि बुझानेकी चेष्टा की सैकडों महाराष्ट्री मशाल हाथमें लियेहुए गिरे, परन्तु अग्निभी दहक उठी।

प्रथम द्वार और गवाक्ष फिर जालियें फिर वह बडाभारी महल समस्तही अग्निसे जल उठा वह प्रचण्ड प्रकाश भीषणनाद करता हुआ आकाशको उठा, और अन्धकारमय रात्रिको प्रकाशमय कर दिया। दुर्गके ऊपर, नीचे सब पल्लीव गावोंमें तलैटियोंमें वह प्रकाशस्तंभ दृष्टि आया वह कुलाहल श्रवणगोचर हुआ तब सबने जाना कि, शिवाजीकी अजीत सेनाने यवनोंका दुर्ग जीत लिया।

जो वीरोंको करना योग्य है पठान किलेदार रहमत खांने वह सब किया था, अब संगके योद्धाओं समेत मरना बाकी था, जब गृहमें पूर्ण आग लगी तब रहमतखां और उसके साथी छत्तसे कूद नीचे आये एक एक जन एक महावीरके समान खड्ग चलाने लगे, उनके खड्गसे बहुत महाराष्ट्री मरे।

सबोंने उन यवनोंको घेरलिया वे शत्रुके सन्मुख चमत्कार पराक्रम प्रकाशकर एक एक करके गिरने लगे और दोही दो गिर गिर कर दश गिर गये। रहमतखां अब तक घायल व क्षीण होकर सिंहविक्रम प्रकाश करके युद्ध करता रहा, परन्तु अब वह चारोंओरसे घिरगया उसके चारों तरफ तलवारें, खिचगई हैं। उसके जीनेकी आशा नहीं, इसी समय ऊंचे स्वरसे महाराज शिवाजीका आज्ञा सुनाई दी, "किलेदारको कैद करलो, जानसे मत मारो।" घायल अफगानके हाथसे खड्ग छीन लियागया और उसके हाथ बांधकर कैद करलिया।

महाराष्ट्री प्रासादकी अग्नि बुझा रहेथे, इतनेमें शिवाजीने देखा कि, दुर्गके एक ओरसे काले बादलोंके समान प्रायः छः सौ (६००) सेना एकत्र हो उमडी चली आती है। शिवाजीने दुर्गपर चढाई करनेसे पहिले सौ सिपाहियोंको दुर्गके दूसरी ओर भेजदिया था, उनका अधिक कुलाहल श्रवणकर दुर्गकी अधिकांश सेना उस ओर गई थी, धूर्त महाराष्ट्री कुछ देरतक पेडोंके मध्यसे युद्धकर फिर भागने लगे, तब मुसलमानोंने उत्साहित होकर पर्वतके नीचेतक उन एकशत महाराष्ट्रियोंका पीछा किया था और दूसरी तरफसे शिवाजीने चढाईकर दुर्गजीतलिया यह बात उस यवन सेनाको कुछ भी विदित न थी।

फिर जब महलके उजियालेसे खेत, ग्राम, पर्वत, और तराइयें प्रकाशित होगईं, तब अधिकांश यवनगण अपनेको भ्रमहुआ जान फिर किलेपर आय शत्रुके नाश करनेको तैयार हुये। शिवाजीने थोडीसी सेनाको पराजित करके दुर्ग जय किया था, अब दूसरी ओरसे पांच सौ अथवा छः सौ सेना आती हुई देखकर शिवाजीका मुख गंभीर हुआ।

उन्होंने तीव्रदृष्टिसे देखा कि, किलेके बीचमें किलेदारका महलही सबसे अधिक दुर्गम स्थान है, चारों तरफ खांई खुदी हुई हैं, उनके पीछे पत्थरकी भीतें बनी हैं, आगसे उन भीतोंको कुछ हानि नहीं पहुँची है। उसके बीचमें महल है, उस महलका द्वार और खिडकियें जलगई हैं कहीं कोई मकान गिरकर पत्थरोंका ढेर होगया है। बुद्धिमान् महाराज शिवाजीने देखलिया कि, अधिक सेनाके विरुद्ध युद्ध करनेका भला इससे अधिक और अच्छा नहीं हो सक्ता।

इन्होंने पलभरमें सब ठीक ठाक करली, स्वयं आप और तानाजीने दोसौ सेनाके सहित उस राजमहलमें प्रवेश किया, भीतोंकी बगलोंमें तीरंदाज रक्खे हरेक खिडकीपर तीरंदाज रक्खे, छतके ऊपर भाला मारनेवाले वीरोंको इकट्ठाकिया, कहींसे सब पत्थरोंको साफ करदिया, कहीं बहुत पत्थर इकट्ठे किये घडी भरमें सब ठीक होगया। तब हँसकर तानाजीसे कहा "हमारा यही अन्तिम उपाय है. ऐसा बोध होता है कि, हम शत्रुको यहां आनेसे पहलेही परास्त कर सक्ते हैं. यदि अंधकारमें एकबारही उनपर चढजाँय, तो वे छिन्नभिन्न होकर भागेंगे। तानाजी! तुम दोसौ सिपाही लेकर यहाँ रहो, मैं एकवार उद्योग कर देखूं।"

तानाजी। "महाराज तानाजी क्या, बरन यहाँ एक भी महाराष्ट्री नहीं रह सकेगा। क्षत्रियराज! सम्मुख समरमें सबही चतुर हैं, जो यह स्थान घिरजाय, तब आपके यहां विनारहे किसकी बुद्धिमानीसे यह राजमहल रक्षित होगा?"

शिवाजी कुछेक हँसकर बोले "तानाजी! ठीक है! मैं सामने वैरीको देख युद्धका अभिलाषी हुआथा, किन्तु नहीं, मेरा रहना यहीं ठीक है। हमारे हवालदारोंमेंसे कौनके बल तीनसौ सिपाही लेकर इन अफगानोंके ऊपर एक बारही अंधकारमें चढाई कर उनको हरा सक्ता है?"

दश बारह हवालदार एकबारही खडे होकर कुलाहल करनेलगे। रघुनाथ भी उनकी एक ओर चुपके खडे होकर पृथ्वीको देखते रहे।

शिवाजी वारीवारी सबको देख, फिर रघुनाथको देखकर बोले "हवालदार! यद्यपि तुम इन सबसे छोटे हो, परन्तु भुजाओंमें महाबल रखते हो आज मैं तुम्हारा बिक्रम देखकर प्रसन्न हुआहूं रघुनाथ तुमनेही आज दुर्ग विजय करना प्रारंभ किया है और तुमहीं इसको शेष करो।"

रघुनाथ चुपचाप भूमितक शिरनवाकर तीनसौ सिपाही साथले तडित वेगसे बाहर निकले।

शिवाजी तानाजीको देखकर बोले "यह हवालदार राजपूत है, इसका वदन और आचरण देखकर बोध होता है कि, इसने किसी श्रेष्ठ वीरके वंशमें जन्म लिया परन्तु इसने अभीतक अपने वंशका कुछ पता नहीं दिया है, न अपने अभिमत

बल विक्रमके संबंधमें कभी कोई गर्वित वचन कहा, केवल युद्धकालमें विपद कालमें, साहस और विक्रमके कामोंमें पक्का रहा है। एक दिन पूनामें मेरे प्राण बचाये आज भी दुर्ग जीतनेमें रघुनाथही आगे हैं, मैंने इसे अभीतक कोई पुरस्कार नहीं दिया, कल राजसभामें राजा जयसिंहके सामने रघुनाथ अपने साहसका उचित पुरस्कार पावेगा।"

रघुनाथने युद्धकौशलकी शिक्षा नहीं पाई थी, न कभी उन्होंने इसके सीखनेमें कुछ परिश्रम किया था. परन्तु तौभी उन्होंने एकबारही तीनसौ मावलियोंके सहित बरछा हाथमें ले महावेगसे मुसलमानोंपर आक्रमण किया। तीसहाथ दूरसे सबने अमोघ बरछे फेंके, फिर "हर हर महादेव" कहके सिंहसमान महानादकर महाराष्ट्री मुसलमानोंमें कूदपड़े। वह बेग अति भयंकर होनेके कारण रोकनेके योग्य नहीं था, पल भरमें महाबलशाली अफगानोंके मोरचे छार खार और तितर बितर होगये, रणमत्त मावलियोंकी तेजीसे चलाई हुई छूरियोंके लगनेसे अफगान लोग गिरने लगे।

परन्तु अफगान लोगभी युद्ध करनेमें कम बुद्धिमान नहीं थे; वे मोरचेसे छूटकर भी नहीं हटे, फिर ऊंचे स्वरसे गर्जकर उन्होंने मावलियोंको घेरलिया, पलभरमें जो दिखावा देखागया, उसका वर्णन करना सामर्थ्यसे बाहर है। महाअंधकारमें शत्रु मित्र दृष्टि नहीं आया, बहुत क्या अपने हाथका खड्ग भी नहीं दृष्टि आता था, मृतक देहोंसे वह स्थान परिपूर्ण होगया, रुधिर सोतेके समान बहने लगा, युद्धनादसे पृथ्वी आकाश कांप उठा. जान पड़ता था कि, यह मनुष्योंका युद्ध नहीं, बरन सैकड़ों खूनके प्यासे भूंखे चीते आदि पशु पैशाचिक शब्दसे परस्पर एक दूसरेको नखद्वारा विदीर्ण करते हैं।

क्षणक्षणमें सिंहनाद करके अफगान लोग जल्दी जल्दी उन तीनसौ योद्धाओं पर चढाई करते थे परन्तु वह अपूर्व वीरश्रेणी कुछभी नहीं हिली। समुद्र समान भयंकर गर्जन करके यवन उस वीरोंकी भीतपर आघात करते थे परन्तु वह पर्वत तुल्य वीरोंकी दीवार अनायास उन चोटोंको विह्वल करती रही। मृतकोंके शरीरसे चारोंओर भीतसी बन गई है, मावलीगण क्रमशः कम होते जाते थे, परन्तु तौ भी वह मोरचा न टूटा।

इतनेमें अकस्मात् " शिवाजीकी जय " ऐसा वज्रनाद हो उठा, सबने आश्चर्यसे चकित हो देखा कि किलेमें तीनचार जगह बडी बडी अटारियें अग्निसे धू धू करके जल रही हैं और उसी ओरसे सिंहनाद करती हुई महाराष्ट्रियोंकी ओर सेना चली आती है। जो एकसौ महाराष्ट्री धूर्ततासे अफगानोंकी सेनाको कोटसे बाहर ले गये थे, अफगानोंके किलेमें लौट आनेपर वही अब पीछे पीछे दूसरी ओरसे आये और कई एक घरोंमें आग लगायकर मुसलमानोंपर टूटपडे। अफगानोंका किला शत्रुने ले लिया, महल जलाये गये और अटारियें अब जल रहीं हैं सामने वैरी पीछे वैरी जितनी उनकी साध्य थी, उतना किया, अब न सहसके और एक बारही अति शीघ्रतासे भागे महाराष्ट्रियोंने पीछा करके सैकडों शत्रुओंका नाश किया। तब रघुनाथने पुकारकर आज्ञा दी " महाराज शिवाजीकी आज्ञा मानकर भागे हुओंको मारो मत कैद करलो। " भागे हुए अफगानोंने हथियार डाल दिये और जीवदान मांगा उनकी प्राण रक्षा की गई।

तब रघुनाथने दुर्गकी आग बुझवाकर दुर्गके स्थान स्थानमें पहरेदार रक्खे. गोला, बारूद और अस्त्र शस्त्रके गृहोंमें अपने पहरे बैठाल दिये एक घरमें बन्दियोंको बांधकर रक्खा कोटके सब घर सब स्थान अपने अधिकारमें कर सुरक्षा की आज्ञा दे शिवाजीके निकट जाय शिरनवाय सब समाचार निवेदन किया।

प्रभातकी ललाई पूर्व दिशामें दृष्टि आई, प्रभात कालीन सुमन्द शीतल पवन धीरे धीरे चलने लगी, समस्त दुर्ग शब्दशून्य और निस्तब्ध है! मानों इस सुन्दर शान्त वृक्षशोभित पर्वतके शिखरपै किसी ऋषि मुनिका आश्रम है. जैसे युद्धका पैशाचिक कुलाहल वहां कभी श्रवण हुआही नहीं।

सोलहवाँपरिच्छेद।

यच्चिन्तितं तदिह दूरतरं प्रयाति
यच्चेतसा न गणितं तदिहाभ्युपैति।
प्रातर्भवानि वसुधाधिपचक्रवर्ती
सोहं व्रजामि विपिने जटिलस्तपस्वी॥

रघुवंश।

विजेताका पुरस्कार ।

दूसरे दिन मध्याह्नकालमें उस किलेके मध्य एक दरबार हुआ । चांदीसे बने हुए चार खंभोंके ऊपर लाल वर्णका शामियाना ताना गया, नीचे लाल कपडेसे बनीहुई राजगद्दीके ऊपर राजा जयसिंह और शिवाजी बैठे हैं चारोंओर चार बगलोंमें सेना बंदूक लियेहुए श्रेणीबद्ध खडी है, उनकी बंदूकोंकी किरचमें लगी हुई लाल लाल पताका मध्याह्नकालीन पवनसे फहरा रही हैं । चारोंओर सहस्र सहस्र सिपाई दिल्लीश्वर जयसिंह और शिवाजीकी जय बोल रहे हैं ।

जयसिंह हँसकर बोले " आपने जबसे दिल्लीश्वरका पक्ष लिया है तबसे आप उनके दाहिने हाथकी नाईं होगये हैं । यह उपकार दिल्लीश्वर कभी नहीं भूलेंगे आपने जहां चेष्टा की वहीं जय हुई ।

शिवाजी–"जहाँ महाराज जयसिंह हैं, वहां जय क्यों न हो । "

सब सभासद धन्य धन्य, करनेलगे । जयसिंह फिर बोले, "मैं यह तो समझता था कि विजयपुर शीघ्रही हमारे अधिकारमें आजायगा, परन्तु यह आशा नहीं थी कि, आप एक रात्रिमें ही इस किलेको लेलेंगे ! "

शिवाजी–"बालकपनसे दुर्ग विजय करना सीखा है परन्तु जिस प्रकार अनायास इस किलेको लेनेका विचार किया था, वह सिद्ध नहीं हुआ । "

जयसिंह–"क्यों ? "

शिवाजी–"समझा था कि, यवन सोते होंगे, किन्तु वे सब जागते और सजे सजाये तैयार थे । जैसा समर इस दुर्गके अधिकार करनेमें हुआ, ऐसा रण कभी किसी किलेके लेनेमें नहीं हुआ था । "

जयसिंह–"शत्रुलोग यह जानकर कि अब रातमें भी समर होता है, सदा जागते और सजे सजाये तैयार रहते हैं । "

शिवाजी " सत्य है इतने दुर्ग विजय किये परन्तु इस प्रकार शत्रु सेनाको सुसज्जित कहीं नहीं देखा । "

जयसिंह । " शिक्षा पाकर अब सावधान होते जाते हैं, परन्तु सावधान रहें, वा न रहें, महाराज शिवाजीकी गति बेरोक और महाराज शिवाजीकी जय अनिवार्य है ।

शिवाजी । " यद्यपि महाराजके प्रतापसे दुर्गजय होगया, परन्तु कल रात्रिकी हानि इस जन्ममें पूरी नहीं होगी । जो हजार सेना इस दुर्गपर चढकर आई थी उनमेंसे (५००) पांचशतवीर इस जन्मके लिये हम लोगोंसे बिदा होगये, ऐसी दृढ प्रतिज्ञसेना अब नहीं मिलेगी । " शिवाजी कुछ विलम्बतक शोकाकुल रहे । फिर बंधियोंके लानेकी आज्ञा दी ।

जो सेना रहमतखांके अधीन थी, कलका युद्ध समाप्त होनेपर अब उनमेंसे केवल तीनसौ जन जीवित हैं । वह सभामें लाये गये, उन सबके हाथ पीठकी ओरको बँधेहुये हैं ।

शिवाजीने आज्ञा दी, सबके हाथ खोल दो । फिर बोले अफगानी वीरो ! तुमने वीरोंका नाम रक्खा तुम्हारे आचरणसे मैं बडा प्रसन्न हुआ । तुमलोग स्वाधीन हो । इच्छा हो दिल्लीश्वरके कार्यमें नियुक्त हो नहीं अपने मालिक विजयपुरके सुलतान पर चले जाओ;-मेरी आज्ञासे कोई तुम्हारा बालभी बांका नहीं कर सक्ता । "

शिवाजीका यह सदाचरण देखकर कोई विस्मित नहीं हुआ, सब लडाइयोंमें किलोंके जय होने उपरान्त वह हरायेहुये मनुष्योंपर इसीभांति दया व भलाई करते थे बरन इसकारण उनके बंधुलोग उन्हें कभी २ दोष दिया करते, परन्तु वह नहीं मानते थे । शिवाजीके सदाचरणसे विस्मित हो बहुत अफगानोंने दिल्लीश्वरकी सेनामें भर्ती होना स्वीकार किया ।

फिर शिवाजीने रहमतखां किलेदारको लानेका हुक्म दिया । उसके भी दोनों हाथ पीछे को बंधे हैं, माथेपर खड्गके लगनेसे घाव हो रहा था, तीर लगनेसे बांहें घायल हो रहीं थीं । परन्तु अब भी वह वीर सदर्प सभामें खडा हो आंख उठायकर शिवाजीकी ओर देखने लगा ।

शिवाजीने उस वीरश्रेष्ठको देख, स्वयं आसनसे उठ तलवारसे हाथोंमें की बँधीहुई रस्सी काट दी फिर धीरे धीरे बोले;-

" अय वीर प्रधान ! युद्धके नियमानुसार आपके दोनों हाथ बाँधेगये और एक रात आप कैदी रहे, यह दोष क्षमा कीजिये. अब आप स्वाधीन हैं; आपकी

वीरताकी क्या बडाई करूं, जय पराजय तो भाग्यसे होती है, परन्तु आपके समान वीरश्रेष्ठसे युद्ध करनेपर मैंभी सन्मानित हुआ हूं। ''

रहमतखां जानता था कि, प्राणदंड होगा यह जानकर भी वह कुछ चलायमान नहीं हुआ, बरन उसके स्थिर गर्वित नेत्रोंका एक पलकभी नहीं कांपा, परन्तु अब शिवाजीका यह भला व्यवहार देखा, तब उसका हृदय विचलित होगया। युद्धके समय कभी किसीने रहमतखांमें कातरताका चिह्न नहीं देखा था, परन्तु आज वृद्धके इन उज्ज्वल नेत्रोंसे दो बूँद आंसू गिरे। रहमतखांने मुँह फेरकर उनको पोंछा और धीरे धीरे बोला।

अय बहादुर क्षत्रियोंके राजा! कल रातमें तो आपकी फौजके जोरसे शिकिस्त खाईथी, लेकिन अब आपका ऐसा मुनासिब सळूक देखकर उस्से जियादा शिकिस्त खाई। जो हिन्दू और मुसलमानोंका मालिक है, जो बादशाहोंके ऊपर बादशाह है, जमीनों आसमांका सुलतान है, उसने इसी वास्ते आपको नया राज फैलानेका हुक्म दिया है। वृद्धके नेत्रोंसे और दो बूँद आंसूगिरे।

राजा जयसिंहने रहमतखांसे कहा " आपने अपने ऊंचे पदकी योग्यता प्रमाणित करदी। दिल्लीश्वर आपके समान सेनापति पाय निस्संदेह उसका भली भांति आदर सत्कार करें। क्या हमलोग दिल्लीश्वरको लिख सक्ते हैं कि, आपके समान वीरश्रेष्ठ आपकी सेनाका एक प्रधान कर्मचारी होनेमें सम्मत है!"

रहमतखांने जवाब दिया " महाराज! आपके ऐसा कहनेसे मेरी इज्जत हुई, लेकिन उम्रभरसे जिसका नमक खाया है, उसको नहीं छोडूंगा, जबतक इस हाथसे तलवार पकड सकूंगा, विजयपुरहीके लिये पकडूंगा। "

शिवाजी बोले! " बहुत अच्छा। अब आज रात आप विश्राम कीजिये, कल प्रातःकाल हमारी सेनाका एक दल आपको विजयपुरतक निरापद पहुँचा देगा " यह कह रहमतखांका यथोचित सन्मान और सेवा करनेके अर्थ कई एक पहरियोंको आज्ञा दी।

" रहमतखांने दृष्टि स्थिर की, कुछ देरतक शिवाजीको देखकर बोला " महाराज! आपने मेरे साथ सळूक किया है, मैं भी आपके साथ बुराई नहीं कर सक्ता, न मैं आपसे कोई बात छिपाऊंगा। आप अपनी फौजमें खूब तलाश

" करके देख लीजिये कि, सब आपके खैरख्वाह नहीं, बल्कि कोई २ बागी भी हैं। कल किलेपर चढाई करनेके पहलेही यह खबर मुझको मिलगई थी. इसी वास्ते तमाम फौज तमाम रात तैयार हो हथियारबंद खडी रही थी। खबर देनेवाला आपकाही एक सिपाही है। मैं इस्से ज्यादा कुछ नहीं कह सक्ता सचको नहीं छोड सक्ता। " रहमतखां सहज सहज पहरियोंके साथ महलके सामनेको चलागया

शिवाजीका मुखमण्डल क्रोधसे कालासा हो गया, नेत्रोंसे चिनगारियें निकलने लगीं, शरीर कांपने लगा, उनके भाई बंधुओंने समझा कि अब परामर्श कुछ काम नहीं करेगा, उनकी सेनाने भी जानलिया कि अब बडी विपद् आई है।

जयसिंह शिवाजीकी यह अवस्था देखकर बोले " शान्त हूजिये, एकके दोषसे समस्त सेनाके ऊपर क्रोध करना अनुचित है। " फिर शिवाजीकी सेनासे कहने लगे:—

" तुम लोगोंने किसवख्त जाना था कि आज इस किलेपर चढाई होगी ? "

सेनाने उत्तर दिया " एक पहर रातगये "

जयसिंह—" इसके पहले कोई भी यह बात नहीं जानता था ? "

सेना—" यह जानते थे कि, रातमें किसी किलेपर चढाई होगी, परन्तु यह नहीं जानते थे कि, कौनसे किलेपर धावा होगा ; "

जयसिंह। " अच्छा ! तुमलोग किलेपर किसवक्त पहुँचे थे। "

सेना। " कोई डेढपहर रातगये ! "

जयसिंह।—" एक पहरसे डेढपहर तक तुम सब इकट्ठे थे ? अथवा तुममें यह चरचा तो नहीं चली कि " वह नहीं है " ' वह कहीं गया है ' वह क्यों नहीं आया, जो यह चर्चा हुई तो बतलाओ। देखो एकके कारण सबका अपमान न हो, तुम लोगोंने देश देश, पर्वत पर्वत, ग्राम ग्राममें शिवाजीकी ओरसे युद्ध किया था, राजा भी तुम्हारा विश्वास करते हैं, तुम्हें ऐसा प्रभु स्वप्नमेंभी नहीं मिलेगा। तुमभी अपनेको विश्वासके योग्य होनेका प्रमाण दो, जो कोई विद्रोही हो उसको सन्मुख लाओ, यदि वह कलकी लडाईमें मारा गया हो तो उसका नाम कहो, अन्यायके संदेहसे वृथा सबके मानमें कलंक लगरहा है। "

तब सेनाके सिपाही कलकी बातें यादकर आपसमें कुछ बोलने चालने लगे। शिवाजीका क्रोध शान्त हो आया और सावधान होकर बोले " महाराज ? आप यदि उस कपटी सिपाहीको बतादें, तो मैं सदा आपका ऋणी होकर रहूंगा। "

चन्द्रराव नामक एक जुमलेदार आगे बढ़कर बोला–

" राजन् ! कल एक पहर रात्रिगये बाद जब सेना चली थी उस समय मेरे अधीनका एक हवालदार ढूँढनेसे भी नहीं पाया गया। और जब हमलोग किलेके नीचे पहुँचे, तब वह हममें आकर मिलगया।

भयंकर शब्दसे शिवाजीने कहा " क्या वह अभीतक जीता है ? "

विद्रोहीका नाम श्रवण करनेको सब चुपचाप हैं ?–किसीका सांसभी चलता नहीं जाना जाता, सभा ऐसी शब्द शून्य है कि, यदि कोई सुई गिरपडे तो उसका शब्द भी स्पष्ट ज्ञात हो जाय, उस सूनसानमें जागता हुआ चन्द्र-राव बोला–

" रघुनाथ हवालदार ? "

सब मौन और चकित हुये ?

चन्द्रराव एक प्रसिद्ध योद्धा था, परन्तु जबसे रघुनाथ यहां आये थे, तबसे चन्द्ररावका नाम और विक्रम लोप हो चला था। मनुष्यके स्वभावमें ईर्षाके समान भयंकर और बलवान कोई बात नहीं है।

शिवाजीका वदनमण्डल फिर कृष्णवर्ण होगया, वह दांतसे दांत घीस चन्द्रा-वको देखकर क्रोध सहित बोले;–

" निन्दक कपटाचारी ! तेरी निन्दा रघुनाथके यशको स्पर्श नहीं कर सकती; मैंने रघुनाथका आचरण अपने नेत्रोंसे देखा है, किन्तु मिथ्या निन्दकका दंड सेना देखै। "

वज्रवत् वेगसे जैसेही शिवाजीने बर्छेको तोला कि, वैसेही रघुनाथ सन्मुख आयकर बोले;–

" महाराज ! चंद्ररावका प्राण संहार न कीजिये, वह मिथ्यावादी नहीं है, मुझे आनेमें कल विलम्ब हुआ था। "

फिर सब रघुनाथकी ओर देखने लगे।

शिवाजी कुछ कालतक चित्र लिखितसे होगये, फिर धीरे धीरे माथेका पसीना पोंछकर बोले;-अरे ? क्या मैं स्वप्न देखताहूं ? तुमने, रघुनाथ तुमने यह क्या किया है ? तुमहीं तो प्राचीर लांघनेके समय अद्भुत विक्रम दिखाकर सबसे आगे बढे थे, फिर तीन शत सिपाही लेकर दुर्गम अफगानोंको परास्त किया था, तुमने विद्रोहाचरण करके किलेदारको प्रथमही चढाईका समाचार दिया था ? " शिवाजीके नेत्रोंसे आग बरसने लगी।

रघुनाथने उत्तर दिया " प्रभू ! मैं इस दोषमें निर्दोषी हूं "

दीर्घ शरीरवाला निडर युवावीर, शिवाजीकी अग्निसमान दृष्टिके सन्मुख निष्कम्प खडा है पलक नहीं लगते, एक रुआँतक नहीं कांपता। सब सभासद और असंख्य सेना सब रघुनाथको कडीदृष्टिसे देखने लगे। रघुनाथ स्थिर अविचलित और अकम्पित रहे, उनकी विशाल छातीसे केवल गंभीर श्वास निकल रहे हैं! कल जिस प्रकार असंख्य शत्रुओंमें इकले कोटकी भीतपर खडे थे, उससे अधिक संकटमें उसी प्रकार आज धीर और अचल अटल हैं।

शिवाजी गर्जकर बोले, " फिर राजाज्ञाभंग करके एक प्रहर रात्रिके समय सेनामें न होनेका क्या कारण है ? "।

रघुनाथके अधर कुछ कुछ कांप गये, उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया और पृथ्वीकी ओर देखते रहे।

रघुनाथको चुप देखकर शिवाजीका संदेह बढा दोनों आंखें लाल हो आईं और क्रोधसे कांपते हुए बोले " कपटाचारी ! इसी कारण वीरता दिखाई थी ? परन्तु खोटी घडीमें शिवाजीको छलनेकी चेष्टा की थी " रघुनाथ वैसेही अकम्पित स्वरसे बोले " हे राजन् ! छल और कपटाचरण करना हमारे वंशकी रीति नहींहै " हे महाराज ! चन्द्ररावभी यह जानतेही होंगे। आज पहिलीवार रघुनाथने अपने वंशका नाम लिया।

रघुनाथका स्थिर होना शिवाजीके क्रोधमें आहुतिके समान हुआ वे कडे स्वरसे बोले।

" रे पापी ! अब कहां जायगा ? चाहै कोई भूंके शेरके ग्रासमें पडकर भाग जाय; परन्तु शिवाजीके भयंकर क्रोधसे नहीं बच सक्ता "

रघुनाथने धीरेसे उत्तर दिया "मैं महाराजसे बचनेकी प्रार्थना नहीं करता, मैं मनुष्यसे क्षमा प्रार्थना नहीं करता, परन्तु जगदीश्वर मेरे दोषको क्षमा करैं ?

शिवाजीने उन्मत्तकी समान बरछा उठायकर गंभीर नादसे आज्ञा दी ।

" विद्रोहाचरण करनेवालेको प्राणदंड होना चाहिये । "

रघुनाथने उस वज्रसमान मुट्ठीमें वह तेजबर्छा देखा और किंचित मात्र भय न कर धीर भावसे बोले, " मरनेको तैयार हूं, परन्तु मैंने विद्रोहाचरण नहीं किया "

शिवाजी और न सहसके; उन्होंने बरछेको उठाया कि, इतनेहीमें राजा जयसिंहने उनका हाथ पकड लिया उस समय शिवाजीका मुख मंडल विकराल हो गया था, शरीर कांपता था, वह जयसिंहसे भी उचित सन्मान करना भूल चिल्लाय कर बोले ।

" हाथ छोड दीजिये, मैं नहीं जानता कि, राजपूतोंका क्या नियम है ? न उसके जाननेकी मुझे आवश्यकता, परन्तु महाराष्ट्रियोंका सनातन नियम विद्रोहीको प्राणदंड देना है, सो शिवाजी यही नियम पालन करेगा" !

जयसिंह इस बातसे कुछ क्रोधित न हुए और बोले, "वीरश्रेष्ठ ! जो आज आप करेंगे, कल उसका प्रतीकार करनेमें आपभी असमर्थ होंगे । यदि आज आप इस बीरको प्राणदंड देंगे, तो इसके अर्थ जन्मभर पछताना होगा ? यद्यपि युद्धके नियमोंमें आप पारदर्शी हैं परन्तु वृद्धकी सम्मति भी तो मानिये" ।

जयसिंहका यह उचित बर्त्ताव देखकर शिवाजी कुछ बुद्धिहतसे होकर कहने लगे "तात ! मेरी ढिठाई क्षमा करो, मैं आपकी सम्मति कभी उलंघन नहीं कर सक्ता परन्तु शिवाजीने यह कभी मनमें भी ध्यान नहीं किया था, कि विद्रोहीको क्षमा करनी होगी" फिर रघुनाथकी ओर दृष्टि फेरकर बोले ।

"हवालदार ! राजा जयसिंहने तुम्हारे प्राण बचाये परन्तु मेरे सामनेसे दूर हो, शिवाजी विद्रोहीका मुख देखना नहीं चाहता" । उसी समय फिर बोले, "जरा ठहर ! दो वर्ष हुए यह खड्ग मैंनेही तुझे दिया था, जो तेरे पास है, विद्रोहीके पास मेरे खड्गका निरादर न होगा । पहरेदारो ! खड्ग छीनकर विद्रोहीको किलेसे निकाल दो ।" पहरियोंने आज्ञा पालनकी ।

जब रघुनाथको प्राण दंडकी आज्ञा हुई थी, तब भी वह अटल थे, परन्तु जब पहरेदारने उनसे तलवार छीनी, तब उनका शरीर कुछ कुछ कांपा और नेत्र लाल होगये। उन्होंने वह भयंकर व्याकुलता रोकी और शिवाजीकी ओर एक बार निहार भूमितक शिर नवाय चुपचाप किलेसे बाहर चले गये।

सन्ध्याकी छाया सहज सहज गाढीहो जगत्को आवृतकर रही है, एक पथिक चुपचाप पर्वतपरसे उतरकर अकेला मैदानमें चला जाता है। कभी गांवमें कभी मैदानमें, कभी उपवनमें वह पथिक चल रहा है। अंधकार गंभीर हुआ, आकाश बादलोंसे ढकगया, रुक रुककर रात्रि समीरण चलरही है, फिर अँधेरेमें वह पथिक दृष्टि न आया, न उसके पश्चात् किसीने उसे देखा।

सत्रहवाँपरिच्छेद।

चंद्रराव जुमलेदार।

ऊंच निवास नीच करतूती। देख न सकहिं पराइ बिभूती।

(गो. तु. दा.)

चन्द्रराव जुमलेदारसे हम लोगोंका यही प्रथम परिचय है, यह बडा बुद्धिमान् असाधारण वीर्ययुक्त, व असाधारण दृढप्रतिज्ञ है! उसकी उमर रघुनाथसे ५। ६ वर्ष अधिक थी, परन्तु दूरसे देखकर यह जान पडता था कि, यह पैंतीस वर्षका युवा है। इस उमरमेंही चौडे माथेमें चिन्ताकी दो एक गंभीर रेखा पडगई थीं, बाल दो एक सफेद होगये थे। नेत्र अति उज्ज्वल व चमकदार थे। किन्तु जो लोग चन्द्ररावको भली प्रकार जानते थे, वह कहते कि, जैसा चन्द्ररावका तेज और साहस दुर्दमनीय था, इसी प्रकार गंभीर दूरदर्शी, चिन्ता और भयंकर बेरोक अटल प्रतिज्ञाभी है। सारे बदनपर एक दो भाव अधिकाईसे दीखते थे! देह मानो लोहेकी बनी हुई और असीम पराक्रमी थी, जो चन्द्ररावका अनन्त पराक्रम असंभव विजातीय क्रोध गंभीर बुद्धि और दृढप्रतिज्ञाके विषयमें जानते थे, वे लोग

कभी उस अल्पभाषी, स्थिर प्रतिज्ञ, प्रयानक जुमलेदारसे झगडा नहीं करते थे । इन सबसे अलग चन्द्ररावमें एक गुण वा दोष औरभी था, जिसको जोई नहीं जानता था वह यही था कि, असंभव उच्चाभिलाषसे सदा उसका हृदय जलता था । वह असाधारण बुद्धि चलाय अपनी उन्नतिका मार्ग निकालता और अटल दृढ प्रतिज्ञासे उस पंथको अवलंबन करता, खड्ग हाथमें ले उस मार्गको निष्कण्टक करता था, शत्रुहो, मित्रहो, दोषी हो, निर्दोषी हो, अपकारी हो वा परम उपकारी हो, उस मार्गके सामने जो पडता, उच्चाभिलाषी चन्द्रराव निःसंकोच पतंगके समान उसे गिरायकर अपना मार्ग साफ करता था । आज दुर्भाग्यसे बालक रघुनाथ उस मार्गके सामने आन पडे थे उनको पतंगके समान नष्टकर जुमलेदारने मार्ग साफ किया । ऐसे असाधारण पुरुषका पहला वृत्तान्त जानना आवश्यक है । इसके संग संग कुछ रघुनाथके वंशका वृत्तान्त भी ज्ञात होजायगा ।

रघुनाथ अपने जन्मका वृत्तान्त प्रकाश नहीं करते और न हम उसको जानते हैं, वे केवल अतिउन्नत राजकुलमें अपना जन्म बताते थे । राजा यशवंतसिंहके एक प्रधान सेनापतिने चन्द्ररावका बालकपनमें पालन किया था । अनाथ बालक गजपतिके घरका काम काज करता था, गजपतिके पुत्र कन्याको खिलाता और इसी प्रकार संसारमें दिन काटता था ।

जब चन्द्रराव पन्द्रह वर्षका था, तभी गजपति उसकी गंभीर चिन्ता और बुद्धि दुर्दमनीय तेज, दृढप्रतिज्ञा देखकर अति आनंदित हुए, अपने पुत्र रघुनाथ की समान इससे भी स्नेह करते थे और इस थोडीसी ही अवस्थामें चन्द्ररावको उन्होंने अपने अधीनमें एक सिपाही की जगह देदी ।

सिपाहीका कार्य करतेही चन्द्रराव दिन दिन ऐसा विक्रम प्रकाश करने लगा कि, जिसको देखकर प्राचीन वीर भी विस्मित होते थे । युद्धके जिस स्थानमें अतिशय विपद् व प्राणनाशकी संभावना होती, जहां शत्रु मित्रकी लोथें पडीं रहतीं, रुधिर बहता, आकाश धूरिसे छाय जाता वीरोंके सिंहनाद व घायलोंके आर्त्तनादसे कान विदीर्ण हो जाते वहांपर यदि देखागया तो यही पंद्रह वर्षका बालक चुपचाप महाविक्रमको प्रकाश करता था, मुँहसे शब्द नहीं परन्तु नेत्र अग्निके समान उज्वल होते, माथेमें क्रोधसे सलवटें पड जाती थीं । युद्ध समाप्त

होनेपर जहाँ विजयी सिपाही एकत्र होकर रात्रिमें गीत इत्यादि गाते, हँसी दिल्लगी करते चन्द्रराव वहां नहीं होता था, अल्पभाषी दृढप्रतिज्ञ बालक अकेला रात्रिमें डेरेपर बैठा रहता, अथवा माथा सकोडे हुए मैदान वा नदीके किनारे संध्याके समय अकेला फिरा करता था। चन्द्ररावका उद्देश अब कुछ कुछ फला था, अब वह अज्ञात कुलका उत्पन्न राजपूत बालक नहीं था, उसका पद बढगया था गजपति सिंहके अधीन समस्तसेनामें चन्द्रराव सहसा वीरतामें प्रसिद्ध हो गया। मर्यादाके साथसाथ चन्द्ररावका उच्चाभिलाष और गर्वभी अधिक बढगया था।

एक दिन एक लडाईमें चन्द्ररावका विक्रम देखकर गजपति अतिप्रसन्न हुए और विजय होनेके उपरान्त सबके सामने चन्द्ररावको बुलाय अति आदरमान कर बोले, " चन्द्रराव ! आज तुम्हारेही साहससे हमारी जय हुई है, इसका इनाम तुम्हें क्या दें ? " चन्द्रराव मुख नीचा करके विनीत भावसे बोला " प्रभुके धन्यवाद देनेसेही मुझे अधिक पुरस्कार मिलगया अब और कुछ नहीं चाहता। " गजपति स्नेहसहित बोले, ' जो इच्छा हो सो कहो ! चन्द्रराव मैं तुम्हें धन, सामर्थ्य, पद, वृद्धि, सब दे सकता हूं " । चन्द्रराव धीरे धीरे नेत्र उठाकर बोला।

यह जगत् जानता है कि राजपूत जो वचन अंगीकार कर लेते हैं, फिर उसे कभी नहीं फेरते। "वीरश्रेष्ठ ! आप अपनी कन्या लक्ष्मी देवीसे मेरा विवाह कर दीजिये "।

सब सभासद विस्मित हो गये। गजपतिके शिरपर तो मानों आकाश फट पडा, उनका शरीर काँपने लगा, खड्ग कुछ एक म्यानसे निकाला, परन्तु उस क्रोधको रोक हँसकर बोले।

" जो कह दिया उसके पालन करनेमें प्रस्तुत हूं परन्तु तेरा जन्म महाराष्ट्र देशमें हुआ है। राजपूतकी बेटियोंको महाराष्ट्रियोंके साथ पर्वत की कन्दरा और जंगलोंमें रहनेका अभ्यास नहीं है। प्रथम लक्ष्मीके रहने योग्य वासस्थान बना, फिर महाराष्ट्रिय नौकरके साथ राजकुमारीके विवाहका कर्त्तव्याकर्त्तव्य विचार किया जायगा अब और भी कोई अभिलाषा है ? " ।

सब सभासद उच्चहास्य करने लगे। चन्द्रराव बोला " अब कोई और अभिलाष नहीं है, जब होगी तब स्वामीसे निवेदन करूंगा " ।

सभा भंग हुई सब अपने अपने डेरोंको चले गये, उदार चित्तवाले गजपतिने जो क्रोध चन्द्ररावपर किया था, वह उसी समय भुला दिया और उस दिनकी सब बात भूल गये। परन्तु चन्द्रराव कुछ नहीं भूला, उसी दिन संध्या समय सहज सहज अपने डेरेमें टहलने लगा, कोई दो घडी टहला, डेरेमें महा अंधकार था, किन्तु उस अंधकारसे अधिक अंधकार चन्द्ररावके हृदय और माथेपर विराज रहा था। उसका वह भाव वर्णन करनेमें हम असमर्थ हैं, हम जानते हैं यदि उस समय उसके मुखको मृत्यु भी देखती तो चकित हो जाती।

दो घडी पीछे जन्द्ररावने एक दीपक जलाया, एक पुस्तकमें अति यत्नसे कुछ लिखा और उसे बंद कर दिया, बंद कर फिर खोला और फिर देखा, तब फिर बंद कर रख दी। मुखपर कुछ बिकट हँसी दृष्टि आई।

इतनेहीमें उनके एक बंधुने शिबिरमें प्रवेशकर पूछा "चन्द्र! क्या लिखते हो?" चन्द्ररावने सहसा अविचलित स्वरसे कहा "कुछ नहीं, हिसाब लिखकर रक्खा है, मैं किस किसका कितना २ ऋणीहूं, यही लिखता हूं।"

बंधु चलेगये, चन्द्ररावने पुस्तक फिर खोली वह यथार्थमें हिसाबकी पुस्तक थी, उसमें चन्द्ररावने एक कर्जेका हिसाब लिखा था। फिर पुस्तक बंदकर दीप निर्वाण करादिया।

इस बातके एकवर्ष उपरान्त औरंगजेब और यशवंतसिंहसे उज्जयनीके निकट घोर संग्राम हुआ। उस युद्धमें गजपतिसिंह मारेगये, परन्तु जिस तीरने उनका हृदय विदीर्ण किया, वह शत्रुका चलाया हुआ नहीं था।

फिर जब यशवंत सिंहकी रानीने पतिका हारना सुन क्रोधसे अंधहो दुर्गद्वार बंद कर लिया, तब किसीने संवाद दिया था कि, गजपति नामक सेनापतिकी भीरुता और कपटतासेही पराजय हुई है। राजमहिषी उस समय विचार करनेमें असमर्थ थी। विना विचारे आज्ञा देदी कि, कपटाचारी की संतान मारवाडसे निकल जाय और समस्त सम्पत्ति राज्यमें लेली जाय। परन्तु यह नहीं मालूम हुआ कि, गजपतिकी कपटाचारिताका संवाद किसने दिया था।

गजपतिके अनाथ बालबच्चे मारवाडसे निकाले जाकर पैदल किसी दूसरे देशको जारहे थे। रघुनाथकी उमर बारहवर्ष और लक्ष्मी तेरह वर्षकी थी,

उनके साथमें केवल एक पुराना सेवक था। महारानीके भयसे उन हतभाग्यों पर कोई दया करनेका साहस नहीं करसका। मार्गमें एक चोरोंका दल उनके साथी नौकरको प्राणसे मार बालक बालिकाको महाराष्ट्र देशमें लेगया। बालक थोडी उमरसेही तेजस्वी, और बुद्धिमान् था, वह रात्रिमें समय पायकर चोरोंके डेरोंसे भागगया और गजपतिकी बेटीसे चोरोंके सरदारने बलात्कार विवाह कर लिया। वह सरदार चन्द्रराव था।

तीक्ष्ण बुद्धि चन्द्ररावका मनोरथ थोडासा पूर्ण हुआ गजपतिके घरसे बहुतसा धन और मोती मूंगे लूटकर आया था, उससे एक बडी जागीर मोल ली और दक्षिणमें एक प्रतिष्ठावान् मनुष्य होगया था। यह किसीने सत्य कहा है कि मेरे जान बीस बिस्वे दामहींमें राम हैं—चन्द्ररावका वंश एक प्राचीन राजवंशसे उत्पन्न हुआ था, यह बात किसीने अविश्वास नहीं किया, क्योंकि सबने देखा कि गजपतिकी एकमात्र कन्यासे चन्द्ररावने विवाह किया है, उसका यथार्थ साहस और विक्रम देखकर शिवाजीने उसको जुमलेदारका पद दिया, उसकी विपुल धन सम्पत्ति व बाहरी आडम्बर देखकर सबने उसको जातिमें सन्मानित किया। चन्द्ररावने और भी दो तीन बडे घरोंमें विवाह किया, बडे आदमियोंसे मिलने लगा, बडी चाल चलने लगा, व इसके आगे इस जुमलेदार की और करतूत बतानेकी आवश्यकता नहीं। जिस सुंदर चतुरतासे हमलोग "बडे आदमी" होते हैं, जातिके शिरभूषण होते हैं पद व मर्यादाकी उन्नति करते हैं, साथ साथमें दम्भ और गम्भीरताकी वृद्धि करते हैं उसी कौशलका अवलम्ब चन्द्ररावने किया। तोभी चन्द्रराव असभ्यथा क्योंकि उसने अपने हाथसे अपने पिताके तुल्य गजपतिको मारकर उस ऊंचे वंशका सर्वनाश किया था, हम सुसभ्य हैं, क्योंकि हमलोग चतुरता और सुंदर सुंदर मुकद्दमें रूपी उपायोंसे कितनेही विभवशाली वंशोंको भस्म करते हैं, कोई निन्दा भी नहीं कर सक्ता, क्योंकि यह सभ्य "आईन संगत" उपाय है। चन्द्रराव असभ्य था क्योंकि वह युद्धमें महाविक्रम प्रकाशित करके राजाको संतुष्टकर अपनी उन्नति और देश देशमें यश बिस्तार करनेकी चेष्टा करता था।

हम सुसभ्य हैं क्योंकि व्याख्यानरूपी वचन युद्धसे अथवा संवादपत्ररूपी लेखनी युद्धसे भयंकर विक्रम दिखाय राजासे उपाधि प्राप्त करनेकी चेष्टा करते और शीघ्रही "देशहितैषी" और "बडे आदमी" होजाते हैं! चारोंओर जय जय ध्वनि होती रहती, संवादपत्रोंमें भेरियें बजती रहती हैं। देश देशमें वह ध्वनि प्रतिध्वनित होती रहती हैं कि "हम बडे आदमी हैं!"

अठारहवाँ परिच्छेद ।

लक्ष्मी बाई ।

"नारिनको पति देव, वेद नित यही बखाने ।
ब्रह्मा विष्णु महेश, नारि पतिहीको जाने ।"

(झब्बीलाल मिश्र)

बारह वर्षकी उमरमें रघुनाथ चोररूपी चन्द्ररावसे घेरे जाकर राजस्थानसे महाराष्ट्रदेशमें आये थे। एक दिन रात्रिमें भागगये, यह कभी वनमें, कभी मैदानमें कभी पर्वतोंकी कंदराओंमें, या किसी गृहस्थके घरमें बहुत दिनतक छिपे रहे, अनाथ सुंदर अल्पवयस्क बालकको देखकर कोई एक मुट्ठी अन्न देनेसे मुँह नहीं मोडता था।

इसके उपरान्त पांच छः वर्ष रघुनाथने अनेक देशोंमें अनेक प्रकारके कष्ट सह कर बिताये। संसाररूपी अनन्त सागरमें अनाथ बालक रघुनाथ इकले बहने लगे! अनेक देशोंमें फिरे, अनेक प्रकारके मनुष्योंके निकट भिक्षा व दासवृत्ति करके जीवन व्यतीत किया। पहली प्रतिष्ठा, पिताकी वीरता और सन्मानकी याद सदा बालकके हृदयपटपर चित्रित रहती, परन्तु अभिमानी रघुनाथ वह बातें, वह दुःख किसीसे प्रगट नहीं करते, जब कभी दुःखका भार न सहाजाता, तो चुप चाप किसी मैदान व पर्वतके शृंगपर बैठकर रोते और फिर नेत्रोंका जल पोंछकर अपने कार्यमें लगजाते थे।

बढनेके साथ साथ मानो वंशोचित भावभी इनके हृदयमें जागरित होनेलगा। अल्पवयस्क रघुनाथ कभी कभी गुप्तभावसे अपने प्रभुका टोप शिरपर धारण करते, कभी प्रभुका खड्ग अपनी कमरमें झुलाते। संध्या समय मैदानमें बैठकर देशी चारणोंका गान ऊंचे स्वरसे गाते, रात्रिमें पथिकगण पर्वतकी गुफाओंमें संग्रामसिंह वा प्रतापसिंहका गीत सुनकर चकित होते थे, जब रघुनाथ अठारह वर्षके हुए, तब शिवाजीकी कीर्त्ति, शिवाजीका उद्देश्य और शिवाजीके वीर्यकी प्रशंसा करते थे। राजस्थानके समान महाराष्ट्रदेश स्वाधीन होजायगा, शिवाजी दक्षिणदेशमें हिन्दूराज्यका विस्तार करेंगे, यही चिन्ता करते करते उन्होंने शिवाजीके पास जाकर एक साधारण सिपाहीकी जगह मांगी।

शिवाजी मनुष्योंके पहँचाननेमें अनुपम थे, कई दिनमें रघुनाथको पहँचानकर उन्हें एक हवालदारीके पदपर नियुक्त किया और इसके कई दिन पीछेही इन्हें तोरण दुर्गमें भेजा था। कि, जहां मार्गमें रघुनाथसे पाठकोंका प्रथम साक्षात् हुआ था।

पहलेही कह आये हैं कि, रघुनाथने हवालदारीका पद पाया था। जब रघुनाथ शिवाजीके समीप आये थे, तब चन्द्रावके अधीनमें एक हवालदारकी मृत्यु हुई और उसकी हवालदारी रघुनाथको दीगई थी, रघुनाथ चन्द्ररावको अपने पिताका प्राचीन सेवक और अपना बालसखाही जानते थे, पितृघाती वा चोर अथवा भगिनीपति करके नहीं जानते इस कारण वे आनंद सहित उससे आलाप करने गये. चन्द्ररावनेभी रघुनाथका आदर सत्कार किया परन्तु अल्पभाषी जुमलेदारके माथेपर इस दिन फिर एकबल पडगया था।

दिन दिन रघुनाथका साहस, विक्रम, यश, अधिक विस्तार होने लगा, चन्द्ररावकी चिन्ता गंभीर होचली। हमारे सामनेभी जब कीडे, मकोडे, आजातेहैं तब हमभी उन हतभाग्योंको पैरसे मसलकर अपना रास्ता साफ करते हैं,—चन्द्ररावनेभी किसीदिन चुपकेसे रघुनाथको मारकर अपना मार्ग साफ करना विचारा। परन्तु जब रघुनाथके यशने उसके निजसंचित यशकोभी मलीन करदिया, जब समस्त वीरगण बालकका साहस देखकर विक्रमशाली चन्द्ररावका विक्रम भूलने लगे, तब चन्द्ररावने मनही मन प्रतिज्ञा की कि, इस बालकको भयंकर दंड

देना उचित है, इसका यश नाश करूंगा । यह चिन्ता करते करते चन्द्ररावके नेत्र जपाकुसुमकी नाई लाल होगये, मानो मृत्युकी छायाने कुछ कुञ्चित ललाटको ढकलिया ।

चन्द्ररावकी स्थिरप्रतिज्ञा, गंभीर मंत्रणा, कभी व्यर्थ नहीं होती थी । आज भगवान्‌की कृपासे रघुनाथके प्राण तो बचगये, परन्तु विद्रोही कपटाचारी कहलाकर महाराज शिवाजीके कार्यसे दूर किये गये ।

चन्द्ररावभी शिवाजीसे कुछ दिनकी छुट्टी लेकर घरगया । पाठकगण ! चलो हमभी डरते डरते एकवार बडे आदमियोंके घरमें प्रवेश करें ।

जुमलेदार घरपर आये, बाहर नौबत बजने लगी, दास दासी घबडायेहुये अपने प्रभुके पास आने लगे, स्त्रियें अपने पतिका आदर सन्मान करनेको शृंगार करने लगीं, अडोसी पडोसी मिलने आये, जरा देरमें चन्द्ररावके आनेकी वार्त्ता सब गांवमें फैलगई ।

सन्ध्यासमय चन्द्रराव महलमें गया, लक्ष्मीबाईने भक्तिभावसे स्वामीके चरणोंकी बंदना की, फिर भोजन बनाय स्वामीको बुलाया । चन्द्रराव भोजन करने लगा, लक्ष्मीबाई बैठकर पंखा करने लगी ।

लक्ष्मीबाई वास्तवमें लक्ष्मीस्वरूपा, शान्त, धीर, बुद्धिमती और पतिव्रता थी । बालकपनमें पिताकी लडैती कन्या थी परन्तु थोडी उमरमेहीं अपरिचित मनुष्योंके बीच अल्पभाषी कठोरस्वभाववाले स्वामीके पाले पडगई, जलसे तोडेहुये कोमल फूलकी नाईं दिन दिन सूखने लगी । नौवर्षकी लडकीका जीवन शोकमय हुआ, परन्तु वह अपना दुःख किससे कहै ? कौन उसे धीरज बँधावे. ? लक्ष्मी पहली बातें याद करती, पिता, माता, भाईको यादकर चुपके चुपके रोती थी ।

शोक कष्टके पडनेसे हमारी बुद्धि तीक्ष्ण होती है, हमारा हृदय, मन शान्त और सहनशील होजाता है । लक्ष्मी भी संसारके कार्योंमें लगगई और मन देकर स्वामीकी सेवा करने लगी । हिन्दू रमणीकी पति बिना गति नहीं ! स्वामी यदि सहृदय और दयावान् हुआ, तो नारी आनंदमें मग्न हो उसकी सेवा करती हैं, यदि स्वामी निर्दयी और विमुखभी हो तोभी पतिकी सेवा बिना और क्या उपाय है ? चन्द्ररावके हृदयमें प्रेम नामक कोई पदार्थ नहीं था, अभिलाष और अपूर्व विक्रमसे

वह हृदय पूर्ण था, तथापि वह स्त्रीसे निर्दयी न थे; लक्ष्मीबाई पर कृपाही करते थे, लक्ष्मीभी स्वामीकी भलीप्रकारसे सेवा करती, स्वामीका स्वभाव जान सदा डरती, स्वामीकी एक मीठी बात सुनकर अपनेको धन्य मानती थी। स्वामीकी एकान्त प्रीति क्या चीज है? यह नहीं जानती न कभी इसके जाननेकी उसने आशा की थी।

इस प्रकार संसारी कार्य और पतिसेवा करते करते वर्ष पर वर्ष व्यतीत होने लगे, धीर शान्त लक्ष्मी यौवन पूर्ण हुई किन्तु यह यौवन शान्त और निरुद्वेग था पहली बातें सब भूलगई, अथवा कभी सायंकालमें राजस्थानकी याद आती, बालकपनका सुख, बालकपनका खेल और प्राणसम भ्राता रघुनाथकी याद उदय होती; यदि दो एक आंसू उन सुंदर रक्तशून्य कपोलोंपर बह आते, तो लक्ष्मी उनको पोंछकर फिर घरके कार्य करने लगती थी।

क्रमसे चन्द्ररावने और चार पांच विवाह किये कहीं ऊंचे वंशके कारण, कहीं धनके कारण, कहीं बहुतसी जागीरके अर्थ यह कन्यागण ग्रहणकी गई थीं, चन्द्रराव बालक नहीं था, उसने किसीसे सुन्दरता वा प्रेमके अर्थ विवाह नहीं किया था। लक्ष्मी बाईके उच्च राजवंशमें जन्म लेनेहीसे वह पटरानी थी सुन्दरता या प्रेमके कारण नहीं। चन्द्रराव सबको अधिकतासे बहुमूल्य गहना और वस्त्र धन देता था, कहीं कोई जाती तो उसके साथ अनेक दास, दासी, हाथी, घोडे, पैदल और बाजेवाले जाते जिससे सबको मालूम होजाता कि जुमलेदारका परिवार जाता है। यह सब लोकदिखावा अपनी प्रतिष्ठाके हेतु था कुछ स्त्रियोंकी प्रसन्नताके लिये नहीं। गृहकी सब स्त्रियां पतिसे समान डरतीं और दासीके समान सब सेवा करती थीं।

चन्द्रराव भोजन करता है लक्ष्मी एक ओर बैठी पंखा कर रही है अब लक्ष्मी की आयु सत्रह वर्षकी है। शरीर कोमल उज्ज्वल लावण्यमय किन्तु कुछेक क्षीण है। दोनों भौंहें कैसी सुन्दर हैं? मानों उस स्वच्छ ललाटमें कलमसे बनाई गई हैं। शान्त कोमल काले नेत्रोंमें मानों चिन्ताने अपना घर बना लिया है। कपोल सुन्दर और चिकने परन्तु कुछ पीले हैं सब शरीर थकित और दुबला है। जवानीकी अपूर्व सुन्दरता विकसित तो हुई है किन्तु यौवनकी प्रफुल्लता, उन्मतत्ता कहां? आहा! राजस्थानका यह अपूर्व फूल महाराष्ट्र देशमेंभी वैसेही सुगन्ध और सुन्दरता

फैला रहाहै, परंतु जीवनके अभावसे सूखाहुआ है और मुरझा रहा है। पद्मासना लक्ष्मीकी नाई लक्ष्मीबाईके सुंदर नेत्र थे, बाल बडे और देह कोमल सुगोल दृष्टि आता है परन्तु यौवनकी प्रफुल्ल सूर्य किरण नहीं जान पडती जीवनाकाश चिन्ता-रूपी मेघोंसे छा रहा है।

लक्ष्मी यह नहीं जानती थी कि चन्द्ररावने गजपतिको मारा है, परन्तु चन्द्ररा-वके आचरण और कभी कभी एक दो बातोंसे बुद्धिमतीने इतना जान लिया था, कि स्वार्थवश हो इन्होंनेही मेरे पिताका वंशनाश किया है परन्तु भयभीत हो लक्ष्मी इस बातकी कुछ चर्चा चन्द्ररावसे नहीं करती थी।

एक दिन चन्द्ररावने लक्ष्मीसे कहा कि तेराभाई मेरे अधीनमें हवालदार नियत होकर अधिक यश लाभ कर रहा है। कथा समाप्त होनेपर चन्द्रराव कुछेक हँसा था, लक्ष्मी स्वामीका स्वभाव जानती थी, वह हँसी देखकर सहम गई।

भइया रघुनाथ कैसे हैं? क्या करते हैं? इत्यादि अनेक भावना सदा लक्ष्मीके हृदयमें उठतीं, परंतु भयभीत हो स्वामीसे कुछ पूछती नहीं थी, स्वामीके आनेपर उनके नौकर या सेवक लोगोंको वशकर उनसे गुप्तसंवाद लिया करती वह सदा डरती रहती कि स्वामी कहीं भइयाका कुछ बुरा न करैं। परन्तु इस बातको वह नहीं जानती थी कि यह भय कैसे हुआ है?।

एक दिन स्वामीकी दो एक मीठी बातोंसे उत्साहित हो लक्ष्मी उनके चरणोंके पास बैठकर बोली—"दासीकी एक प्रार्थना है; परन्तु कहते हुए डर लगता है"।

चन्द्रराव भोजन करने उपरान्त शयनकर पान चाबरहा था, प्रीति सहित बोला "कहो ना"।

लक्ष्मी बोली। "मेरा भइया बालक अज्ञान है"।

चन्द्ररावका मुख गंभीर हुआ!

लक्ष्मी भीत हुई—परन्तु विचारा कि जो भाग्यमें होगा वह होहीगा आज तो सब कहूंगी। कहने लगी—

"वह आपका सेवक आपके ही अधीन है।" चन्द्रराव क्रुद्ध होकर बोला—

"नहीं वह साहसमें मुझसे भी अधिक विख्यात है"।

बुद्धिमति लक्ष्मी जानगई कि, जो मुझे डर था वही आगे आया—स्वामी भइया के ऊपर महाक्रुद्ध हैं। यह जानकर कंपित स्वरसे बोली—

"बालकके दोष करनेपर यदि आपही उसे क्षमा न करेंगे तो कौन करेगा ?" ।

चन्द्रराव क्रोधसहित बोला " मुझे दिक मत करो, मैं स्त्रियोंसे सम्मति नहीं लिया चाहता ? "

लक्ष्मीने देखा कि चन्द्ररावके शरीरमें क्रोध उत्पन्न होता है, जो कोई और बात होती तो फिर एक शब्द भी कहनेका साहस न होता, परन्तु भइयाके अर्थ स्नेहमयी बहन क्या नहीं करसक्ती हैं ? चन्द्ररावके पैरोंमें गिर रोकर बोली "आप प्रतिज्ञा कीजिये कि मैं रघुनाथका कोई अनभल नहीं करूंगा ! "

चंद्ररावके नेत्र लाल होगये और वह अतिजोरसे एक लात लक्ष्मीको मारकर अपने स्थानसे चलागया ।

तबसे आज प्रथमही चंद्रराव घरपर आया है लक्ष्मी नहीं जानती कि, रघुनाथ कैसे हैं ? और उनपर क्या बीती है ? उसका हृदय चिन्ताकुल है, स्वामीसे कुछ नहीं बूझ सक्ती है । उसने विचार किया कि रात्रिमें जब स्वामी सोजायंगे, तब इनके सेवकोंसे खबर मिल जायगी ।

चंद्रराव भोजनकर शयनागारमें गया, लक्ष्मी पानलेकर साथही वहां गई । चंद्रराव पान लेकर बोला—

"अभी जाओ, इस समय मुझे विशेष कार्य करना है, जब बुलाऊं तब अइयो।" लक्ष्मीसे चंद्ररावका यह प्रथमहीं संभाषण है। लक्ष्मी कोठरीसे बाहर चलीगई, चंद्ररावने सावधानतासे द्वार बंद करलिया ।

धीरे धीरे एक गुप्त स्थानसे एक संदूक निकाला, उसे खोल एक पुस्तक निकाली। पुस्तक हिसाबकी ज्ञात होती थी। प्रायः दशवर्ष पहले गजपतिसे जो यह चन्द्रराव सभामें अपमानित हुआ था, उसदिन इस पुस्तकमें एक करजेका हिसाब लिखाथा वही पत्रा खोला, वह पत्रा सुंदर चमकीले अक्षरोंसे उसीप्रकार शोभायमान होरहाहै।

"महाराज..गजपति,
ऋण..अपमानता,
बेबाक होगा......................................उसके हृदय रुधिरसे
उसकी संपत्तिनाश
करनेसे उसके वंशका
अपमान करनेसे"

एकबार, दोबार, इन अक्षरोंको पढा, किंचित् हँसी उस बिकट मुखमण्डलपर दृष्टि आई, फिर वहींपर लिखा–

"आज सब चुकाय दिया ।"

तारीख देकर पुस्तक बंदकर दी ।

द्वार खोलकर लक्ष्मीको पुकारा, लक्ष्मी भक्तिभावसे स्वामीके निकट आई, चंद्रराव लक्ष्मीका हाथ पकड हँसकर बोला "आज एक बहुत दिनका ऋण चुकाय दिया ।"

लक्ष्मी कांपगई !

चंद्ररावके सुंदर प्रशंसायोग्य हिसाबमें आज एक भूल हुई । इस ऋणका चुकाना आज समाप्त नहीं हुआ;–फिर कभी होगा ।

इति

शिवाजी विजय

अर्थात्

जीवनप्रभात प्रथमभाग

समाप्त.

॥ श्रीः ॥

शिवाजी विजय.

अर्थात्

जीवनप्रभात ।

द्वितीय भाग २.

ईशानीका मंदिर ।

उन्नीसवाँ परिच्छेद ।

सरके निकट चंडिगृह सोहा ।
निरखि तासु शोभा मनमोहा ॥

इस पराक्रमी जुमलेदारके मकानसे कुछ दूरपर देवीका एक मन्दिर था । पर्वतके अतिऊंचे कँगूरेपर देवीजीकी प्रतिष्ठा हुई थी । मंदिरपर चढनेके लिये पत्थरकी सीढियें बनी हुई थीं । नीचेसे एक पहाडी नदी किलोल करती उभरती हुई मंदिरकी पैरियोंको धोती चली जाती थी । असंख्ययात्री व उपासकगण इस पुण्यमय नदीमें स्नान करके देवीजीकी पूजा किया करते थे । ऊपरसे लेकर नीचेतक बराबर वृक्षही वृक्ष लगे हैं । इन सघन वृक्षोंमें दिनके समयभी अँधियारा रहा करता था । इनहींकी छायामें पर्णकुटियें बनाकर इस मन्दिरके पुजारी लोक रहाकरते हैं । इस पुण्यमय रमणीक स्थानके देखतेही मूर्तिमान् शान्तरसका दर्शन होजाता था; भारतवर्षकी पवित्र पुराणकथाका शब्द या वेदके मंत्रके अतिरिक्त और कोई शब्द यहांके प्राचीन वृक्षोंमें नहीं सुनाजाता । अगणित युद्ध व हत्याओंसे दक्षिणदेश कम्पायमान होरहा था, परन्तु क्या मुसल्मान और क्या हिन्दू किसीनेभी इस शान्तिमय छोटेसे मन्दिरको लडाईके कुलाहलसे कलुषित नहीं किया था ।

एक प्रहर रात बीतगई, कोई यात्री अकेला इस वनमें भ्रमण कररहा है। पथिकका हृदय व्याकुलतासे परिपूर्ण है। चौडा माथा बल खागया है, मुख लाल हो आया है नेत्रोंसे पागलपनकी एक विशेष प्रभा निकल रही है। यात्री कुछ देरतक इधर उधर फिरता रहा, फिर कुछ देर खडे होकर आकाशको देखा। गुस्सेके कारण अधर कांप रहे हैं स्वाँस लम्बे २ चलते हैं। क्रोध और रंजके मारे रघुनाथका हृदय भस्म हुआ जाता है।

कुछ विलंबतक रघुनाथ टहलते रहे; शरीर थकगया, तथापि मनकी घबडाहट नहीं जाती। कभी शान्त होकर वृक्षोंके नीचे बैठजाते और कभी एक साथ अकुलाकर फिर टहलने लगते थे। रघुनाथ इस समय आपेमें नहीं है! जो यह चिन्ता जल्दी न गई तो रघुनाथकी विचारशक्ति एकबारही चलायमान हो जायगी। स्वभाव भी एक अनुपम चिकित्सक है। पर्वतके समान जो दुःख हृदयमें चुभा करते हैं, अग्निके समान जो चिन्ता शरीरको सुखाती और जलाती रहती है, जिस मानसिक रोगकी औषधि नहीं है, न चिकित्सा है, यह प्रकृति चिन्ताशक्तिको भुलायकर उन दुःखोंकोभी लोप करती है। कितने अभागे पागल होकरही सुखी हैं। कितने अभागे रातदिन चाहते हैं कि, हम पागल होजाँय लेकिन वह इस औषधिको प्राप्त नहीं करसक्ते।

शरीर विवश होगया। रघुनाथ एक वृक्षके आसरेसे लगकर बैठगए।

यहां कुछ दूरपरही ब्राह्मणलोग पुराणोंका पाठ कररहे थे। अहा! वह संगीत-पूर्ण पुण्यकथा शान्तिकारिणी रात्रिमें वनके बीच अमृतकी बूंदें वर्षा रही थीं, यह पुराणध्वनि धीरे २ आकाशमार्गको उडी जाती थी। आज कलभी काशी और मथुराके प्राचीन मन्दिरोंमें भोर और सांझको सहस्रों सैंकडों ब्राह्मण प्राचीन पुराण कथाको सुनाते और वेदका पाठ किया करते हैं. जब इन पुण्यधामोंमें हम देश २ के आएहुए यात्रियोंका समागम देखते हैं, सनातन देवमन्दिरोंमें सनातन धर्मका गौरव देखते हैं, जब सन्ध्या समयकी आरतीका शब्द मन्दिरोंके सैकडों घण्टे और शंखके शब्दके साथ आकाशकी ओर दौडता है, साथ २ ही मन्दिरके ब्राह्मण जब चारोंओर बैठे हुये गंभीरस्वरसे वेदपाठ करनेके प्रश्चात् पुराणकथा श्रवण कराते हैं; तब हम देशकाल व आजकलकी जिन्दगीका भयंकर कुलाहल और मतमता-

न्तरका झगडा भूल जाते हैं; हृदयमें अनेक प्रकारके स्वप्न उदय होकर यह समझाते हैं कि, हम उसही प्राचीन " भारतवर्ष " में बास करते हैं । प्राचीन कालके मनुष्य, प्राचीन कालकी सभ्यता व सन्मान प्राचीन कालकी शान्ति और मनोहरता बराबर दर्शन देरही है ।

वह पुण्यकथा शास्त्रज्ञ ब्राह्मणोंसे उच्चरित होकर उस शान्तवनमें वारंवार गुंजारने लगी, वृक्षोंके शाखापत्र मानो उस कौतूहलको पान करने लगे, पवन उन गीतोंका विस्तार करने लगा ।

हजारों वर्षसे यह पुण्यकथा भारतवर्षमें ध्वनित और प्रतिध्वनित होरही है । पश्चिमोत्तरमें, सुन्दर बंगालदेशमें, कैलासपर्वतसे घिरेहुये बर्फसे छाये काश्मीर देशमें, वीरमाता राजस्थान और महाराष्ट्र भूमिमें, समुद्रके न्हवाये कर्णाटक और द्राविड देशमें सहस्रों वर्षसे यह ध्वनि गुंजाररही है । हमारी कामना यही है कि, यह ध्वनि इसी प्रकार होती रहै । गौरवके दिनोंमें इन्हीं अनन्त गीतोंने हमारे पुरुषोंको उत्साहित किया था । अयोध्या, मिथिला, हस्तिनापुर, मगध, उज्जयिनी, दिल्ली आदि देशोंको इन्हीं गीतोंने वीरतासे पूर्ण करदिया था । कुसमयमें इन गीतोंको गायकर समरसिंह, संग्रामसिंह, और प्रतापसिंहने हृदयका रुधिर दान किया था । इसी महामंत्रसे मोहित होकर महाराज शिवाजी फिर प्राचीनकालका गौरव प्राप्त करना चाहते हैं । परमेश्वरसे यही प्रार्थना करी जाती है कि, क्षीण हीन दुर्बल आर्यसन्तानका आशा भरोसा रुदनकरनेका स्थान, यह प्राचीन संगीत,-विपद, शोक और दुर्बलतामें हमलोग न भूलें । प्राण रहनेतक हृदयरूपी सितारके साथ बराबर इन गीतोंकी झनकार गुंजारती रहै ! !

नई रोशनी वाले पाठकगण ! आपने इलियड (Eliad) पढा है, दान्ते (Dantai) शेक्सपिअर (Shakespeare) मिल्टन (Milton) याद किया है, शादी और फिरदोशीको कंठ करडाला है; अब बतलाइये कि कौनसी कथा हृदयमें सरसभावको पूर्ण करदेती है ! कौनसी कथासे हृदय अधिक मथा जाता है, कौनसी कथासे हृदय उत्साहित व मोहित होताहै? भीष्म पितामहकी अपूर्व वीरता दु:खिनी सीताकी अपूर्व पतिभक्ति प्रत्येक हिन्दू संतानकी नस २ में गुँथरही है ! हे परमेश्वर ! इस कथाको हम कभी नहीं भूलें ! !

पाठकगण! सब मिलकर एकवार इस प्राचीन गौरवकी कथाको गाओ। राजपूत और महाराष्ट्री वीरोंकी वीरताको यादकरो। हमने इसी आशयसे इस तुच्छ उपन्यासका आरंभ किया है। यदि इन कथाओंके याद दिलानेमें, हम कृतकार्य हुए तो परिश्रम सफल है—नहीं आप पुस्तकको दूर फेंकदें, हम इसका कुछ बुरा न मानेंगे।

शान्त काननमें पवित्र पुराण कथाका संगीत, रघुनाथके तप्ते माथेपर जल वर्षाता हुआ हृदयको शान्त करनेलगा। धीरे २ अभागेका पागलपन घटतागया। रघुनाथ उस महान कथाको सुनकर अपने शोक दुःखको भूलगये। अपना महान आशय और वीरता तुच्छ जान पडी। सहज २ से चिन्ता हरणकारी निद्राने इस वीरको अपनी गोदीमें लेलिया। रघुनाथका थका मांदा शरीर वृक्षके नीचे झुकगया।

रघुनाथ स्वप्न देखने लगे। आज कैसे स्वप्न देखते हैं आज क्या गौरवके स्वप्न देखते हैं? क्या दिन २ पदोन्नति, विक्रम और यश फैलनेके स्वप्न देखते हैं-? हाय! रघुनाथकी जिन्दगीके वह स्वप्न जाते रहे, वह चिन्ता व्यतीत होगई, इस सूर्यकिरण पूर्ण संसारकी एक किरण लोप होगई।

फिर क्या संग्रामभूमिके स्वप्न देखते हैं, शत्रुका नाश, दुर्गजय या वीरोचित कार्यके स्वप्न देखते हैं? नहीं! नहीं!! रघुनाथका वह उत्साह अब कहां इस कारण उनका यह स्वप्नभी लोप होगया।

युवा अवस्थाके सब कार्य एक २ करके लोप होगये। आशारूपी दीपक निर्वाण होगया। इस अँधियारी रात्रिमें पिछली सारी बातें रघुनाथको याद आने लगीं! शोकसे हृदयके ढकजानेपर आशा सुख और प्रतिष्ठाके बिदा होजानेपर बन्धुहीन जनोंको जो बातें याद आतीं हैं, वही बातें स्वप्नमें रघुनाथको दिखलाई देती थीं। स्नेहमयी माताका स्नेहयुक्त मुख, पिताका दीर्घशरीर, रघुनाथको याद आया। मारवाड भूमिमें दूर जाकर खेलना, याद आया। बालकपनकी संगनी धीर व शान्त, प्राणके समान लक्ष्मीकी याद आई! आ!! क्या फिर कभी उस स्नेहमयी बहनके दर्शन मिलेंगे? आज वह सुखमय संसार कहां है? वह प्रफुल्ल आशा लहरी कहां है? शोकके समय, संतापके समय जिसके शान्त वचनोंसे हृदयको धीरज हो वह हृदयतुल्य सहोदरी बहन कहां है? स्वप्न देखते हुए यात्रीके नेत्रोंसे आंसू गिरनेलगे।

निद्रित रघुनाथने अपनी प्यारी बहनको याद करते २ नेत्र खोलकर क्या देखो कि, मानो लक्ष्मी सिरहाने बैठी हुई कोमल शीतलहाथ भ्राताके मस्तकपर धरकर अपने हृदयकी व्याकुलताको दूर कररही है । सहोदराके प्रेमभरे नयन मानो सहोदरके मुखकी ओर प्रेम-दृष्टिसे देखते हैं । शोक और चिन्तासे लक्ष्मीका प्रफुल्ल मुख सूखासा है । कमलदलके समान मनोहर नेत्र शोकभवन बनेहुए हैं ।

रघुनाथने फिर नेत्र बंद करलिये और आंसू गिराकर कहा । भगवान् बहुत सही ! ! अब क्यों वृथा आशादेकर हृदयको दुःख देते हो ? ।

मानो किसी कोमल हाथने रघुनाथका आंसू पोंछदिया । रघुनाथने फिर नेत्र खोले । यह स्वप्न नहीं है—रघुनाथकी प्यारीबहन लक्ष्मी उनका मस्तक गोदमें रक्खे हुए वृक्षके नीचे बैठी है !

रघुनाथका हृदय भरआया । उन्होंने लक्ष्मीके दोनों हाथ अपने तप्त हृदयपर धरकर उस प्रीतिभरे मुखकी ओर देखा; बोला कुछ नहीं गया । नेत्रोंसे अश्रुधारा वारिधाराकी भाँति बहने लगी । न सहागया तो रोते हुए बोले; "लक्ष्मी ! लक्ष्मी ! तुम्हें देखलिया, भलाहुआ ! सब सुख जाँय तो जाओ, परन्तु लक्ष्मी ! तुम इस अभागे भ्राताको न बिसारो, मैं इसके सिवाय और कुछ नहीं चाहता ।" लक्ष्मी भी शोकके वेगको रोक नहीं सकी और भइयाकी गोदीमें शिर रखकर खूब रोई ! नारायण ! इस रोनेके समान जगत्में कौनसा रत्न है ? स्वर्गमें कौनसा सुख है ? जिसको यह अभागे इस रोनेसे अधिक आरामका देनेवाला समझें ।

फिर दोनों थोड़ी देरतक चुपचाप रहे । बालकपनकी याद आने लगी । सुख लहरीके साथ शोक लहरीका मिलना हृदयमें दुरदुराने लगा । दोनोंके हृदय आँसुओंसे भीगगये ।

बहनके समान और कौन इस जगत्में स्नेहमयी है ? भ्रातृस्नेहके समान और पवित्र स्नेह कौनसा है ? पाठकगण ! जानते हो तो बताओ ? इस स्नेहका वर्णन हमसे नहीं हो सक्ता । इस कारण रघुनाथ और लक्ष्मीके स्नेहकी महिमाको आपही हृदयमें अनुभव कर लीजिये ।

बहुत देरके पीछे दोनोंका हृदय शीतल हुआ । लक्ष्मीने अपने अंचलसे रघुनाथके आंसू पोंछकर कहा । "देवी मय्याकी कृपासे आज बहुत दिनोंके पीछे तुम्हें

पाया ! भइया ! इस ठंढी हवामें पडे रहनेसे दुःख होगा चलो मन्दिरमें चलो। " दोनों उठकर मंदिरमें गये।

मंदिरमें जाय लक्ष्मी एक खम्भसे सहारा देकर बैठ गई। थकेहुए रघुनाथभी लक्ष्मीकी गोदीमें शिर धरकर लेट रहे। मधुर २ शब्दसे दोनों जने अपनी २ रामकहानी कहने लगे।

लक्ष्मीने जो कुछ बूझा रघुनाथने सारी बातोंका उत्तर दिया। रघुनाथने संक्षेपसे अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

भइयाकी दुःख कहानी सुनते२ स्नेहमयी बहिनकी आंखोंसे आंसुओंका तार लग गया। लक्ष्मी अपना दुःख सह सक्ती थी, परन्तु भइयाके दुःखको सुनकर व्याकुल होगई। लक्ष्मी शोकके वेगको रोककर विचारने लगी कि, भइयाको अपना क्या पता बताऊं ! क्योंकि चंद्ररावसे इनका वैर प्रथमसेही बढता आया है उसकी स्त्री जानकर इनको महादुःख होगा आँसू पोंछकर लक्ष्मी बोली,–

"इस देशमें आनेसे कुछ दिन पीछे एक प्रतिष्ठित क्षत्री जागीरदारसे मेरा विवाह होगया। स्त्रियें स्वामीका नाम नहीं ले सक्ती। आकाशमें उदय होनेवाले निशानाथके नामपरही मेरे स्वामीका नाम है। सुधांशुके समानही उनका प्रकाश चारोंओर फैल रहा है। लक्ष्मी उनके घरमें सुखी है उनके अनुग्रहसे मैं सदा सुखी रहती हूं। इसके सिवाय मेरी कोई अभिलाषा नहीं है। मैं यही चाहती हूं कि अपने भइयाको सुखसे देखूं।

कभी २ तुम्हारा समाचार मुझे मिलता रहता था। परन्तु तुम्हें देखनेकी इच्छा अतिप्रबल होगई थी। इस कारण प्रतिदिन देवीजीकी पूजा करने आती थी भगवती पार्वतीजीकी कृपासे आज मंदिरके निकट वृक्षके तले लेटे तुम मिलहीगये"।

इस प्रकार अपना पता बताय लक्ष्मी भ्राताके हृदयका शैल समान दुःख उखाडनेका यत्न करने लगी। लक्ष्मी दुःखिनी थी, इस कारण उसकी व्याख्या जानती थी। लक्ष्मी नारी थी, इससे दुःखमें शान्ति देना जानती थी। सहनशील होकर अपना दुःख सहन करना और शान्तिदेना और पराये दुःखका दूर करनाही स्त्रियोंका धर्म है।

अनेक प्रकारसे समझाय बुझाय भाईका मन शान्त कर बोली, "हमारा जीवनही इस प्रकारका है, सब दिन बराबर नहीं जाते, भगवानजी जो सुख देते हैं, वह तो हम भोग करते हैं, यदि एक दिनको दुःख मिले, तो क्या उस्से विमुख होजांय ? मनुष्यका जन्मही दुःखमय है, यदि हम दुःख न सहें तो कौन सहेगा ? अच्छे बुरे दिन सबकेही लिये हैं बुरे दिनोंमें भी विधाताका नाम लेकर हमें अपना शोक भूलना उचित है। पिताके घरमें एक दिन उन्होंनेही सुख दिया था, अब उन्होंनेही कष्ट दिया है, और वही दीनदयालु फिर कष्ट दूर करेंगे"।

लक्ष्मी फिर कहने लगी,—

"भइया ! निराश मतहो, ऐसे शरीर के दिन रहेगा ? भला खान पान छोडकर मनुष्य कै दिन जी सक्ता है ?"।

रघुनाथ—"जीनेकी आवश्यकताही क्या है ? जिस दिन विद्रोही कहलानेसे मेरे नाममें कलंक लगा, उसी दिन यह जीव क्यों नहीं गया ?"।

लक्ष्मी—"क्या अपनी बहनको तुम सदा दुःखहीमें रखना चाहते हो ? देखो, भइया मेरा इस जगत्में और कौन है ? पिता माता कोई नहीं। फिर क्या तुमने भी लक्ष्मीकी ममता छोड दी ? क्या विधाता इस दुःखिनीसे एकबारही फिरगया ?" लक्ष्मीके नेत्रोंसे टपटप करके आंसू गिरने लगे।

रघुनाथ लज्जितहो बहनका हाथ पकडकर बोले "लक्ष्मी ! अपने ऊपर तुम्हारे स्नेहको भलीभाँति जानता हूं,—जबतक मुझसे तुम्हें कष्ट पहुंचे तबतक विधाता मुझसे अप्रसन्न रहेगा। परन्तु बहन ! अब जीकर क्या करना हैं ?—तुम स्त्री होकर वीरका दुःख कैसे समझ सकती हो ? हमें जीवसे अपना नाम अधिक प्यारा है, मृत्युसे कलंक और अपयश सहस्रगुण कष्टदायक है। उसी कलंकसे रघुनाथका मुख काला होगया है।"

लक्ष्मी। "फिर उस कलंकके दूर करनेकी चेष्टासे विमुख क्यों हो ? महानुभाव शिवाजीके निकट जाय उनको अपनी व्यथा उचित रीतिसे समझाओ तब वे समझ बूझकर जानेंगे कि इसमें तुम्हारा कोई अपराध नहीं हैं।"

रघुनाथ चुपचाप रहे, परन्तु उनके नेत्रोंसे चिनगारियां निकलने लगीं, मुहँ लाल हो आया। बुद्धिमती लक्ष्मी जानगई कि पिताका अभिमान और दर्प पुत्रमेंभी

विद्यमान है । भइया प्राण रहते अत्याचारीसे कुछ नहीं मांगेंगे । गुणवती लक्ष्मी इस प्रकार अपने भ्राताके मनका भेद जान कहने लगी । " भइया ! क्षमा करो । हम स्त्रियें यह सब क्या जानें परन्तु यदि शिवाजीके पास नहीं जाना चाहते तो कार्य दिखाय अपने यशकी रक्षा क्यों नहीं करते ? पिता कहा करते थे कि सिपाहीके साहस और प्रभुभक्तिसे सब कार्य प्रकाशित होजाते हैं । यदि तुम्हें कोई विद्रोही जानकर संदेह करै, तो खड्ग हाथमें लेकर उस संदेहका खंडन करो । "

उत्साहसे रघुनाथके नेत्र लाल अंगारा होगये, और कहने लगे । " किस प्रकारसे ? "

लक्ष्मी । " सुनते हैं कि शिवाजी दिल्ली जांयगे वहां सहस्रों होनहार हो सक्ते हैं, दृढप्रतिज्ञावाले सिपाहीको वहां अपना कलंक मिटानेके सैकडों मार्ग मिलैंगे । मैं स्त्रीहूं और क्या बताऊं ? तुम पिताहीके समान वीर धीर हो, साहस भी तुममें वैसाही है, प्रतिज्ञा करनेसे तुम्हारी कौन अभिलाषा पूरी नहीं होगी ? "

रघुनाथ यदि सावधान होते तब जानते कि, उनकी छोटी बहनभी मानव हृदय शास्त्रसे बिलकुल अजान नहीं है, जो दवाई आज रघुनाथके हृदयमें पडी उससे मुहूर्तके बीचमें उनका शोक संताप दूर होगया, वीरका हृदय पहलेकी नाईं उत्साहसे भरगया ।

रघुनाथ थोडी देरतक चुपचाप चिन्ता करते रहे, उनके नेत्र हर्षसे खिलगये. मुखमण्डल अचानक नई प्रतिष्ठासे युक्त होगया, थोडी देर पीछे बोले;—

" लक्ष्मी ! तुम बालक तो हो परन्तु तुम्हारी बातें सुनते सुनते मेरे मनमें नवीन भाव उदित होगया । मेरा जीवन अब वृथा- अथवा उत्साहशून्य नहीं है । भगवान् सहाय करो, यह बात अभी फैल जायगी कि रघुनाथ न विद्रोही है, न भीरु है । परन्तु तुम बालक हो मेरे हृदयकी बातको क्या समझोगी ? "

लक्ष्मी हँसकर मनही मन कहने लगी ' मैंने ही रोग पहचाना मैंनेही दवाई पिलाई, तौभी मैं कुछ नहीं समझती ? फिर भ्रातासे बोली, " भइया ! तुम्हारा उत्साह देखकर मेरा हृदय जुडाय गया । तुम्हारा महान् आशय मैं कैसे समझ सकती

हूं ? परन्तु जो हो, जबतक तुम्हारी यह बहन जीती रहेगी, तुम्हारे मनोरथ पूरे होनेकी जगदीश्वरसे प्रार्थना करेगी।"

रघुनाथ। "और लक्ष्मी! मैंभी जबतक जिवूंगा तुम्हारा स्नेह तुम्हारा प्रेम कभी नहीं भूलूंगा।"

फिर लक्ष्मी नीचा मुख किये धीरेसे बोली;–

"एकबात और है, परन्तु कहते डर लगता है।"

रघुनाथ। "लक्ष्मी! मेरे निकट तुम्हें कौनसी बात कहते डर लगता है? मैं तुम्हारा भ्राता हूं, भ्रातासे क्या डर?"

लक्ष्मी। "ऐसा जान पडता है कि, चन्द्ररावनामक जुमलेदारने तुम्हारा बुरा किया है।"

रघुनाथका हँसना दूर होगया, क्रोध और घिनसे दोनोंहाथ मलने लगे। कुछ कह नहीं सके।

दुःखिनी लक्ष्मी कम्पायमान वाणीसे बोली। "किसीके वध करनेकी अभिलाषा करना सज्जनोंको उचित नहीं. भइया! यह प्रतिज्ञा करो कि तुम उनका कोई बुरा तो नहीं करोगे।"

कडे स्वरसे रघुनाथ बोले–

"यदि वह मेरा सगा भइया भी हो तौ भी मैं उस कपटाचारीको क्षमा नहीं करसक्ता, मेराही खड्ग उस पापीका रुधिरपान करेगा। उस पापात्माका नाम लेकर तुम क्यों अपने मुखको कलंकित करती हो?"

लक्ष्मी स्वभावसेही स्थिर शान्त और बुद्धिमती थीं, परन्तु स्वामीकी निन्दा नहीं सहसकी। नेत्रोंमें आंसू भर कुछेक रोषसे बोली–

"मैंने भइयासे कभी कोई भीख नहीं मांगी, एक मांगी सो तुमने दी नहीं, मैं बडी पापिनी हूं, नीच हूं, अच्छा अब तुम अपनी अभागिनी बहनको जन्म भरके लिये बिदा करो।"

रघुनाथ आंखोंमें जलभर प्रीतिसहित बोले–

"लक्ष्मी! लक्ष्मी! मैंने तुम्हें कब कोई कडी बात कही है? चन्द्ररावको मैं क्षमा नहीं करसक्ता तुम यह भिक्षा क्यों चाहती हो?

लक्ष्मी रोते रोते बोली "यह जाननेके लिये कि तुम बहनपर कितने स्नेह करते हो ? सो भइया ! जानलिया अब बिदादो, मैं और कुछ नहीं चाहती ।"

रघुनाथ विकलहो कुछ देर चिन्ताकर बोले "लक्ष्मी ! मैं नहीं जानता कि तुम चंद्ररावको क्यों बचाना चाहती हो ? यह ध्यान कभी मनमें भी नहीं आया था कि मैं उसको क्षमा करूंगा; किन्तु "मोरे नहिं अदेय कछु तोरे" इस ईशानी मंदिरमें प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं चन्द्ररावका कुछ अनभल नहीं करूंगा मैंने उसके दोष क्षमा किये जगदीश्वर उसे क्षमा करे ।

लक्ष्मी हर्ष सहित बोली "जगदीश्वर उन्हें क्षमा करे ।" पूर्वदिशामें प्रभातकी उजली छटा दृष्टि आई । तब लक्ष्मीने बहुत रोकर भ्रातासे बिदा ली और कहा- "मेरे संग जो घरके और आदमी मंदिरमें आये हैं, वह अबतक सोरहे हैं यदि अब न जाऊंगी तो सब भेद खुल जायगा । इसकारण अब जाने दो, परमेश्वर तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करे ।"

"परमेश्वर तुम्हें सुखी रक्खे" यह कह स्नेहसहित लक्ष्मीसे बिदाहो रघुनाथ भी मंदिरसे बाहर आये । पाठक गण ! लक्ष्मीसे तो बिदा लेली, अब चलो हत-भागिनी सरयूसे भी बिदा लेआवें ।

वीसवाँ परिच्छेद ।

सीतापति गोसाई ।

दोहा-जाहु युद्धमें प्राणपति, करहु विजय अरि झारि ।
वेग आय मिलियो सजन, करि हैं कृपा खरारि ॥

इस बातके जाननेको हमारे पाठकगण अवश्य अति अभिलाषी होंगे कि, जब रुद्रमण्डल दुर्गपर चढाई हुई थी, तब रघुनाथको वहां जानेमें विलम्ब क्यों हुआ था । रघुनाथ युद्धमें जानेसे पहले एकबार सरयूको देखने आये थे, आंसूभरके सरयूने रघुनाथको बिदा किया था । उसी दिनसे सरयूका नेत्ररत्न और जीवन धन खोगया ।

दो एक दिन बीते, रघुनाथका कुछ समाचार न आया। आशा कानमें आकर कहने लगी "रघुनाथने युद्धमें जय पाई है, वह सन्मानित होकर हर्ष सहित सरयूके पास आवेंगे।" जैसेही किसी अश्वके आनेका शब्द होता, सरयू बडी लालसासे खिडकीसे देखती और फिर धीरे धीरे बैठ जाती थी। घरमें किसीकी पगाहट होती कि सरयू चमक उठती और फिर चुपकेसे बैठ जाती थी।

दिन गया, रात आई, फिर प्रभात हुआ, एक दिन, दो दिन, तीन दिन व्यतीत हुए परन्तु रघुनाथ अबतक नहीं आये। सरयू उनका मार्ग देखते २ थककर चिन्ताकुल हुई। मुख सूख गया, पल पल नेत्रोंमें नीर आने लगा, किन्तु रघुनाथ नहीं आये।

जो चिन्ता सरयूको थी, उसकी व्यथा प्रकाश करने लायक नहीं; बालिका किससे कहे? चुपचाप शोच विचार खिडकीके धोरे खडी होजाती, अथवा संध्या समय छतपर खडी होकर उस अन्धकार परिपूर्ण मैदानकी ओर निहारती थी। क्या वह ऊंची देह दृष्टि आती है? क्या सरयूके हृदय धन युद्धके उल्लाससे सरयूको भूल गये? सहसा सरयूके नेत्रोंसे होकर सूखे कपोलोंपर आंसू गिरने लगे।

अकस्मात् वज्रके समान संवाद आया कि रघुनाथ विद्रोही हैं, विद्रोहाचरण करनेसे वह शिवाजीकी सेनासे निकाले गये। सरयू इस बातका आशय न समझ कर चकितसी रहगई! उसका माथा ठनका, मुँह लाल हो आया, शरीर कांपने लगा, नेत्रोंसे अग्निकण निकलने लगे। दासीसे कहा "क्या कहा कि, रघुनाथ विद्रोही हैं? रघुनाथ मुसलमानोंसे मिलगये? अरी! तुझसे क्या कहूं, तू मूर्ख है, सामनेसे हटजा?" शान्त धीर स्वभाव सरयूका वह क्रोध देख दासी विस्मित होकर चली गई।

फिर युद्धसे बहुत सिपाही आये और सबने यही कहा "रघुनाथ विद्रोही है" सरयूकी सखियोंने बार बार सरयूसे यही कहा। वृद्ध जनार्दन आंसू भरकर बोले, "कौन जानता था कि उस सुन्दर उदार मूर्ति बालकके मनमें ऐसी क्रूरता थी! सरयूने सब सुना परन्तु कोई उत्तर न दिया, रघुनाथकी वीरतामें और सत्य वृत्तामें जो सरयूका स्थिर और अटल विश्वास था वह एक पलकोभी नहीं टला, वह किसीसे कुछ न बोली, उसका मुखमण्डल लाल हुआ, नेत्र जलशून्य होगये।

इस प्रकार कई दिन बीत गये, एक दिन सन्ध्यासमय सरयू सरोवरके तीर पर गई और हाथ पैर धोकर धीरे धीरे चिन्ता करती हुई घरको आने लगी ।

सहसा उस घोर अँधियारे मार्गमें जटाजूटधारी दीर्घशरीरवाले एक गोसाईको आते हुए देखा सरयू विस्मित होकर खडी होगई, ज्यों ज्यों गोस्वामीकी ओर देखने लगी त्यों त्यों उसका तेजयुक्त शरीर निहार मनमें भक्तिका संचार होता था ।

थोडी देर पीछे कुछ शोच विचारकर बोली—"महाराज ! एक निःसहाय स्त्री आपका आश्रय लेनेकी वांछा करके आई है, आप उसे क्षमा करें" ।

गोसांई सरयूकी ओर देख और उसको स्थिरभावमें निहार गम्भीर स्वरसे बोले—

" अबला ! मैं तेरा वृत्तान्त जानता हूं, क्या किसी वीर युवाका वृत्तान्त पूँछने आई है ? "

सरयू भक्तिभावसे बोली—

" भगवन् ! आप बडे ज्योतिषी हैं यदि अनुग्रह कर और कुछ कहिये तो बडी कृपा होगी "

गोसांई—" सब जगत् उसको विद्रोही जानता है " ।

सरयू—" आप सब जानते हैं, क्या रघुनाथ सचमुच विद्रोही है ? " ।

गोसांई—" महाराज शिवाजीने उसको विद्रोही जानकर निकाल दिया है " ।

सरयूका मुख लाल हुआ, नेत्रभी अरुण हुए उसने कहा " चाहे आपकी तपस्या झूंठी हो, परन्तु रघुनाथ विद्रोही नहीं हो सक्ते । गोसांईजी ! मैं बिदा होती हूं " ।

गोसांई नेत्रोंमें जल भरकर बोले—" मैं कुछ और कहना चाहता हूं "

सरयू—" जो आज्ञा, मैं ठहरी हूं "

गोसांई—" मनुष्यके हृदयका वृत्तान्त ज्योतिषसे नहीं जाना जा सक्ता, परन्तु इस बातके जाननेका एक और भी उपाय है कि उस वीरके हृदयमें क्या था ? "

" शास्त्र लिखता है कि प्रेमिनीका हृदय प्रेमीके हृदयका दर्पण है, यदि रघुनाथकी कोई सच्ची प्रियतमा हो तो उसके समीप जायकर उनके मनकी बात बूझ उसके हृदयमें जैसा भाव होगा वह अवश्यही ठीक है " ।

गोसांई सरयूको तीक्ष्णदृष्टिसे देखते रहे।

सरयू आकाशकी ओर देखकर बोली " भगवन्! दीनबंधु! तुम्हैं धन्यवाद करती हूं, तुमने अब मेरे हृदयको शान्ति दी! जो उस महावीर सुजन योद्धाकी प्रियतमा हुआ चाहती है, वह जबतक जीती रहेगी, उसका विश्वास रघुनाथके सत्यव्रती होनेमें कभी नहीं डिगेगा। हृदयेश! अन्यायसे जगत् तुम्हारी निन्दा करे तो करो, परन्तु एक दुखिया आनंदमें, विपद्में सदा तुम्हारा गुण गावेगी।" सरयूके नेत्रोंमें मुक्ताफल आये, गोसाँईने मुँह फेर लिया—उनके भी नेत्र सूखे नहीं हैं तपस्वीका शान्त हृदय उमड रहा है।

गोसांई बडे कष्टसे आंसू रोककर बोले।

"सुंदरी! बातोंसे तो यही जान पडता है कि, तुम्हीं उस युवाकी प्रेमिनी है। जो रघुनाथसे कहना हो सो मुझसे कहदे? क्योंकि मैं देश देश फिरा करता हूं, इस कारण उनसे मिलना कुछ असंभव नहीं है।

गोसांईके सन्मुख सरयूने रघुनाथको हृदयेश कहा था, इस बातको यादकर अब सरयू कुछेक लज्जित हुई, परन्तु अब उस भावको रोककर धीरे धीरे बोली।

" महाराज! क्या कहीं इन दिनों वह आपसे मिले थे?"

गोसांई—" कलरात ईशानी देवीके मंदिरमें मिलेथे "।

सरयू—" यह आप जानते हैं कि अब उन्होंने क्या करनेकी प्रतिज्ञा की है?"

गोसांई—"अपने बाहुबलसे, अपने कार्योंसे, इस अन्यायके कलंकको दूर करेंगे अथवा उसी चेष्टामें प्राण देदेंगे?"

सरयू—" वीरकी प्रतिज्ञा धन्य है! हे महाराज! यदि वह आपको मिलें तो यह कह दीजिये कि, राजपूतबाला सरयू जीवसे यशको बडा समझती है और यह भी कह दीजिये कि, सरयू जबतक रहेगी, रघुनाथको कलंकशून्य वीर जान रघुनाथकीही याद और रघुनाथकेही नामकी माला जपकर उमरके दिन बितावेगी भगवान् अवश्य उनका यत्न सफल करेंगे।"

गोसांई—" भगवान् ऐसाही करे, परन्तु हे सुभद्रे! सत्यकी भी सदा जय नहीं होती विशेष करके रघुनाथने जिस कार्यमें हाथ डाला है, उसमें उनके प्राणका भी संशय है।"

सरयूके आंखोंमें पानी आया, परन्तु वह अश्रुजल पोंछकर बोली;—

" राजपूतोंका यही धर्म है ? आप उनसे कह दीजिये कि, अपने कार्यके साधनेमें हृदयेशका प्राणभी जाय तो उनकी दासी भी हर्षसहित उनका गुण गाते गाते अपने प्राण त्याग देगी। "

दोनों कुछ देरतक मौन रहे, गोसांईमें बोलनेकी सामर्थ्य नहीं थी क्षणेकपर सरयूने बूझा " रघुनाथने आपसे कुछ और भी कहा था ? "

गोसांई चिन्ताकर दुःख सहित बोले—" आपसे बूझा है कि जिसको सब संसार विद्रोही समझकर घृणा करता है, क्या आप अपने हृदयमें उसको स्थान देंगी ? जगत् जिसका नाम लेना भी बुरा समझेगा, क्या आप मनही मनमें उसका नामस्मरण करती रहेंगी ? क्या विश्व संसारमें एक जन भी विद्रोही रघुनाथको निर्दोषी जानेगा ? और घृणा करने योग्य निरादर पाये निकाले हुये रघुनाथको इस शीतल हृदयमें स्थान देगा ? " संन्यासीका कंठ रुकगया।

सरयू बोली " महाराज ! इस बातको आप क्या बूझते हैं सरयू राजपूतबाला अविश्वासिनी नहीं है। "

गोसांई—"जगदीश्वर ! तो अब उसके हृदयमें दुःख नहीं, लोग बुरा कहैं तो कहैं; पर वे जानेंगे कि, एकजन अब भी रघुनाथका विश्वास करता है।"

अब मुझे जाने दो, मुझसे यह वार्त्ता सुन रघुनाथके हृदयमें शान्ति हो जायगी।

सजल नयन हो सरयू बोली—"और भी कहियो, उनके महान् आशयको मैं नहीं रोका चाहती, वह खड्ग हाथमें लेकर अपना यशमार्ग निष्कंटक करें, जो जगत्का कर्त्ता धर्त्ता है वह उनकी सहाय करेगा। और यदि कार्य सिद्ध करनेमें उनका कोई अमंगल होजाय तो जानलें कि, उनकी चिरविश्वासनी सरयू भी इस नाशवान् देहको त्याग देगी "

दोनों चुपचाप खडे रहे सरयूने कहा महाराज ! मेरे हृदयको बडी शान्ति दी आपका नाम क्या है ?

गोस्वामी चिन्ता करके बोले "मुझे सीतापति गोसांई कहते हैं। "

संसारमें रात्रि अंधकार करने लगी ! उस अंधकारमें एक गोसांई इकले रायगढ दुर्गके सामनेको चले जाते हैं।

इक्कीसवाँ परिच्छेद।

रायगढ दुर्ग।

धिक् २ तोहिं निलज हेदेवा। त्यागि विभव करिहौ रिपुसेवा॥

पूर्वोक्त घटनाके कई दिन पीछे शिवाजीने अपनी राजधानी रायगढमें आधीरातके समय एक सभा एकत्र की है, शिवाजीके प्रधान सेनापति, मंत्री, कर्मचारी और दूरदर्शी विचक्षण पुरोहित शास्त्रवेत्ता ब्राह्मण, सभामें उपस्थित हुए हैं, पराक्रमी योद्धा, विचारशील मंत्री और अतिवृद्ध बहुदर्शी न्यायशास्त्रियोंसे सभा सुशोभित होरही है; युद्धमें बुद्धिचालनमें और विद्याबलमें यह शिवाजीकी सहायता करते आये हैं; शिवाजीके समान इनके हृदय भी स्वदेशानुरागसे पूर्ण थे; हिन्दुओंका गौरव प्राप्त करनेकी चेष्टासे यह लोग दिन दिन मास मास वर्ष २ तक अनिद्रित रहते थे। परन्तु अब वह चेष्टा कहां? वह उत्साह कहां है? सभास्थल नीरव, शिवाजी मौन, आज महाराष्ट्री वीरगण, महाराष्ट्रीय गौरव लक्ष्मीसे विदा लेनेको एकत्र हुए हैं।

कुछ देर पीछे शिवाजी मोरेश्वरसे बोले—

"पेशवाजी! आपकी यह सम्मति है कि, सम्राट्की आधीनता स्वकिार कर उनके जागीरदार होकर रहें। क्या महाराष्ट्री गौरव निबिड अंधकारमें डूबेगा?"

मोरेश्वर—"ब्रह्माके लिखे अंक कौन मेटसक्ता है? जहाँतक मनुष्यकी सम्मति है वहाँतक आपने सब कार्य किया।"

फिर सब सभा चुप चाप हुई।

शिवाजी बोले—

"स्वर्णदेव! जब आपने मेरी आज्ञासे यह सुन्दर और श्रेष्ठ रायगढ दुर्ग निर्माण किया था, तब तो यह राजाकी राजधानी बनाया गया था, अथवा साधारण जागीरदारके रहनेका स्थान नियत किया गया था?"

आवागी स्वर्णदेवने विषादित होकर उत्तर दिया—

वीरश्रेष्ठ ! जगज्जननी भवानीकी आज्ञासे एकदिन स्वाधीनताकी आकांक्षा की थी; उनकीही आज्ञासे उस आकांक्षाको त्यागते हैं फिर इसमें विषाद करना वृथा है । रायगढ बनानेके समय किसको मालूम था कि, हिन्दू सेनापति जयसिंह संग्रामस्थलमें उपस्थित होंगे ? स्वयं जगज्जननी ईशानीने हिन्दू सेनापतिसे समर करनेको निवारण किया है ?"

अन्नजीदत्त कहनेलगे, "महाराज ! हम लोगोंने प्रथमही दिल्लीश्वरकी आधीनता स्वीकारकर राजा जयसिंहसे संधि स्थापन की है, अब उस दबीहुई बातको उठानेसे लाभ क्या ? जो होना था सो होगया, अब तो इसका परामर्श कीजिये कि, आपका दिल्ली जाना उचित है या नहीं ?"

शिवाजी बोले, "अन्नजी ! आपका कहना सत्य है, परन्तु जो आशा, जो उत्साह, जो चेष्टा, बहुत दिनसे हृदयमें स्थान पाये हुए है, वह सहजसे नहीं उखड सक्ती ।" फिर कुछ चिन्ताकर कहा ।

"प्रियमित्र तानाजी मालुसरे । चांदनीमें जो यह ऊंचे पहाड दृष्टि आते हैं उनकी चोटियोंपर चढते हुए, खड्डोंमें फिरते हुए, हृदयमें स्वप्नकी नाईं कैसे भाव उदय होते थे; कुछ याद है ? फिर महाराष्ट्र देश स्वाधीन होगा, भारतवर्ष स्वाधीन होगा, युधिष्ठिर व रामचंद्रकी नाईं ससागरा पृथ्वीके अधिपति हिमालयसे लेकर सागर कूलतक सम्पूर्ण देशका शासन करेंगे ? ईशानी ! यदि यह आशा अलीक और स्वप्नमात्र है तो क्यों ऐसे स्वप्नोंसे बालकोंका हृदय चंचल किया था ?"

इस वचनको सुनकर सब सभासदोंका हृदय विदीर्ण होगया, सब चुप चाप रहे पत्तातक नहीं हिलता–उस सभागृहके कोनेमें एक गंभीर स्वर सुनाई आया, "ईशानी माता धोखा नहीं करेंगी; राजन् ! इन बलवान् भुजाओंसे खड्ग पकडिये; परिश्रम करके उन्नत मार्गमें चलिये,–स्वप्न अवश्य सफल होगा ।"

शिवाजीने चकित होकर देखा कि, जटाजूट धारी अंगपर विभूति मले नवीन गोस्वामी सीतापति खडे हैं ।

शिवाजीके नेत्र उत्साहसे फिर चमकने लगे और बोले, "गोसांईजी ! तुम बाल्यकालके उत्साहसे फिर हृदयको उत्साहित करते हो, फिर हमें बालकपनकी बातें याद आती हैं । तात, दादोजी कोंडदेवने मरणकालके समय निकट बुलाकर

हमसे कहा था, वत्स ! तुम जो चेष्टा करते हो उस्से बडी कोई चेष्टा नहीं, इस उन्नत मार्गका अनुसरणकर देशकी स्वाधीनता साधनकर, ब्राह्मण गोवत्सादि और कृषकोंकी रक्षाकर देवालय कलुषित कारियोंको दंड देना, जो माई श्रीईशानीजीने तुम्हें दिखाया है उसका ही अवलम्बन करो आज बीस वर्ष पीछे भी दादाजीका वह गम्भीरस्वर मेरे कानोंमें ध्वनित हो रहा है, क्या दादाजीने यह वचन वृथाही कहा था " ?

फिर वह गोस्वामी उसी गंभीर स्वरसे बोले,—"दादोजी कोंडदेवने वृथा वाक्य नहीं कहा ऊंचे मार्गमें चलनेसे अवश्यही अच्छा फल मिलैगा,—मार्गके बीचमेंही यदि हम आशाको छोडकर निराश हो रहजांय तो यह दादोजी कोंडदेवकी प्रवंचना है या हमारा कायरपन ? "

" कायरपन " शब्दके सुनतेही सभामें कुलाहल होने लगा,—वीरोंके खड्ग म्यानमें झनझनाने लगे, चन्द्रराव जुमलेदारने क्रोधित हो अतिजोरसे सीतापति गोस्वामीका गला पकड लिया, सीतापति धीर और भयशून्य रहे,—इन्होंने धीरे २ अपने वज्रतुल्य हाथोंसे चन्द्ररावकी भुजा अलग कर पतंगवत् उसको दूर फेंक दिया; विस्मित होकर सबने जाना कि, गोसांईका समस्त जीवन केवल पूजा पाठहीमें नहीं व्यतीत हुआ है।

गोसांई फिर गंभीर स्वरसे बोले—

" राजन् ! गोसांईकी वाचालता क्षमा कीजिये; यदि कोई अन्याय वार्त्ता मैंने कही हो तो क्षमा कीजिये; किन्तु मेरा उपदेश सत्य है या झूंठ यह आप अपने वीरहृदयसे पूँछलीजिये, जिसने जागीरदारकी पदवीसे राजपदवी ग्रहण की ? जिसने खड्ग हाथमें ले अनेक विपद संकटसे स्वाधीनताका मार्ग साफ किया, जिसने पर्वतोंमें, गुफाओंमें, ग्रामोंमें, वनोंमें, वीरताके चिह्न बनाये हैं; वह क्या उस वीरताको भूलकर अपनी स्वाधीनताको जलांजलि देगा ? "

चारों ओरसे बाल दिवाकरकी नांई जो हिन्दू राजाका तेज अंधकारको भेदन करता उदय होरहा है,—वह सूर्य क्या अकालमें अस्त हो जायगा ? राजन् ! जिस हिन्दू गौरव लक्ष्मीने आपको वरण किया है क्या आप इच्छापूर्वक उसे त्याग करेंगे मैं केवल धर्मव्यवसाई हूं मुझे परामर्श देनेका अधिकार नहीं इस कारण स्वयं आपही विचार देखिये। "

सब सभासद् मौन और शिवाजी भी मौन रहे परन्तु उनके नेत्र अंगारोंसे जलने लगे । शिवाजी गोसाँईकी ओर दृष्टिकर बोले स्वामिन् ! थोडेही दिनोंसे मेरी आपकी जान पहँचान हुई है, मैं नहीं जानता कि, आप देवता हैं या मनुष्य परन्तु आपकी बात देववाणीसे भी मीठी होकर मेरे हृदयमें गंभीरतासे अंकित होती है । मैं एकबात आपसे पूँछताहूं, हमारे पास ऐसी सेना कहां है कि, जो अतुल प्रतापशालिनी राजपूतोंकी अनगिन्त सेनासे युद्ध करै । "

सीतापति । " निःसन्देह राजपूत वीराग्रगण्य हैं, परन्तु महाराष्ट्री भी दुर्बल हाथसे तलवार नहीं पकडते हैं, जयसिंह रणपंडित हैं, तो शिवाजीने भी क्षत्री वंशमें जन्म ग्रहण किया है । पराजयकी शंका करनेसेही पराजय होती है । पुरुषसिंह ! विपद्को तुच्छ जान भाग्यका आशा भरोसा छोड अपना कार्य साधन कीजिये; भारतमें ऐसा हिन्दू नहीं है जो आपका यश न गावैं; आकाशमें ऐसा देवता नहीं है जो आपकी सहायता न करे । " सभा फिर स्तंभित हुई ।

शिवाजी--" यह माना, परन्तु हिन्दूके खड्गसे हिन्दूका रुधिर बहना क्या मंगलकी बात है ? "

सीतापति--" ना-परन्तु उस पापसे पापी कौन हुआ ? जो स्वजातिके अर्थ, स्वधर्मके अर्थ युद्ध करै वह; अथवा जो मुसलमानका धन ग्रहणकर स्वजातिसे वैरभाव करै वह ? "

शिवाजी मौन होकर चिन्ता करने लगे; कौन कहसक्ता है कि, उनके विशाल हृदयको कितने प्रकारकी चिन्ता लहरी मथित करती हैं ? एकघडी उपरान्त मस्तक उठा गंभीर स्वरसे बोले,--

" सीतापति ! अब जाना कि महाराष्ट्रदेश अभी वीरशून्य नहीं है, और न अभी यह पराधीन होगा; फिर युद्ध होगा, उस युद्धके दिन, मैं आपसाही अधिक विचक्षण मंत्री, वा साहसी सहयोगी चाहता हूं । परन्तु वह दिन अभी दूर हैं । मैं पराजय अथवा स्वधर्मियोंके नाशकी आशंका नहीं करता अब जिस कारणसे मैं युद्धसे विमुख हुआ हूं वह श्रवण कीजिये ।

जिस महाव्रतको धारण किया है, उसके साधनार्थ कितने षड्यंत्र कितने गुप्त उपाय अवलम्बन किये, वह आपसे छिपे नहीं हैं. कितनी हत्या की कितनी

संधियें तोडी, कितने नीच कार्योंने शिवाजीका नाम कलंकित किया ? देवादिदेव महादेव जानते हैं कि, यह कार्य मैंने अपने लाभार्थ नहीं किये थे, मेरा उद्देश तो केवल यही था कि हिन्दू गौरव फिर प्रकाशित हो।"

"अब हिन्दू धर्मके अवलम्बनस्वरूप, हिन्दू प्रतापके प्रतिमूर्तिस्वरूप, महाराज जयसिंहसे संधि हुई है, इस संधिका खंडन शिवाजी नहीं कर सक्ता, विधर्मियोंसे कपटाचरण करनेके पापको भगवान् क्षमा करैं, परन्तु जीवन रहते महानुभाव राजपूतोंसे शिवाजी कपटाचरण नहीं करैगा"।

"धर्मात्माने एक दिन मुझसे कहा था कि, जब सत्यपालनसे सनातनधर्मकी रक्षा न हुई तो क्या सत्यके छोडनेसे होगी ?" यह बात मैं अभी नहीं भूलाहूं।

"सीतापति ! यदि औरंगजेब संधिको लंघन करै तो मैं आपका परामर्श ग्रहण करूंगा फिर शिवाजीका खड्ग सहजसे म्यानमें नहीं होगा परन्तु जयसिंहसे जो संधि हुई है उसके तोडनेमें शिवाजी असमर्थ है"।

सब सभासद मौन रह गये। क्षणभरके उपरान्त अन्ताजी बोले—"महाराज ! क्या आपने दिल्ली जाना स्थिर कर लिया ?"।

शिवाजी—"हाँ, मैं जयसिंहको वचन दे चुका हूं"।

अन्ताजी—"राजेन्द्र ! आप औरंगजेबकी चतुरता जान बूझकर उसकी बातका विश्वास करैंगे ? उसने आपको किसकारण बुलाया है, यह आप नहीं जानते हैं?"

शिवाजी—"अन्ताजी ! राजा जयसिंहने मुझे पूरा विश्वास दिलाया है कि दिल्ली जानेसे मेरा कोई बुरा नहीं होगा"।

अन्ताजी—"यदि औरंगजेब विश्वासघातकर आपको बंदी अथवा वध करनेको तैयार हो तब जयसिंह किसप्रकार आपकी रक्षा करेंगे ?"।

शिवाजी—"संधि लांघनेका फल उसको अवश्य मिलैगा, दत्तजी ! महाराष्ट्रभूमि वीरप्रसविनी है, औरंगजेबका ऐसा आचरण देखतेही महाराष्ट्र देशमें जो युद्धकी आग सुलग उठैगी, वह समुद्रके जलसे भी बुझनेवाली नहीं, औरंगजेबभी दिल्लीके समस्त राज्यसहित उसमें भस्म होजायगा। क्योंकि पापका फल निश्चयही फलता है"

शिवाजीको दृढप्रतिज्ञ देखकर फिर किसीने कुछ न कहा फिर कुछ देरमें शिवाजी बोले—

"पेशवाजी मोरेश्वर ! आबाजी स्वर्ण देव ! अन्ताजीदत्त ! एक बात और है कि आपके समान सगे और मित्र मेरे बहुत थोडे हैं । आपसे कार्यकुशल सावधान पंडित महाराष्ट्र देशमें विरलेही हैं । मेरे न रहनेपर आप तीनजन महाराष्ट्र देशका शासन कीजिये मैं यह आज्ञा दे जाऊंगा कि, मेरी आज्ञाके समान आपकी आज्ञाका भी पालन हो ।"

मोरेश्वर स्वर्ण देव और तानाजीने शासनभार ग्रहण किया । तब तानाजी मालुसरे बोले, "नरनाथ ! हमारी एक प्रार्थना है; हमलोग बालकपनसे आपके साथ रहे हैं, एक पलको संग नहीं छोडा, अब अनुमति हो तो आपके साथ दिल्ली चलें ।"

शिवाजी नेत्रोंमें जल भरकर बोले । 'मालुसरे ! ऐसी क्या वस्तु है जो मैं आपको न दूं, आपकी इच्छा पूर्ण होगी ।"

क्षणभर पीछे सीतापति गोस्वामीने कहा । "राजेन्द्र ! मुझे विदा दीजिये मैं व्रतसाधन करनेको अनेक तीर्थोंमें जाऊंगा अब ईश्वरसे यही प्रार्थना है कि आप कुशल रहैं ।"

शिवाजी–"नवीन गोसांईजी ! कुशलसे तीर्थ यात्रा कीजिये युद्धके समय फिर आपको याद करूंगा; आपसे अधिक वीर देखनेकी अभिलाषा मुझे नहीं है । इतनी अल्पवयसमें इतना तेज, साहस और वीरता मैंने किसीमें नहीं देखी ।"

फिर एक दीर्घश्वास त्याग दबे स्वरसे बोले–

"केवल एक जनको मैं जानता हूं ।"

सभा भंगहुई । शिवाजी शयनागारमें जाय बहुत देरतक चिन्ता करते रहे । नवीन गोसांईके उत्साही वचन फिर २ कर हृदयमें याद आने लगे । फिर सोगये, निद्रामें भी वही वीरवाक्य श्रवण किये, वही वीर आकार देखने लगे । परन्तु स्वप्नमें भी ठीक दृष्टि नहीं आता, अवस्था और रूपका परिवर्तन हो जाता है; शिवाजी स्वप्नमें वही उत्तेजन वाक्य श्रवण करने लगे परन्तु नवीन गोस्वामी के स्थानमें रघुनाथ हवालदारको यह वचन कहते सुना ।

बाईसवाँ परिच्छेद ।

पृथ्वीराजका दुर्ग ।

"दातासों दिलीप मान्धाता सों महीप ऐसे,
जाके गुण द्वीप द्वीप अजहूंलो छाये हैं ।
बलि ऐसा बलवान को भयो जहाँन बीच,
रावण समान को प्रतापी जग जाये है ॥
बानकी कलानमें सुजान द्रोण पारथसे,
जाके गुण दीनदयाल भारतमें गाये हैं ।
कैसे २ शूर रचे चातुरी विरंचिजू,
फेर चकचूरकर धूरमें मिलाये हैं ।"

दीनदयाल ।

सन् १६६६ ई० के वसंत समयमें शिवाजीने केवल ५०० सवार और एक हजार पैदल ले दिल्लीके पास पहुँच नगरके प्रायः छै कोसपर डेरे डालदिये, सेनाके मनुष्य विश्राम कर रहे हैं और शिवाजी क्या दिल्लीका आना अच्छा हुआ ? मुसलमानोंके वशमें आना क्या बीरताका कार्य हुआ ? क्या अब लौट चलना उचित है, यह विचार इधर उधर टहल रहे हैं । उनका मुख गंभीर, ललाटपर चिन्ताकी रेखा पडगई हैं, क्या विपदमें क्या युद्धमें कभी शिवाजीके मुखपर किसीने ऐसी चिन्ता नहीं देखी थी ।

केवल शिवाजीका तेजस्वी स्वभाव नौ बरसका बालक राजकुमार संभाजी अपने पिताके साथ घूमकर उनके गंभीर वदनकी ओर देखरहा है यह अपने पिताकी चिन्ताको कुछ २ समझता था ।

रघुनाथपन्त न्यायशास्त्री नामक शिवाजीका प्राचीन मंत्री पीछे २ आरहा था । इसप्रकार बहुत देरतक दोनों टहलते रहे, शिवाजीका मन बडी गहरी चिन्तामें डूबरहा था, कुछ देर पीछे उन्होंने मंत्रीसे पूँछा—

"न्यायशास्त्री ! आप पहले कभी दिल्लीमें आये थे ?"

रघुनाथ—"हां ! बालकपनमें दिल्ली नगर देखा था।"

शिवाजी—"आप जानते हैं कि सामने यह बड़ी २ दीवारें कैसी दृष्टि आतीं हैं ? और आप दुचित्त होकर केवल इसी ओर क्यों देख रहे हैं ?"

रघुनाथ—"पृथ्वीनाथ ! भारतवर्षके अंतिम सम्राट् पृथ्वीराजके किलेकी यह भीतें दृष्टि आती हैं।"

शिवाजी विस्मित हो बोले, "हाय ! यही पृथ्वीराजका दुर्ग है। इसीस्थानपर उनकी राजधानी थी। इसी स्थानपर उन्होंने एकबार गौरीको परास्त किया था। हाय न्यायशास्त्री ! उसदिन इस प्राचीरके प्रत्येक स्तंभपर रंग विरंगी पताका फहराती थीं, इस मरु भूमिके नगरमें घनघोर बाजोंका शब्द हुआ था। उसदिन हिमालयसे लेकर कावेरीतक हिन्दूवीरगण बलपूर्वक स्वाधीनताकी रक्षा करते; हिन्दू ललनागण स्वाधीनताके गीत गाती थीं। परन्तु स्वप्नके समान वह दिन बीतगये। पृथ्वीराज इस प्राचीन दुर्गके निकट अन्याय समरमें धराशायी हुए, तभीसे पूज्यमयी भारतभूमिमें अंधकार छागया ? दिनका उजाला व्यतीत होनेपर फिर दिन आता है, शीतकाल बीतनेपर नवीन फूल खिलतेहुए ऋतु-राजका समाज दृष्टिगोचर होता है; जब सभीका फिर २ आना होता है तब क्या भारतके गौरवदिन फिर नहीं आवेंगे ? एकदिन भरोसा हुआ था कि, वह गौरवके दिन फिर आवेंगे, परन्तु क्या मेरी आशा फलवती होगी ?"

शिवाजीका हृदय चिन्तासे व्याकुल होने लगा, वह एक ठंढी श्वास भरकर बोले—"देवदेव महादेव !" जब यवन लोगोंने जय पाई थी तब क्या आपके हाथका प्रचण्ड त्रिशूल निचेष्ट अथवा निद्रित था ? संहारक ! आपने किसकारण उन धर्म विनाशियोंका संहार नहीं किया ?"

रघुनाथपंत—"क्या कहूं ? जिन्होंने हमारा राज्य नष्ट किया उन्होंने हमारे देवताओंका भी अपमान करनेमें कोई कसर नहीं रक्खी, उस भयंकर पापका प्रमाण इन अक्षय पत्थरोंमें खुदाहुआ है, उस पापका बदला अभी नहीं लिया है।"

शिवाजी क्रोधसे कांपते हुए बोले, "! न्यायशास्त्री" आपकी बात मैं समझा नहीं वह प्रमाण कहां खुदा है ?"

रघुनाथपंत–" धारेही " यह कहकर एक पुराने पत्थरोंसे बनेहुए देवमंदिरमें शिवाजीको ले जाकर बोले, " चारोंओर देखिये। "

शिवाजी–"बीचमें आँगन देखता हूं, चारोंओर संगमरमरके खंभ लगे हैं " एक सुन्दर देवमंदिर था,–पुराना होनेसे टूट फूट गया है परन्तु देवताकी अपमानताके तुमने कौनसे चिह्न देखे ? "

रघुनाथ–सत्य है। इन सुन्दर खम्भोंमेंसे एक भी नहीं टूटा फूटा है, इनके ऊपरकी बनी कोई देवमूर्ति भी टूटी नहीं है, परन्तु कुछ ध्यानसे देखिये तो एक मूर्तिका भी मुखमंडल दृष्टि नहीं आता, उन धर्मविद्वेषी यवनोंने स्तंभ नहीं तोडे, किन्तु सहस्रों देवमूर्तियोंके वदन उन्होंने अपने हाथसे चूर्ण किये हैं। कारण इसका यह है कि, सदा देशी विदेशी आनकर देखेंगे कि यवनोंने हिन्दुओंकी अपमानता की थी–जबतक यह स्तम्भ विद्यमान रहेंगे तबतक हिन्दूधर्मकी अपमानता गुजारती रहेगी।

"अबतक इस पुराने मंदिरमें स्तम्भ विद्यमान हैं; अबतक प्रत्येक थंभमें कई २ देव मूर्तियें अंकित होरही हैं–परन्तु प्रत्येक मूर्तिका मुखमंडल टेढा बेढा या टूटकर प्रथम मुसलमान आक्रमणकारियोंकी भयंकर धर्मविद्वेषिताका परिचय देता है ! "

शिवाजीका स्नेह सनातनधर्मसे बहुतही बढा हुआ था, यह स्तंभ देखते २ उनके नेत्र लाल होगये, शरीर कांपने लगा। रघुनाथ न्यायशास्त्री कुछ और भी बोले।

एक ओर सनातनधर्मका अपमान दूसरी ओर यवनोंका गौरव देखो ! यह सन्मुखही ऊंचास्तंभ आकाश भेदकर उठा है, यह कुतब मीनार, कुतबुद्दीनकी विजय, हिन्दूओंकी पराजय समस्त संसारमें प्रचार करता है। यह देखिये आल्टमश प्रभृति यवन बादशाहोंकी कब्रोंके ऊपर कैसे २ सुन्दर पत्थर और हीरे लगे हैं, यह सब हिन्दू देवमंदिरोंको तोडकर लाये गये हैं। अब पराजित सब हिन्दुओंके चिह्न लोप हुए जाते हैं। मुसलमानोंके यशस्तंभ दिन २ खडे होते हैं इस कुतबमीनारपर चढकर देखिये तो मसजिदपर मसजिद, कब्रस्थानपर कब्रस्थान और दिल्लीकी ऊंची २ अटा अटारियें दृष्टि आवेंगी, किन्तु प्राचीन कालका इन्द्रपुरी तुल्य हस्तिनापुर और इन्द्रप्रस्थ अब नहीं है उन दोनों नगरोंके सब स्तंभ या एक मंदिरकाभी पता अब नहीं लगता।

शिवाजी, संभाजी और रघुनाथपंत कुतबमीनारपर चढे, ऐसा ऊंचा स्तंभ सम्पूर्ण जगत्में नहीं। शिवाजी चारोंओर देखने लगे; क्या इसी स्थानमें जगद्विख्यात हस्तिनापुर और इन्द्रप्रस्थ था, क्या यहींपर प्रातःस्मरणीय महाराज युधिष्ठिरने भाइयों सहित बास किया था, इसी स्थानमें उन पुण्यवानोंने राज्यकरके ससागरा पृथ्वीपर आर्यगौरवका विस्तार किया था, क्या महर्षि वेदव्यास इसी स्थानमें रहते थे ? भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, अर्जुन, भारतभूमिके अतुल वीरवृन्दोंने क्या इसकेही निकट अपना वीर्य प्रकाशकर अक्षय यशलाभ किया था. कुन्ती, द्रौपदी, गान्धारी, भारतकी प्रातःस्मरणीया ललनागणोंने क्या यही स्थान पवित्र किया था ? शिवाजीका कंठ रुकगया, दोनों नेत्रोंसे जलधार बहाकर वह गद्गद स्वरसे बोले,–

"हे देवतुल्य पुरुषगण ! मैं आपको प्रणाम करता हूं ! हमारी भुजा बलशून्य, हमारे नयन अंधकारसे ढके और हमारा हृदय क्षीण है ! आप इस नीलनभ मंडलसे प्रसन्न होकर प्रकाश दीजिये, बलदीजिये, जिससे हम फिर आर्यजातिका नाम ऊंचा करें; नहीं तो इसी कार्यका उद्यम करते २ मृत्यु होजाय ? और कुछ प्रार्थना नहीं हैं ? "

शिवाजी चारोंओर देखने लगे, छः सौ वर्षतक मुसलमानोंने राज्य किया है; उसका चिह्न मानो वहीं अंकित होरहा है ! असंख्य मसजिद, असंख्य कब्रस्थान अनेक बडे २ महलोंकी टूटी फूटी दिवालें उस कुतबमीनारसे नई दिल्लीतक छःकोश बराबर दृष्टि आती है । कराल काल हिन्दू मुसल्मानोंके बीचकी भिन्नताको नहीं जानता ।

जो स्थान अटा अटारियोंके आदमी सहस्रों वर्षोंमें बनाता है यह कालचक्र उनको भी निगलता चला जाता है ।

वहांसे दृष्टि फेरकर शिवाजी फिर पृथ्वीराजके किलेकी दीवारोंको देख रघुनाथसे बोले–

बाल्यकालमें कोंकण देश और महाराज पृथ्वीराजके विषयमें जो कथा सुना करता था, आज वह मानों नेत्रोंके सामने दृष्टि आरही है । ऐसा जानपडता है जैसे यह टूटा फूटा दुर्ग अटा अटारी महल दुमहलोंसे परिपूर्ण है; और इस नगरमें मानों असंख्य झंडी प्रत्येक दरवाजोंपर फहरा रही हैं । मंत्रियों सहित राजा सभामें बैठे हैं, जहांतक दृष्टि पहुँचती है, मार्ग, घाट, स्थान, मैदान और नदीके

किनारे नगरवासी उत्सव करते हैं। बाजारोंमें सौदा बिकरहा है, बागोंमें मनुष्य आनंदसे गाना गा रहे हैं, तालाबोंसे ललनागण कलशोंमें जल लिये जाती हैं; राजभवनके सामने सेना सजधजके खडी है. हाथी, घोडे, रथ, शब्द कररहे हैं; और बाजेवाले बाजा बजारहे हैं? प्रभात कालीन सूर्य इस मनोहर दृश्यके ऊपर अपनी सुन्दर किरणें वर्षारहे हैं मानों इतनेहीमें महम्मद गोरीके दूतने राजसभामें प्रवेश किया।

बहुत बातोंके उपरान्त दूत बोला " महाराज ! बादशाह महम्मदगोरी आपका आधा राजही लेकर सुलह करलेंगे, इसमें आपकी क्या राय है ? "

महानुभाव चौहान उत्तर देने लगे।

जब सूर्यनारायण आकाशमें एक दूसरे सूर्यको स्थान देदेंगे; उसी दिन पृथ्वीराज अपने राज्यमें दूसरे राजाको स्थान देगा ? राजाकी वाणी सुन सभामें " धन्य धन्य " शब्द होने लगा,—

दूतने फिर कहा, हुजूर ! आपके श्वशुरने भी महम्मद गोरीसे सुलह करली है, आप लडाईमें मुसलमान व राठौरोंकी फौज एकजगहपर देखेंगे।

पृथ्वीराजने उत्तर दिया, श्वशुरजीसे प्रणाम पूर्वक निवेदन कर देना कि, मैं स्वयं आता हूं अभी उनसे साक्षात्कर उनके चरणोंकी धूरि ग्रहण करूंगा।

चौहानसेना किलेसे बाहर निकली, युद्धमें यवन और राठौरोंकी सेना पृथ्वीराजके सन्मुखसे हवाकी फेंकी धूलके समान उडगई गौरीने घायल हो भागकर अतिकष्टसे प्राण रक्षा की।

कुछदेर पीछे एक दीर्घश्वास लेकर बोले।

" रघुनाथ ! अब हमारे वह दिन चले गये; किन्तु तथापि यहां खडे होते और अपने पूर्व पुरुषोंकी अमरकीर्ति याद करनेसे स्वप्नके समान नई २ आशायें मनमें उत्पन्न होती हैं. मेरे मनमें आताहै कि, इस विशाल कीर्तिक्षेत्रमें सदा अंधकार नहीं रहेगा; भारतके सुदिन अब भी उदय हो सकते हैं, जो भगवान् रोगीको आरोग्य, दुर्बलको बलदान करता है वही जीर्णपददलित भारत संतानको फिर उन्नतिके शिखरपर पहुँचावेगा। "

सब कुतबमीनारसे उतरकर डेरोंमें आये।

तेईसवाँ परिच्छेद ।

रामसिंह ।

"पिता पुत्र दोऊ भट भारी ।"

महाराज शिवाजी और उनके पुत्र संभाजी डेरेमें बैठे थे कि, इतनेमें एक प्रहरीने आकर निवेदन किया—

"महाराज जयसिंहके पुत्र रामसिंह एक सैनिकके साथ सम्राट्की आज्ञासे महाराजको दिल्लीमें बुलानेके अर्थ आये हैं दोनों द्वारपर खडे हैं ।

शिवाजी—"आदरपूर्वक ले आओ" ।

उग्रस्वभाव सम्भाजी बोले, "पितः क्या आपकी अगवानीके हेतु औरंगजेबने केवल दोही दूत भेजे । यह अपमान आप सहलेंगे" ।

इस औरंगजेब कृत अपमानसे शिवाजी भी मनमें क्रोधित हुए, परन्तु क्रोध प्रकाशित नहीं किया ! इतनेमें रामसिंहने प्रवेश किया राजपूत युवक पिताकी नाईं तेजस्वी वीर सत्यप्रिय और धर्मपरायण थे । तीक्ष्ण बुद्धि शिवाजी युवाका मुख देखतेही उनका उदार और निष्कपट चारित्र जान गये । तथापि औरंगजेबका कोई अविचार है या नहीं, दिल्लीमें जानेसे कोई विपद है या नहीं; बातोंही बातोंमें इन विषयोंको निकालनेकी इच्छा करने लगे । रामसिंहने अपने पिताके निकट शिवाजीके वीर्य व प्रतापकी अधिक प्रशंसा सुनी थी । इस कारण चकित होकर महाराष्ट्री वीर सिंहको देखने लगे । शिवाजीने भी उचित प्रकारसे मिलकर रामसिंहका आदरसत्कार किया । तब रामसिंहने कहा—

"प्रथम मैंने महाराजको कभी नहीं देखा था, किन्तु पिताके निकट नित्य आपकी कीर्ति सुनी है, आज आपके समान देशहितैषी स्वधर्मपरायण वीर पुरुषको देख मेरे नेत्र सार्थक हुए" ।

शिवाजी—"आज मेरा भी अहोभाग्य है, आपके पिताके समान विचक्षण धर्मपरायण; सत्यप्रिय, वीर पुरुष राजपूतानेमें भी बहुत थोडे हैं और यह भी निःसन्देह सौभाग्य है कि. दिल्ली आनेके समय उनके पुत्रसे साक्षात हुआ" ।

रामसिंह–"महाराज! दिल्ली आते हैं, यह सुनकरही सम्राट्ने मुझे आपके पास भेजा है, अब दिल्लीमें किस समय प्रवेश कीजियेगा?"

शिवाजी–"दिल्लीमें प्रवेश करनेके विषयमें आपका क्या परामर्श है!" शिवाजी तीक्ष्ण नेत्रोंसे रामसिंहकी ओर देखते रहे।

अकपट भावसे रामसिंहने कहा–

मेरे विचारमें तो यह आता है कि, आप अभी चलिये, क्योंकि विलम्ब होनेसे वायु गरम होगी, फिर ग्रीष्मका उत्ताप नहीं सहा जायगा"।

रामसिंहका सरल उत्तर सुन शिवाजी हँसकर बोले–

"मैं यह नहीं बूझता, मैं यह जिज्ञासा करता हूं कि, आप बहुत दिनसे दिल्लीमें रहते हैं आपसे कोई समाचार नहीं छिपा होगा अतएव यह बतलाइये कि, मेरा दिल्लीमें जाना कहांतक बुद्धिमानीका कार्य होगा?"।

उदारचित्त रामसिंह अब शिवाजीके मनका भाव समझ मुस्कुरायकर बोले।

क्षमा कीजिये, मैं प्रथम आपका उद्देश नहीं समझा था, यदि मैं आपकीसी अवस्थामें होता तो सदा पर्वतोंमें रहताहुआ अपने खड्गके ऊपर भरोसा रखता क्योंकि खड्गके समान और कोई यथार्थ बंधु नहीं है, किन्तु इस विषयमें मैं कुछ नहीं जानता, जब पितानेही आपको दिल्ली आनेका परामर्श दिया तब तो आपका आना अच्छाही हुआ, वे अद्वितीय पंडित हैं उनका परामर्श कभी व्यर्थ नहीं जाता"।

शिवाजी जानगये कि, मेरे युद्ध करनेके विषयमें कोई परामर्श दिल्लीमें नहीं हुआ, यदि हुआ हो तो रामसिंहको ज्ञात नहीं, थोडी विलम्बमें फिर रामसिंहसे कहा।

"हाँ! आपके पितानेही मुझे आनेका परामर्श दिया, मेरे आनेके समय उन्होंने एक और वचन दिया है कदाचित् वह तो आपको ज्ञात होगा"?

रामसिंह–हाँ! उन्होंने यह कहा है कि, दिल्ली आनेसे आपको कोई विपद नहीं होगी और इस विषयमें उन्होंने मुझको भी आज्ञा दी है"।

शिवाजी–"इसमें आपकी क्या सम्मति है?"

रामसिंह "पिताकी आज्ञा अवश्य पालनीय है, राजपूतोंका वचन कभी मिथ्या नहीं होता, इस विषयमें दासकी कोई त्रुटि नहीं होगी पिताका वचन मिथ्या न हो और आप निरापद स्वदेशमें पहुँचजायँ"।

शिवाजी निःसन्देह होकर बोले—

" तब आपकेही परामर्शानुसार इसी समय दिल्लीमें प्रवेश करना चाहिये, क्योंकि विलम्ब करनेसे हवा गर्म हो जायगी "

सब दिल्लीके सन्मुखचले।

समस्तमार्ग मुसलमानोंके टूटे फूटे महलोंसे परिपूर्ण था, पहले मुसलमानोंने दिल्ली जयकर पृथ्वीराजके किलेके समीप अपनी राजधानी बनाई थी सुतरां प्रथम सम्राटोंकी टूटी फूटी मसजिदें, कबरचिह्न दृष्टि आते थे। कालक्रमसे नये २ सम्राटोंने उत्तरकी तरफको और भी नये २ महल दुमहले राजभवन बनाये इससे नगर उत्तरकी ओर बसता चलागया था; शिवाजीने जाते २ अनेक मीनार, मसजिद स्तंभ देखे कि जिनकी गिनती वह नहीं करसके। रामसिंह, शिवाजीके साथसाथ चलकर अनेक स्थानोंका परिचय देते जाते थे; मार्गमें दोनों वीरोंने दोनोंका परिचय पाया और दोनोंमें असीम बंधुता स्थापन होगई। शिवाजीने निश्चय करलिया कि, यदि दिल्लीमें कोई विपद भी होगी तो भी एक यथार्थ बंधु पास रहेगा।

मार्गमें लोधी वंशके सम्राटोंकी बडी २ कबरें दृष्टिआई, प्रत्येक बादशाहकी कबरके ऊपर एक गुम्मज और एक अटारी बनी हुई थी; जब अफगानियोंका गौरवसूर्य अस्त होनेको था तब दिल्ली यहीं पर बसती थी।

फिर हुमायूंका अतिविस्तीर्ण मकबरा दृष्टि आया, उसके पश्चात् चौंसठ खंभ अर्थात् संगमरमरकी बनी हुई चौंसठ खंभोंकी बडीभारी अटारी, उसके अनन्तर कब्रस्तानपर कब्रस्थान दृष्टि आनेलगे; पृथ्वीराजके दुर्गसे आधुनिक दिल्लीतक आते २ शिवाजीको बोध हुआ मानों इस मार्गमें समस्त भारतवर्षका इतिहास लिखा हुआ है। एक एक महल वा अटारी उस इतिहासका एक २ पत्र एक एक कबर एक २ अक्षर और कराल काल उसका लेखक जान पडने लगा नहीं तो ऐसे अक्षरोंमें इतिहास कैसे लिखाजाता।

जब शिवाजी दिल्लीकोटकी प्राचीरके निकट पहुँचे तब रामसिंहने सगर्व एक स्थान दिखायकर कहा—

" राजन्! यह जो मंदिर आप देखते हैं, पिताने यह ज्योतिषकी गणनाके लिये स्थापन किया है, यहां दूर २ के पंडित आकर रात्रिमें नक्षत्र गणना करते हैं।"

शिवाजी–" आपके पिता जैसे वीर हैं वैसेही विज्ञ हैं, जगत्में ऐसे मनुष्य विरलेही पाये जाते हैं, मैंने सुनाहै कि, उन्होंने काशीमें भी एक ऐसाही मानमंदिर स्थापन किया है।"

रामसिंह–" हां, किया है।" इस प्रकार वार्त्ता करते सबने दिल्लीमें प्रवेश किया। दिल्लीमें प्रवेश करतेहुए शिवाजीका हृदय किंचित् कांपने लगा। उन्होंने घोडा रोक पीछे फिरकर देखा और मनही मनमें कहा " अबतक तो स्वाधीनता है, परन्तु थोडेही विलम्ब पीछे बंदीहोना संभव है।" यह विचारतेही थे कि, इतनेमें धर्मपरायण जयसिंहको वचन दे आये थे, वह याद आई, उन्होंने जयसिंहके पुत्रका उदार मुखमंडल देखा जगज्जननी जगमायीको मनाय भवानी नामक खड्ग (जो उनके पासही था) का स्मरण कर दिल्लीके द्वारमें प्रवेश किया।

स्वाधीन महाराष्ट्री योद्धा इस समय बंदी होगये।

चौवीसवा परिच्छेद।

दिल्ली।

चौ०–"झारे गली चौहटे छावैं। चोवा चंदनसों छिरकावैं।
पोय सुपारी झोंरा किये। बिच बिच कनक नारियल दिये॥
हरे पात फल फूल अपार। ऐसी घर घर वंदन वार॥
ध्वजा पताका तोरण तने। सुढब कलश कंचनके बने॥"

प्रेमसागर।

आज दिल्ली अपूर्व सजाई गई है! औरंगजेब स्वयं तडक भडकको पसंद नहीं करता था; किन्तु राजकाज साधनेके अर्थ जो सज धजकी आवश्यकता आन पडती थी इसको यह भलीप्रकार जानता था, आज शिवाजी दरिद्री महाराष्ट्र देशसे विपुल अर्थशाली मुगलोंकी राजधानीमें आवेंगे। मुगलोंकी सामर्थ्य, सम्पत्ति और धनकी बहुतायत देख अपनी हीनता समझ मुगलोंको युद्धमें जय

करना असंभव जानेंगे, इसी आशयसे आज औरंगजेबने दिल्लीको सजानेकी आज्ञा दी थी । बादशाहकी आज्ञासे दिल्लीने ऐसा वेष धारण किया था कि जिस-प्रकार उत्सवके दिनोंमें कुल ललनागण अपूर्व वेष धारण करती हैं ।

शिवाजी और रामसिंह एक साथ मिलकर राजमार्गमें चलने लगे, मार्गमें असंख्य अश्वारोही और पदातिक आते जाते थे बनियोंकी दूकानोंपर मूल्यवान् वस्तुयें विक्रीके अर्थ धरी थीं, शिवाजी बाजारमें अनेक प्रकारकी वस्तु सोने चांदीके गहने, मिठाई इत्यादि देखते भालते चलने लगे । कहीं मकानों पर निशान फहराते थे, कहीं गृहस्थ लोग अच्छे २ वस्त्र पहरे अपने २ बरामदेंमें बैठे थे; कहीं खिडकीसे कुल कामनियें महाराष्ट्रीय वीरोंको निहार अपना तन मन वारैती थीं । मार्गमें असंख्य छकडे, पालकी, हाथी, घोडे, राजा, मुन्शिफ, शेख, अमीर, उमराव, घोडेकी बाग उठायें बिजलीकी नांई गमन करते थे । बडे २ हाथी सुन्दर २ गहने पहरे लाल वस्त्रकी झूल धारण किये शुण्ड नचाते मतवाली चालसे जारहे थे, कहीं कहार लोग पालकी उठाये " हुँ हुँ " शब्द करते जाते थे ! शिवाजीने ऐसा नगर पहले कभी नहीं देखा था । रामसिंहने जाते २ उँगलीके संकेतसे तीन सफेद गुम्बज दिखाकर कहा—

" देखिये ! यह जुम्मा मसजिद है ! शाहजहां बादशाहने संसारका धन इकट्ठा करके यह अपूर्व मसजिद बनाई थी—सुना है कि, ऐसी मसजिद और दूसरी संसारमें नहीं है । " शिवाजीने नेत्र उठाकर देखा कि, मसजिदकी विस्तीर्ण चाहरदिवारी लाल पत्थरकी बनी है; उसके ऊपर संगमरमरके बने तीन गुम्बज और दो गगनभेदी मीनार दृष्टि आते हैं ।

इस अपूर्व मसजिदके सन्मुखही राजभवन और किलेकी लाल पत्थरसे बनाई हुई प्राचीर दृष्टि आती थी । दुर्गके पीछे यमुना बंकिमाकारसे बहरही थीं । दुर्ग और मसजिदमें असंख्य मनुष्य गमनागमन करते थे; उस समय ऐसा स्थान समस्त भारतवर्षमें तो क्या संपूर्ण जगत्में नहीं था इसमें भी संदेह है । दुर्गके भीतर हजारों झंडे फहराकर बादशाहकी सामर्थ्य और गौरवको प्रकाश कररहे थे । किलेके द्वारपर एक मनसबदारका डेरा था, उसमें उक्त मनसबदार बैठकर दुर्गरक्षा करता था । सन्मुख सेना कतार बांधे खडी थी; बन्दूकोंके ऊपर लगी

हुई किरणोंसे अपूर्व शोभा थी; किलेके सामने सहस्रों मनुष्य सहस्रों प्रकारकी वस्तुयें बचनेको बैठे थे; दुर्गकी प्राचीरसे मसजिदकी प्राचीरतक उत्तर दक्षिणमें जहांतक दृष्टि पहुँचती मनुष्योंके ठट्टके ठट्ट दृष्टि आते थे । अश्वारोही, गजारोही, व शिबिकारोही, भारतके प्रधान २ कर्मचारी पुरुष अनेक मनुष्योंके साथ दुर्गके बाहर भीतर आते जाते थे, उनके वस्त्र आभूषणोंकी शोभा देख नेत्रोंको चकाचौंध लगती थी, लोगोंके कुलाहलसे कान फटे जाते थे, बीच २ में इन सब शब्दोंको निगलता हुआ प्राचीरोंपरसे तोपोंका शब्द राजाधिराज आलमगीर की सामर्थ्य और विक्रमका संसारमें प्रचार करता था ।

विस्मयोत्फुल्ललोचनसे यह समस्त व्यापार देखते २ शिवाजीने रामसिंह सहित दुर्गद्वारके पारहो किलेमें प्रवेश किया ।

दुर्गमें प्रवेशकर शिवाजीने जो बातें देखीं उनसे वह विस्मित हुये । चारों ओर बडे २ कारखानोंमें शिल्पकार लोग अनेक प्रकारकी वस्तुयें बनाय रहे थे; कहीं सुवर्ण व चांदीके तारोंसे बनेहुये वस्त्र मलमल मसीलन छींट गलीचे चंदोवे, तम्बू, परदे, पगडी, शाल, दुशाले, विविध रत्नोंसे जडे हुये बेगमोंके आभूषण, सुन्दर २ चित्र, कारचोबीके काम, काट और पत्थरकी गृहस्थीय वस्तु लाल, पीले, नीले, हरे, पत्थरोंके खिलौने बन रहे थे, जिनका वर्णन करनेमें लेखनी असमर्थ है! जितने भारतवर्षमें कारीगर थे वे सब सम्राट्की आज्ञासे मासिक वेतनपर यहां कार्य करने आते थे । बादशाह राजकार्य वा निज प्रयोजनको जिस वस्तुकी आवश्यकता समझते, या बेगमें जितनी चीजोंकी फरमायश करतीं, वह सब इसी स्थानमें बनाई जाती थीं ।

शिवाजीको इन सब वस्तुओंके देखनेका समय नहीं मिला । वह असंख्य मनुष्योंकी भीडमें होकर लालपत्थरसे बनेहुये दीवान आमके निकट आये । बादशाह सदा यहीं सभा किया करते थे, परन्तु आज शिवाजीको अपना समस्त गौरव दिखानेहीको भीतर "संगमरमरसे बने हुये जगत् श्रेष्ठ "दीवानखाश" में दरबार किया था । शिवाजीने वहां जायकर देखा कि (दीवानखाश) में रत्न माणिक्य विनिर्मित सूर्यरश्मि प्रतिघाती "तख्त ताऊस" पर बादशाह औरंगजेब विराजमान हैं" सम्राट्के सन्मुख भारतवर्षमें अग्रगण्य राजा मनसबदार अमीर,

उमराव और असंख्य वरिगण चुपचाप बैठे हैं । रामसिंह शिवाजीका परिचय देकर राजसदनमें आये ।

शिवाजी दिल्लीकी अपूर्व शोभाको देख प्रथमही औरंगजेबका आशय समझ गये थे, अब वह आशय स्पष्ट बोध होने लगा । जिसने बीसवर्ष तुमुल संग्राम करके अपनी और स्वजातिकी स्वाधीनताको बचाया था जिसने अब बादशाहकी आधीनता स्वीकार कर युद्धमें उचित सहायता की जो अनेक कष्ट उठाय सम्राट्के दर्शन करने महाराष्ट्रसे दिल्लीतक आये, क्या इसप्रकार सम्राट्ने उनका आदर सन्मान किया ! औरंगजेब साधारण सेनापतिका भी इससे अधिक सन्मान करता था, आज वीर केसरी शिवाजी साधारण कर्मचारीकी नांई राज-दर्बारमें खडे हैं उनकी नश २ में गर्म रुधिर बहने लगा, परन्तु अब उपाय क्या था ? साधारण राजकर्मचारीके समान, तसलीम करे उचित रीतिसे औरंगजेबको नजर दी, औरंगजेबका महत् उद्देश्य साधन हुआ, जगत् संसारने जानलिया शिवाजीने भी जानलिया कि, शिवाजी व औरंगजेब बराबर नहीं. नौकरका मालिकसे, दुर्बलका बलवानसे युद्ध करना मूर्खता है ।

इस आशयके साधन करनेको औरंगजेबने ' नजर ' ले बिना किसी आदर सन्मानके शिवाजीको " पांचहजारी " अर्थात् पांच सहस्र सेनाके सेनापति-योंके बीचमें स्थान दिया । शिवाजीके नेत्र अग्निसम लाल होआये । शरीर कांपने लगा, वे दाँतसे होठोंको दबाय क्षीने स्वरसे बोले, " क्या शिवाजी पांच हजारी " जब सम्राट् महाराष्ट्र देशमें जायँगे, तब देखेंगे कि शिवाजीके अधीन ऐसे कितने पाँचहजारी रहकर कैसे बलसे खड्ग धारण करते हैं. शिवाजीके निकटही जो राजकर्मचारी खडे थे, उन्होंने यह वार्त्ता सुनकर सम्राट्के कानसे निकाल दी ।

आवश्यकीय कार्योंके होजानेपर सभा भंग हुई । बादशाह उठकर संगमरमर से बने हुए बेगम महलको चलेगये, नदीके सोतके समान किलेसे असंख्य मनुष्य बाहर आय अपने २ स्थानोंको जाने लगे । समुद्र समान विस्तारित दिल्ली नगरमें शीघ्रही लोकस्रोत समाय गया ।

शिवाजीके रहनेको भी एक स्थान नियत कियागया था. संध्या समय वह भी उस स्थानमें रोषसहित आयकर चिन्ता करने लगे ।

थोडेही कालमें सम्बाद आया कि शिवाजीने बादशाहके सम्मुख जो वार्ता कही थी, बादशाह उसका केवल यही दंड देना चाहते हैं कि आगेको शिवाजी राज साक्षात् या राजसभामें स्थान नहीं पावेंगे।

शिवाजी जानगये कि " भविष्यत् आकाशमें बादल घिर आये, जिस प्रकार व्याधा सिंहके पकडनेको जाल फैलाता है, उसी प्रकार दुष्टबुद्धि औरंगजेब शिवाजी के बन्दी करनेको कपटजाल बिछाये हैं। इस जालको तोड क्या फिर स्वाधीनता पा सकूंगा ? " फिर मौनहो चिन्ता करने लगे।

एक दीर्घ निःश्वास लेकर कहा, " हा सीतापति गोस्वामी ! मित्रश्रेष्ठ ! सदा युद्ध करनेको तुमनेही परामर्श दिया था, हाय ! मैंने आपकी एकबात न मानी; तुम्हारी युक्तिपूर्ण वार्ता अबतक मेरे कानोंमें गूँजरही है। औरंगजेब ! सावधान ! अबतक शिवाजीने तुझसे सत्यपालन किया, देख । उससे असत्य वा कपटाचरण मत कर. कारण यह कि, शिवाजी भी इस विद्यामें बालक नहीं है । यदि करेगा तो भवानी महामाया साक्षी रहें कि महाराष्ट्रदेशमें जो समरानल प्रज्ज्वलित करूंगा उसमें वह सुन्दर दिल्ली नगर और विपुल मुसलमान राज्य भस्म होजायगा।

पचीसवाँ परिच्छेद।

रात्रिमें अतिथि।

चौ०-चिताभस्म सब कंठ लगाये। अस्थि विभूषण विविध बनाये॥
हाथ मशान कपाल जगावत। को यह चलो रुद्रसम आवत॥

भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्रजी.

कुछदिन पीछे महाराजा शिवाजी औरंगजेबका आशय भली प्रकार समझगये, औरंगजेबका यही आशय था कि शिवाजी अपने देशमें न जासके, महाराष्ट्रदेश स्वाधीन न हो, शिवाजी बादशाहके इस कपटाचरणसे अत्यन्त अप्रसन्न हुए, परन्तु क्रोध छिपायकर दिल्लीसे प्रस्थान करनेका उपाय सोचने लगे।

शिवाजीके विश्वासी मंत्री रघुनाथपंत न्यायशास्त्री सदा इस विषयमें परामर्श देते और नाना प्रकारके उपाय करते थे।

बहुत युक्तियोंसे यह स्थिर कियागया कि प्रथम सम्राट्से देश जानेकी अनुमति लेना उचित है, अनुमति न मिलनेपर फिर और उपाय किया जायगा।

न्यायशास्त्री पंडितप्रवर और वचनचातुरीमें अग्रगण्य थे, यह शिवाजीकी प्रार्थना लेजानेको राजसभामें सम्मत हुए।

आवेदन पत्रमें शिवाजीके दिल्ली आनेका कारण विस्तारसे लिखागया, शिवाजीने मुगलोंकी सहायता दे जो जो कार्य किये थे और बादशाहने जो २ बात अंगीकार करके उन्हें दिल्लीमें बुलाया था यह सब साफ २ लिखागया! उसके पश्चात् शिवाजीकी प्रार्थना लिखीगई कि मैंने जो कार्य करना स्वीकार किया है उसके करनेको मैं अभी प्रस्तुत हूं, विजयपुर और मलखन्दका राज्य बादशाहके अधीन करनेको यथासाध्य सहायता करूंगा, यदि सम्राट् मेरी सहायता अस्वीकार करें तो मुझे मेरे राज्यमें लौटनेकी आज्ञा दी जावे। क्योंकि यहांका जल वायु मुझे और मेरे साथकी सेनाको हानि देनेवाला है, इस कारण यहां मेरा रहना असंभव है।"

यह प्रार्थनापत्र न्यायशास्त्रीने राजसदनमें प्रेरण किया, बादशाहने उत्तर दिया. उत्तरमें बहुत बातें लिखी थीं, परन्तु शिवाजीके देशजानेकी अनुमति नहीं। तब महाराज शिवाजीको निश्चय होगया कि मुझे सदा बंदी रखनाही बादशाहका आशय है। शिवाजी दिन दिन दिल्लीसे निकलनेका उपाय सोचने लगे।

इस बातके कई दिन पीछे शिवाजी झरोखेसे लगे हुए चिंतित भावसे बैठे थे, दिननाथ अस्ताचल आरोहण करगये थे किन्तु सम्पूर्ण अंधकार न होनेसे राजमार्गमें बहुत मनुष्य आते जाते थे, देश २ के मनुष्य दिल्लीमें अनेक प्रकारके वस्त्र पहरे अनेक कार्योंको आते थे। दिल्लीमें असंख्य सेना रहती थी इस कारण चौडी सडक पर सदा दो एक सिपाही आते जाते दृष्टि आते थे। कहीं कोई श्वेताङ्ग मुगल अकडते हुए निकलते कहीं शात २ देशी हिन्दू मुसल्मान भ्रमण करते और कहीं २ दो एक काफरी भी दृष्टिगोचर होते थे। फारस, अरब, तातार और तुरक देशसे आये हुए सौदागर लाग नगरीमें घूम रहे थे, बडे २ कर्मचारी, हाथी, घोडे, पाल-

कियोंमें चढकर विचरण करते थे, खोमचेवाले अपना २ खोमचा लिये अवाज लगा रहे थे, इन सबके सिवाय और भी असंख्य मनुष्य जलस्रोतकी नाई आते जाते थे।

क्रम २ से आदमियोंकी भीड कम होने लगी, दिल्लीके असंख्य दूकानदार अपनी २ दूकाने बंद करने लगे, नगरका अनन्त कलेवर मानो छोटा होने लगा, केवल दो एक खिडकियोंमेंसे कुछ उजाला दृष्टि आता था, बाकी उद्यानस्थान सबमें अंधकार छाय रहा था। पश्चिम दिशामें अरुणाई अब नहीं थी, आकाशमें केवल दो एक तारे उदय हुए थे; शिवाजीने पूर्वदिशाकी ओर देखा, प्रथम दिल्ली-की चहार दिवारी दृष्टि आई, उसके पश्चात् शान्त विस्तीर्ण दिगन्त प्रवाहिनी यमु-ना नदी सायंकालकी शांतिमें समुद्र सन्मुख बही जाती थी।

उस सूनसानको भेदकर जुम्मा मसजिदसे अजांका पवित्र व गंभीर शब्द धीरे धीरे चारोंओर विस्तारित हो मनुष्योंका मन आकर्षण कर आकाशमें उठने लगा। यद्यपि शिवाजी मुसलमान धर्मविद्रेषी थे, परन्तु क्षणभरतक चुपचाप रह-कर वह सायंकालीन गंभीर शब्द श्रवण करने लगे. उन्होंने फिर अंधकारकी ओर देखा, तो जुम्मा मसजिदके "संगमरमर" से बने हुए गुम्मज सुनील आकाश पटमें स्पष्ट दृष्टि आते थे, और किलेकी लाल पत्थरसे बनी हुई दीवार दूसरे पर्वत श्रेणी के समान शोभा धारण कररही थी इसके शिवाय सब नगर अंधकारसे ढकाहुआ और रात्रिकी शांतिसे शान्तमय हो रहा था।

रजनी गंभीर होती आई किन्तु शिवाजीका चिन्तारूपी डोरा अभी नहीं टूटा, आज सब पहली बातें याद आय रही हैं बाल्यकालके सुहृद वर्ग, बाल्यकालकी आशा, भरोसा, उद्यम, साहसी उन्नतचरित्र पिता शहाजी, पितृतुल्य, बाल्य सुहृद दादोजी कोंडदेव, श्रेष्ठ माता जीजी जिसने महाराष्ट्रके जयकी भविष्यद्वाणी कही थी, जिसने वीर माताके समान घरिकार्यमें बालकको वृत्ती किया, विपदमें धीरज दिया था। फिर युवा अवस्थाकी उन्नत आशा, भयंकर कार्यप्रणाली दुर्गविजय, देश विजय, विपदपर विपद, युद्धपर युद्ध, अपूर्व जयलाभ, दोर्दण्ड प्रताप, दुर्दमनीय उच्चाभिलाष घसि वर्षकी बातें एक एक करके उलट पुलट गई. तो जाना कि, प्रति वर्षकी अपूर्व विजय वा असम साहसी कार्य अभीतक अंकित और उज्ज्वल हैं।

वह कार्यप्रणाली और वह आशा क्या मायामय है ? वही अभीतक भविष्यत् आकाशमें तारे व नक्षत्र चमक रहे हैं, क्या अबभी भारतवर्षमें यवनोंके राज्यका अन्त और हिन्दुराज चक्रवर्तीके शिरपर छत्र धारण हो सक्ता है ।

इस प्रकार चिन्ता करते २ आधीरात बीत गई राजभवनके नक्कारखानोंसे बाहरके घंटेका शब्द होकर समस्त नगरमें व्याप्त गया और निशाकी निस्तब्धतामें वह गंभीर शब्द होकर बहुत देरतक गुंजारता रहा ।

खिडकीका द्वार जो खुला था शिवाजीने उसमें एक दीर्घ मनुष्यमूर्त्ति देखा वह मूर्ति इस प्रकार थी मानों कृष्णवर्ण अंधकारकी आकाशपटमें एक दीर्घ और चेष्टारहित मूर्त्ति है ।

शिवाजी विस्मित हो खडे हो गये, और उस मूर्त्तिपर तीव्र दृष्टि कर खड्ग म्यानसे निकाला । अपरिचित आगन्तुक उसका ध्यान न कर गवाक्षके भीतर चला आया और फिर धीरे २ माथे और दोनों भवोंपर पडीहुई ओसको कपडेसे पोंछा ।

शिवाजीने तीक्ष्णदृष्टिसे देखा कि, आगन्तुकके मस्तकपर जटाजूट और शरीरमें विभूति लगरही है, हाथमें छुरी या और किसी प्रकारका शस्त्र नहीं, आगन्तुक शिवाजीके वध करनेको भेजाहुआ बादशाहका चर नहीं है । परन्तु यह है कौन ?

तीक्ष्णदृष्टिसे उस अँधियारे घरके भीतर शिवाजीको देखकर आगन्तुक बोला "महाराजकी जय हो ! " ।

अंधकारमें आगन्तुकका आकार देखकर शिवाजी उसको नहीं जान सके, परन्तु कंठस्वर सुनतेही पहँचान लिया संसारमें यथार्थ बंधु बहुत थोडे हैं विपद और चिन्तामें ऐसा बंधु पानेसे हृदय आनन्दमें मग्न हो जाता है । शिवाजीने भी एक दीपक जलाकर सीतापति गोस्वामीको प्रणाम और स्नेहसहित हृदयसे लगाय व्यग्र होकर पूंछा ।

"बंधुश्रेष्ठ ! रायगढका क्या समाचार है; आप वहांसे कब और किस प्रकार आये ? इतनी दूर आनेका और आज रात्रिमें सहसा गवाक्ष द्वारसे प्रवेश करनेका कारण क्या है ?

सीतापतिने उत्तर दिया, "महाराज ! रायगढमें सब प्रकारसे कुशल है, आपने जिन मंत्रियोंको राजभार सौंपा है, उनके प्रबंधसे अमंगल होनेकी कोई

संभावना नहीं; किन्तु इस विषयको मैं भलीप्रकार नहीं जानता, क्योंकि आपके रायगढ़से चले आनेपर मैं बहुत कालतक वहां नहीं रहा था । मैं पहलेही आपसे निवेदन करचुका हूं कि, मुझको अपना कठोरव्रत साधनेके हेतु देश २ फिरना होता है; इसही प्रयोजनसे जब साक्षात् हो तबहीं मेरा सौभाग्य है ।

शिवाजी—तथापि आप विना विशेष कारणके गवाक्षद्वारसे होकर अर्धरात्रिमें नहीं आते । कृपापूर्वक आनेका कारण बतलाइये । "

सीतापति । " निवेदन करता हूं; किन्तु प्रथम महाराज यह बतावें कि जब से महाराज यहां आये हैं कुशलपूर्वक तो हैं । ? "

शिवाजी— " शत्रुओंके बीचमें रहकर मनकी कुशल कहां ? परन्तु शरीरसे कुशल हूं । "

सीतापति । " महाराजसे और सम्राट्से जब संधि होगई फिर शत्रु कैसे ? "

शिवाजी हँसकर बोले, " सर्प और मेंढकके मध्यकी संधि कितनी देरतक रह सक्ती है ? आप सब जानते हैं, अब मुझे लज्जा मत दीजिये । यदि रायगढ़में आपकी बात मानता तो कोंकणदेशके भीषण पर्वत तलैटियोंमें अब भी हिन्दू धर्मके अर्थ युद्ध करसक्ता, खल बादशाहके वचनका विश्वास कर इस जालमें फँसकर दिल्लीमें बंदीभावसे न रहता । "

सीता०—महाराज ! आत्माका तिरस्कार मत कीजिये क्योंकि मनुष्यमात्रही भ्रान्तिके अधीन हैं, यह जगत्ही भ्रममय है । विशेषकर इस विषयमें महाराजका दोषभी नहीं है, क्योंकि आप संधिपर विश्वास करके सदाचरण दिखाय इस स्थानमें आये हैं; जो असदाचरण और कपटाचारमें दोषी हैं; जगदीश्वर अवश्यही उनको उनके कर्मका दंड देगा । महाराज खलताकी जय नहीं होती, औरंगजेबने जिस पापकर्मके द्वारा आपको कैद करनेकी चेष्टा की है, वह उस पापसे सवंश ध्वंस होजायगा. राजन् ! आपने रायगढ़में जो वार्ता कही थी महाराष्ट्र देशमें उसको अबतक कोई नहीं भूला है,—वह वार्ता यह है । औरंगजेब यदि कपटाचरण करै तो महाराष्ट्र देशसे जो समरानल प्रज्ज्वलित होगी, उसमें समस्त मुगलराज भस्म होजायगा । "

उत्साह और हर्षसे शिवाजीके नेत्र प्रज्ज्वलित हुये उन्होंने कहा-

सीतापति ! " अभी वह आशा निर्मूल नहीं हुई है। औरंगजेब देखेगा कि अभी महाराष्ट्रियोंका जीवन बना है। परन्तु हाय ! मेरे वीराग्रगण्य सेनापति तो मुगलोंसे तुमुल संग्राम करेंगे और मैं कैसे दिल्लीमें रहूंगा। "

सीतापति ! " औरंगजेब जब गगनसंचारी वायुको जालसे रोक लेगा तब आपको भी कदाचित् बंदी रखसके, परन्तु इसके प्रथम किसी प्रकारसे नहीं। "

शिवाजी हँसकर धीरे २ बोले; " इससे तो जाना जाता है कि आपने कोई भागनेका उपाय ठीक कर रक्खा है और इसी कारण अर्द्धरात्रिको आप मेरे पास आये हैं। "

सीतापति। " महाराजकी तीव्रबुद्धिके सन्मुख कोई वार्त्ता गुप्त नहीं रहसक्ती"।

शिवाजी। " वह कौनसा उपाय है ? "

सीतापति। इस अंधकारमय रात्रिमें आप कपटवेष धारण कर सरलतासे इस गृहके बाहर होजायंगे। दिल्लीके चारों ओर ऊंची प्राचीर है किन्तु पूर्वकी ओर एक स्थानमें उस प्राचीरके ऊपर लोहशलाकास्थापित है, उसके द्वारा प्राचीर लांघना महाराष्ट्रियोंको असाध्य नहीं है, और दूसरी ओर नावमें कहार हैं वह भी एक क्षणमें आपको मथुराके मध्य पहुंचा देंगे। वहां महाराजके अनेक बंधु बांधव, और हिन्दू देवालयोंके अनेक धर्मात्मा पुरोहित हैं, वहांसे अनायास आप अपने देशमें पहुँच जायँगे।

शिवाजी–"मैं इस उद्योगके करनेसे बहुत अनुग्रहीत हुआ, और आप मेरे अकारण बंधु हैं इसका भी निदर्शन मुझे भलीभांतिसे मिलगया: परन्तु मेरे प्राचीर लांघनेके समय किसीने देखलिया तो भागना असाध्य होगा और फिर निश्चयही औरंगजेबके हाथसे मेरा मरण है। "

सीतापति–" जहां लोहशलाका रक्खीगई है उसके निकटही आपकी सेनाके दश सिपाही खड्ग हाथमें लिये छिपे खडे हैं, जो कोई आपको रोके अथवा देखले तो उसकी निश्चयही मृत्यु होगी। "

शिवाजी–"नौकामें छूटनेपर यदि कोई किनारेका पहरेदार संदेह करके नावको पकडे तो ? "

सीतापति—आपकेही आठ योद्धा छद्मवेषधारण किये नावके चलानेवाले हैं; वह बख्तर पहरे और सब प्रकारसे कमर कसे हैं। नौकाको कोई रोकसकै इसकी किंचित् भी संभावना नहीं है!"

शिवाजी—"मथुरा पहुँचनेपर यदि कोई यथार्थ बंधु न मिलै?"

सीतापति—"आपके यहां जो पेशवाजी हैं उनके बहनोई मथुरामें हैं वह आपके बूझे और विश्वासी हैं। मैं उनकेही निकटसे आता हूं, उन्होंने सब ठीक ठाक कर रक्खा है; यह उनकी पत्रिका पढ लीजिये।"

कपडेके भीतरसे पत्र निकाल शिवाजीके हाथमें दिया, शिवाजी पत्र लौटायकर हँसते हुये बोले।

"आपही पढकर सुनाइये।" सीतापति लज्जित हुए और अब उनको याद आया कि, शिवाजी कुछ लिखना पढना नहीं जानते; यहांतक कि उनसे अपना नाम भी लिखना नहीं आता।

सीतापतिने पत्र पढकर सुनाया, जो जो आवश्यकताकी बातें थीं वह सब मोरेश्वरके कुटुम्बसे स्थिर होगई थीं। शिवाजी पत्र सुनकर बोले—

गोसांईजी! मुझे ऐसा ज्ञात होता है कि, आपका सब जन्म पूजापाठहीमें व्यतीत नहीं हुआ है, क्योंकि आपकेसे सुहृद् उपाय मेरा मंत्री भी नहीं करसक्ता. परन्तु एक बात है; मैं चलाजाऊंगा तो मेरा पुत्र कहां रहेगा, मेरे विश्वासी मंत्री रघुनाथपंत मेरे सुहृद अन्ताजी, मालश्री और मेरी सेना कहां रहेगी? और किसप्रकार यह लोग औरंगजेबके क्रोधसे छुटकारा पावेंगे?"

सीतापति-"आपके पुत्र, प्रिय सुहृद! और मंत्री महाराजके साथही आज रातमें जाय सक्ते हैं और आपकी सेना यहां रह भी जाय तो कुछ हानि नहीं औरंगजेब उनका करेहीगा क्या, बस छोडही देगा।"

शिवाजी—"सीतापति! क्या आप औरंगजेबको नहीं जानते वह भाइयोंको मारकर सिंहासनपर बैठा है।"

सीतापति—"यदि वह आपकी सेनाके ऊपर कुछ कठोर आज्ञा दे तो महाराष्ट्रमें ऐसा कौन वीर है जो आपकी विपद्वार्ता श्रवणकर हर्ष सहित प्राण न देदे?"

क्षणेक चिन्ताकर शिवाजी धीरे २ बोले—

" महात्मन् ! मैं आपकी चेष्टा और उद्योगके अर्थ अनुग्रहीत रहा ? परन्तु शिवाजी अपने विश्वासी और भाई बंधुओंको विपद्में छोडकर अपना उद्धार नहीं चाहता, मैं इसप्रकार भीरुताका कार्य कभी नहीं कर सक्ता. सीतापति ! और कोई उपाय हो तो अच्छा, नहीं तो इस चेष्टाहीको त्याग कीजिये "

सीतापति—" और कोई उपाय नहीं है ? "

शिवाजी—" तो समय दीजिये ! शिवाजी उपाय सोचनेमें कभी कातर नहीं होता क्योंकि मुझपर यह प्रथम विपद् नहीं पडी है "

सीतापति--" समय नहीं है । इस रात्रिमें आप यहांसे चले जाइये क्योंकि कल यहांसे आपका जाना नहीं होगा ।

शिवाजी--" मैं नहीं जानता कि, आपने किस योगबलसे यह बात जानली यदि मानभी लियाजावे कि, आपका कहना यथार्थ है; तथापि शिवाजीका और उत्तर नहीं, शिवाजी आश्रित प्रतिपालित मनुष्योंको विपद्में छोडकर अपना उद्धार नहीं करेगा । गोसांईजी ! यह कार्य क्षत्रियधर्मके विरुद्ध है । "

सीतापति—" विश्वासघातकको दंड देनाही क्षत्रियोंका धर्म है, औरंगजेबको पापका फल दीजिये, आप दूर महाराष्ट्र देशमें जायकर वहांसे समुद्रकी लहरोंके समान समरतरंग प्रवाहित कीजिये, उससे शीघ्रही औरंगजेबका सुखस्वप्न भंग हो कर यह पाप पूर्णराज अगाध जलमें डूबजायगा । "

शिवाजी--" सीतापति ! जो जगत्का कर्त्ता हर्ता है, वही विश्वासघातकताका दंड देगा, यह मैं सचही कहता हूं, परन्तु शिवाजी आश्रितोंको त्याग नहीं कर सक्ता । "

सीतापति--" महाराज ! इस प्रतिज्ञाका त्याग कीजिये अबभी भलीभांति शोच विचारकर उत्तर दीजिये, कल विचारका समय नहीं मिलेगा, क्योंकि कल आप बन्दी होजायँगे । "

शिवाजी--" बंदी होनेसे मैं उतना नहीं डरता जितना कि, आश्रितको त्याग करनेसे डरताहूं मेरी प्रतिज्ञा कभी अविचलित नहीं होसक्ती । "

सीतापति--" तो मुझे आज्ञा दीजिये मैं बिदा होता हूं, " बडे झीने स्वरसे गोसांईने यह वार्ता कही शिवाजीने देखा कि, उनके नेत्रोंमें आँसू भरआये थे ।

स्नेहसहित वीर धीर शिवाजीने सीतापतिका हाथ पकडकर कहा, "गोसांईजी! मेरा दोष ग्रहण मत कीजिये; जबतक इस शरीरमें प्राण रहेंगे आपका यत्न, चेष्टा, स्नेह, सदा याद रहेगा, रायगढमें आपका वीर परामर्श; दिल्लीमें मेरे उद्धार करने को यहाँतक परिश्रम करना मेरे हृदयमें सदा जागरित रहेगा। बिदा कैसी ? जबतक आप दिल्लीमें रहें मेरे पास रहिये, इस जगह मुझे विपद् है. आपको नहीं।"

सीतापति-"आपके मीठे वचनोंसे मेरा अच्छा सत्कार होगया, जगदीश्वर जानता है कि आपके संग रहनेके सिवाय मेरी और अभिलाषा नहीं है, परन्तु करूं क्या ? मेरा व्रत नहीं छूट सक्ता, मेरा एक स्थानमें रहना असंभव है, क्योंकि इस व्रतके साधन करनेके अर्थ मैं अनेक देशोंमें भ्रमण करताहूं।

शिवाजी-" वह कौनसा असाधारण व्रत है मैं नहीं जानता, आप बराबर रात्रिमें इस प्रकारसेही लालचंदन अंगसे लपेट जटाधारण किये कभी २ मुझे दर्शन देते हैं, परन्तु दिनमें कभी आपका दर्शन नहीं होता।

कुछ बातें आप ऐसी कहते हैं जिनसे मेरा हृदयतक हिल जाता है, परन्तु फिर आपके दर्शन बहुत दिनोंतक नहीं होते। सीतापति! वह कौनसा कठोर व्रत धारण किया है ?"

सीतापति-" विस्तारसे इस समय किस प्रकारसे कहूं; परन्तु साधनताका एक अंग यह है कि दिनमें राजाके पास न जाना।"

शिवाजी- आपने व्रत किस आशयसे धारण किया है ?।

बहुत चिन्ताकर सीतापति बोले, मेरे भाग्यमें एक अमंगलका लेख लिखित है, मेरा इष्ट देवता, जिसको मैंने बालकपनसे पूजा; जिसका नाम जपकर जीवन देनेको भी मैं आनंदसे तैयार हूं, विधाताकी लिखनेसे वह मेरे ऊपर अप्रसन्न हैं; उसी अमंगलकी दशा निवारण करनेको यह व्रत धारण किया है।"

शिवाजी-किसने इस अमंगलकी गणनाकर आपको बताया ?

सीतापति-"कार्यवश होकर अमंगलको तो मैंने स्वयंही जान लिया था। और मुझे इस व्रतके धारण करनेको ईशानीके मंदिरमें एक सती साध्वी योगिनीने उपदेश किया था। यदि यह व्रत सफल होगया तब तो उस भगिनीसम स्नेहमयीके फिर एकबार दर्शन होंगे; और यदि कृतकार्य न हुआ तो यह अकिंचित्कर जीवन

त्याग करूंगा। जिसके संतोष करनेको यह जीवन धारण करता हूं यदि वही अप्रसन्न हुआ तो फिर जीनेकी आवश्यकता क्या है ? ”

शिवाजी गोस्वामीके नेत्रोंमें जल देखकर अनायास रुदन करते हुये बोले।

सीतापति ! “ ठीक है जिसके लिये प्राणभी कुछ नहीं उससे तिरस्कार और उसके असंतोषसे अधिक जगत्में और मर्मभेदी दुःख नहीं है। ”

सीतापति–“ क्या महाराजपैभी कभी यह दुःख पडा है ? ”

शिवाजी–“ जगदीश्वर मुझे क्षमा करै मैंने एक निर्दोषी वीरको यह दुःख दिया है, अबभी उस बालककी याद आनेसे हृदय व्याकुल होजाता है। ”

सीतापतिका कंठ रुकगया बडी कठिनाईसे उन्होंने पूछा “ उसका नाम क्या है ? ” शिवाजी बोले। “ रघुनाथजी हवालदार। ”

घरका प्रदीप सहसा निर्वाण होगया।

शिवाजी प्रदीप जलानेके यत्नमें थे कि अतिकष्टोच्चारित स्वरसे सीतापति बोले। दीपककी आवश्यकता नहीं. कहिये मैं श्रवण करता हूं। ”

शिवाजी–“ अब और क्या कहूं ? तीन वर्ष हुये कि यह बालकवेषी वीरपुरुष मेरे पास आनकर हवालदारके कार्यमें प्रवृत्त हुआ था, उसका वदनमंडल उदार था। नेत्र आपहीके समान प्रकाशित थे, माथा चौडा था, उसकी उमर आपसे थोडी थी, यद्यपि उसमें आपके समान बुद्धिकी तेजी तो नहीं थी परन्तु उस ऊंचे हृदयमें वीरता आपहीके समान थी, और उसका चेहरा सदा निडर रहता था। जब मैं आपकी देहपर दृष्टि डालता हूं। आपका कंठस्वर सुनता हूं, और आपके विक्रमका विचार करता हूं, तब तब मुझे उस बालककी याद आजाती है। ”

“ मैंने प्रथमही उस बालकको देखकर जानलिया कि, यह महावीर है और उसी समय एक अपना खड्ग उसको देदिया, रघुनाथने कभी उस खड्गका अपमान नहीं किया, यह विपदके समय परछांईकी भांति सदा संग संग रहता, वह युद्धमें शत्रुओंके मोरचे खंड २ कर मृत्युका डर छोड आगे बढ सिंहनाद करता था। अब

भी उसकी वह वीरमूर्ति, वह काले २ घूँघरवाले बाल वह उज्ज्वल नेत्र मेरे नेत्रोंके सामने फिर रहे हैं ! "

" फिर ? "

" एक युद्धमें मेरे प्राण बचाये; एक समरमें उसकी ही वीरतासे किला जीता गया; अब कहांतक कहूं उसने बहुत लडाइयोंमें अपना अमित बल विक्रम प्रकाश किया था "

" फिर ? "

अब और क्या पूछते हैं " मैंने एकदिन धोखापायकर अपने उस विश्वासी सेवकका अपमान किया उसे अपनी सेनासे निकाल दिया; रघुनाथने उस समय तक कोई कडुआ वचन नहीं कहा, वह जानेके समय मुझे शिर नवाकर चला गया था। " शिवाजीका गला रुकगया और उनके नेत्रोंसे अविरल जलधारा बहने लगी।

थोडी देर पश्चात् सीतापति बोले--

इसमें विषाद करनेका क्या कारण है ? दोषिको दंड देनाही राजाका धर्म है।

शिवाजी। " दोषी ! रघुनाथमें दोषका नाम नहीं था मैं नहीं जानता कि मुझे किस कुघडीमें धोखा हुआ था; रघुनाथको युद्धमें अतिदेर हुई इस कारण मैंने उसको विद्रोही समझा, फिर महानुभाव जयसिंहने इस विषयको उचितरीतसे अनुसंधान कर जाना कि रघुनाथ युद्ध होनेसे प्रथम एक पुरोहितसे आशीर्वाद लेने गया था, और यही उसके विलम्ब होनेका कारण था। मैंने निर्दोषीका अपमान किया, हाय ! अब सुनता हूं कि रघुनाथने उसी अपमानसे दुःखित होकर प्राण त्याग दिये हैं। उसने तो युद्धमें मेरे प्राणोंकी रक्षा की, उसके बदलेमें मैंने उसके प्राण विनाश किये हा ! प्रेमी रघुनाथ ! "

शिवाजीसे और नहीं बोलागया वह बहुत देरतक मौन रहे और फिर बडे कष्टसे पुकारा " सीतापति ! "।

कुछ उत्तर नहीं मिला। विस्मित हो दीपक जलायकर देखा तो घरमें कोई नहीं सब सूना था। सीतापति गोस्वामी कहां गये ? और यह हैं कौन ?।

छब्बीसवाँ परिच्छेद ।

औरंगजेब ।

अपनेपग आपही कुहाडी मारी जान बूझ ।
अहंकार करके नावः नदीमें डुबोई है ।
बुद्धिमान गुनानिधान होके सब जगतमाहिं,
किहि कारण आज बुद्धि विद्या सब खोई है ।
जाके कंठ काटे कटकटाय आप कारो नाग,
बाँधे कहां बन्द अंध मन्द भाग सोई है ।
वेद औ पुराण शास्त्र जानकर कहै है तू,
मोसम अज्ञान आज दूसरो न कोई है ।

लाला--शालिग्राम वैश्य ।

दूसरे दिन एक प्रहर दिन चढे शिवाजी सोनेसे उठे, वह राजमार्गमें कुलाहल सुन एक खिडकीमेंसे देखते क्या हैं कि जिस स्थानमें वह रहते हैं उसके द्वारोंपर प्रहरी अस्त्र शस्त्र लिये द्वाररक्षामें नियुक्त हैं और बिना किसीको भली प्रकार जाने पहिचाने हुए बाहर भीतर नहीं आने जाने देते.

यह सब बातैं देख भालकर सीतापति गोस्वामीका कहना याद आया और समझ गये कि आज मैं औरंगजेबका बन्दी हूं ।

शिवाजीको बहुत ढूँढ भाल करनेसे मालूम हुआ कि, मैंने बादशाहसे जो अपने देशमें जानेकी प्रार्थना की थी इस कारण औरंगजेबके मनमें संदेह हुआ और उसने सन्देहवश हो कोतवालको आज्ञा दी कि, शिवाजीके मकानपर पहरे रखवाने चाहियें, जहां कहीं शिवाजी जांय वहीं उनके साथ सिपाही रहें, अब शिवाजीको ज्ञात हुआ कि अकारणमित्र सीतापति ज्योतिषसे अथवा और किसी प्रकार औरंगजेबकी यह मंत्रणा जानकर प्रथमही उद्धारका सब प्रबंधकर आधीरातको संवाद देने आये थे । शिवाजी मनहीमन सीतापतिको शत शत धन्यवाद देने लगे ।

औरंगजेबकी कपटता अब भलीभांति प्रकट हुई, प्रथम तो अति आदरमान-

सहित पत्र लिख शिवाजीको दिल्लीमें बुलाया, आनेपर राजसभामें अपमान कर फिर राजदर्बारमें आनेको कहा, व स्वदेश जानेको रोककर बन्दी कर लिया। जिस प्रकार कोई २ अजगर सर्प मेष इत्यादि भक्षण करनेसे प्रथम अपना बडा शरीर भोजनके चारों ओर फैलाय भलीभांति उसको वश कर काट खाता है इसी प्रकार औरंगजेबने शिवार्जाको अपने कपटजालमें फँसाकर मारनेका संकल्प किया था। अतिकष्टसे जाननेके लायक यह वर्तमान घटना मुहूर्त भरमें देखकर शिवाजी शत्रुका आशय समझ क्रोधित हो गर्जन कर घरमें टहलने लगे। उनके अधर काँपने लगे, नेत्रोंसे चिनगारियें निकलती थीं, कुछ समय पीछे लडखडाती आवाजसे बोले–

"औरंगजेब! शिवाजीको अबतक नहीं जानता, तू अपने बराबर चतुरतामें किसीको नहीं समझता किन्तु शिवाजी भी इस विद्यामें बालक नहीं है"।

यह ऋण एक दिन निबटा दूंगा, दक्षिणसे लेकर तमाम हिन्दोस्थानमें समरानल प्रज्वलित हो जायगी"।

बहुत देरतक चिन्ताकर चिरविश्वासी रघुनाथपंतको बुलवा भेजा। प्राचीन न्यायशास्त्री उपस्थित होकर शिवाजीकी आज्ञासे सन्मुखही बैठ गये।

शिवाजी बोले–" पंडितप्रवर! आप औरंगजेबकी चालें देखते हैं? यही चालें हमैं चलनी होंगी, आपके प्रसादसे शिवाजीभी इन चालोंके चलनेमें कच्चा नहीं है, चलेंगे"।

"मैंने अपने बन्दी होनेका समाचार कलही पालिया था, परन्तु प्रथम अपने अनुचर इत्यादिकोंका विपदसे उद्धार न करके मुझे अपने उद्धार करनेकी इच्छा नहीं है क्यों इसमें आपकी क्या सम्मति है?"

न्यायशास्त्री बहुत सोच विचारकर बोले "अपने अनुचरोंको देशमें भेजनेके लिये सम्राट्से प्रार्थना कीजिये, जब उसने आपको बन्दी करलिया तब तो वह इस बातसे और भी प्रसन्न होगा कि आपके नौकर जितने घटें उतनाही अच्छा है। मेरे ध्यानमें तो यह आता है कि यह अनुमति आपको मांगतेही मिल जायगी।"

शिवाजी बोले "मंत्रीवर! आपका कहना ठीक है, मैं भी जानता हूं कि धूर्त औरंगजेब इस प्रार्थनाको मान लेगा"।

इस मर्मका एक प्रार्थनापत्र तैयार कियागया, शिवाजीने जो विचार किया वही हुआ । शिवाजीके सब नौकर चाकरोंका दिल्लीसे जाना सुन औरंगजेबने प्रसन्नता-सहित उनको एक २ परवाना दिया । शिवाजी कई दिनमें वह अनुमतिपत्र पायकर मनमें कहने लगे ।

" मूर्ख ! शिवाजीको कैद रक्खेगा ? अभी अनुचरका बेष बनायकर एक अनु-मति पत्र ले दिल्लीसे चला जाऊं तो मेरा क्या कर सक्ता है ? जो हो, अब नौकर चाकर तो बे खठरके जायँगे, शिवाजी अपने लिये उपाय आप सोच लेगा । "

पाठक ! जो असाधारण चतुरता, बुद्धिकौशल और रणनिपुणतासे भाइयोंको हराय, बुड्ढे बापको कैदकर दिल्लीके 'तख्त ताऊस' पर बैठा था जिसने काश्मीरसे लेकर बंगदेशतक समस्त आर्यावर्तका अधिपति होकर भी फिर दक्षिणदेश जीत सब भारत वर्षमें एकाधीश्वर होनेका संकल्प किया था, चलो एकबार उस क्रूर कपटाचारी अथवा साहसी, दूरदर्शी औरंगजेबके राजभवनमें प्रवेश कर उसके मनके भाव निरीक्षण करें ।

राजकार्य समाप्त होगये हैं औरंगजेब 'गुसलखाना' नामक सभागृहके एक बगली गृहमें बैठा है । यह मंत्रियोंके सहित गुप्त सलाहोंके करनेका स्थान था; परन्तु आज औरंगजेब इकला बैठकर यहाँ चिन्ता कररहा है, कभी २ माथेपर गहरी लकीरें पडजाती हैं, कभी २ उज्ज्वल नेत्र व कंपित अधरोंपर रोष अभिमान और दृढप्रतिज्ञाके लक्षण दिखाई देजाते हैं, कभी मंत्रणाकी सफल आशासे उन्हीं ओष्ठोंपर हास्य रेखायें विस्तारित होजाती हैं । बादशाह क्या कररहे हैं ? क्या यह चिन्ता करता है कि, मैं अपने बुद्धिबलसे सब हिन्दोस्थानका शाहंशाह बनगया हिन्दुओंकी अवमानना और राजपूत महाराष्ट्रियोंको औरभी पद दलित करनेका संकल्प कररहा है ? क्या महाराज शिवाजीको कैद कर मनमें हर्ष कररहा है ? हम सम्राट्की चिन्ताको नहीं समझ सक्ते, वह अपनी सभामें समस्त भारतवर्षमें किसी आदमी, किसी सेनापति और किसी मंत्रीका सम्पूर्ण विश्वास नहीं करता न उनसे कभी अपने मनका विषय खोलकर कहता था । अपनी बुद्धिकी तेजीसे सबको कठपुतलीकी तरह नचाना, सब देशका उत्तम प्रबंध करना औरंगजेबका उद्देश्य था । जिस प्रकार वासुकिनाग पृथ्वीके धारण करनेमें विश्राम अथवा किसीकी

सहायता नहीं लेते; इसी भांति औरंगजेबने बिना किसीकी परामर्श चाहे अपने अमित मानासिक बलसे सर्व भारतका शासनभार एकाकी वहन करनेका संकल्प किया था—

औरंगजेब बहुत देरसे बैठा है कि, इतनेमें एक चोपदारने 'तसलीम' कर प्रार्थना की।

"जहांपनाँह! दानिशमन्दनामी दरबारी आपकी मुलाकात करनेके लिये दरवाजेपर खडा है।"

बादशाहने दानिशमन्दके आनेका हुक्म दिया और अपने माथेकी चिन्ता रेखा दूरकर सुन्दर हास्यमुख बनालिया।

दानिशमन्द न औरंगजेबका मंत्री था, न राजकार्यमें परामर्श देनेका साहस करता था, तोभी फारसी और अरबी भाषामें अच्छा पंडित होनेके कारणसे बादशाह इसका अधिक सन्मान करता था और कभी २ बातोंही बातोंमें कुछ परामर्शभी पूछलेता था। उदारचेता दानिशमन्द सदा उचित परामर्श देता था। जब औरंगजेबने अपने बडे भाई दाराको कैद किया था उस समय दानिशमंदने दाराके प्राणरक्षा करनेको औरंगजेबसे कहा था। परन्तु यह परामर्श औरंगजेबके मनोगत न हुआ, औरंगजेब दानिशमंदको 'कमअक्ल' व 'कम अंदेश' समझता तथापि उसकी विद्याधन वह पद मर्यादाके लिये सदा उसका उचित रीतिसे आदर सत्कार करता था, सरल स्वभाव वृद्ध दानिशमन्द बादशाहको आदाब बजलाकर बैठगया और बोला।

इस वक्त आकर हजूरको तकलीफ देना यह मुझ गुलामकी गुस्ताखी है, क्यों. कि यह आपके आराम फरमानेका मौका है, तोभी मैं सिर्फ इसलिये आया हूं कि शाहंशाह मुझपर इनायत करते हैं, फारिशके शाअरने ठीक लिखा है कि, आफताबकी तरफ दुनियाके सब जानदार हरवख्त देखते रहते हैं क्या आफताब इससे नाराज होता है या कि, रोशनी पहुँचानेसे हटजाता है?

बादशाह हँसकर बोले, "दानिशमन्द! औरके लिये कैसाही हो लेकिन आप हरवक्त इज्जत करनेके लायक हैं।"

इस भांति शिष्टालाप करते २ दानिशमंदने और विषय छेडकर कहा, "हजूरने वाकई आलमगीरनामको ठीक कर दिखाया। सब हिन्दोस्थान तो पहलेसे

हीं हजूरके कदमोंमें पडा है, अब दक्खनके जीतनेमें भी कुछ ताम्मुल नहीं मालूम होता ।"

औरंगजेब कुछ हँसकर बोला–

"क्यों इसवारेमें आपने मेरी कौनसी तैयारी देखी ?"

दानिशमन्द "मुल्क दक्खनका सरदार दुश्मन आपके काबूमें आगया ।"

औरंगजेब–"आ ! आप शिवाजीको कहते हैं ? हां चूहा कफसमें फँसा है फिर उसी समय अपनी मंत्रणा छिपाता हुआ बोला, "दानिशमंद ! आप हमेशाही मेरा मतलब जानते होंगे कि, मुल्कके सरदार आदमियोंकी इज्जत करना मुझको पसंद है । शिवाजी नालायक हो, वागी हो, बहादुरतो है; मैंने उसकी इज्जत करनेही को उसे दिल्लीमें बुलाया था । दरबारमें अच्छी तौरसे खातिरदारी कर उसके मुल्कको लौटादेनाही मेरा दिली मतलब था; लेकिन वह ऐसा जाहिल है कि, दर्बारमें आतेही गुस्ताखी की । मैं उसको कैद करना या उसकी जान लेना कभी नहीं चाहता, बस उसको और सजा न देकर सिर्फ दर्बारमें आनेकी मनाई करदी । अब सुन्ता हूं कि, दिल्लीमें वह बहुत संन्यासी और फकीरोंसे बगावतकी सलाह करता है, बस वह हमको किसी तरहका नुकसान न पहुँचासके, इस सबबसे कोतवालको हुक्म दिया है कि, हरवक्त उसे नजरमें रक्खै ! फिर मैं थोडे दिनबाद उसे यहांसे रुखसत करूंगा ।"

दानिशमंद । " हजूरका हुक्म सुनकर बहुत खुशी हासिल हुई ।"

औरंगजेब । " क्यों ? " औरंगजेबका मुख वैसाही हास्यमय था, परन्तु वह तीव्रदृष्टिसे दानिशमन्दकी तरफ इस कारण देख रहा था कि, उसके मनकी बात जानले ।

बुद्धिमान् दानिशमन्दने कहा " मुझमें कहां ताकत है कि शाहंशाहको सलाह दूं लेकिन हजूर अगर इस रहमदिलीके साथ शिवाजीसे पेश न आकर उसे हमेशाके लिये कैदमें डाल देते, तो बदमाशलोग तरह २ की बातें कहते कि शिवाजीको कैद करना इन्साफके बर्इद हुआ है ।"

औरंगजेब गुस्सा छिपा हँसकर बोला–

" दानिशमंद ! बदमाश आदमियोंके कियेसे औरंगजेबका कुछ फायदा व नुकसान नहीं हो सक्ता, लेकिन इन्साफ और रहम तख्तके गहने हैं; पहले तो इन्साफसे शिवाजीको उसके कसूरसे होशियार करके बादको रहमके साथ बाइज्जतके उसे रुख्सत् करूंगा । "

दानिशमंद–ऐसीही भलाइयोंसे हजूरके दादा अकबरने मुल्ककी बादशाहत की थी, और इन्हीं नेककामोंके जरियेसे हजूरका नाम और इकबाल दिन २ बढैगा । "

औरंगजेब । " किसतरह ? "

दानिशमंद । " हजूर सब जानते हैं । देखिये जिसवक्त अकबरशाह तख्तपर बैठे थे उस वक्त तमाम बादशाहत पुर दुश्मन थी, राजस्थान, बिहार, दक्खन, सबही जगह बागी थे, यहांतक कि दिल्लीके आसपासके मुकाम भी दुश्मनोंसे खाली नहीं थे । लेकिन उनके मरते वख्त सब बादशाहत बेअद और फूटसे दूर थी, जो लोग पेश्तरजानी दुश्मन थे उन्हीं राजपूतोंने बादशाहकी इतायत कबूल कर काबुलसे लेकर बंगालतक दिल्लीके बादशाहका निशान उडाया था, यह जीत किसतरह हुई ? हिम्मतसे या तलवारके जोरसे ? तैमुरके खानदानमें सबको यह मर्तबे हासिल थे, फिर क्या सबब है कि वह ऐसी जीतसे बरतरफ रहे ? गरीब परवर ! ऐसी जीत सिर्फ नेकी करनेहीसे हुई थी । अकबरशाह हमेशा दुश्मःनसे नेकीके साथ पेश आते अपने काबूमें आये हिन्दुओंका हमेशा यकीन करते; हिन्दू लोगभी उनके साथ वैसाही सलूक करनेकी कोशिश किया करते थे । यहांतक कि मानसिंह, टोडरमल, बीरबल वगैरह हिन्दूलोगही मुसलमान बादशाहतके थामनेको सतूनकी मुआफिकथे नेक आदमी परभी यकीन न करनेसे वह बद होजाता और बद वह काफिरका यकीन भी करनेसे, वह रफते २ यकीनके लायक होजाता है; चुनाचे दक्खनकी मुहीममें शिवाजीने हमारी बहुत मदत की अगर उसकी इज्जत की जायगी तो जबतक वह जिन्दा रहैगा दक्खनमें मुगलोंके बादशाहतका एक थंभ खडा रहेगा ! "

हमारे पाठकगण समझगये होंगे कि दानिशमंद किस कारण औरंगजेबसे मिलने आया था । शिवाजीको बलाकर बंदी करनेसे जितने ज्ञानी और सदा

चारी मुसलमान सभासद थे वह सब लज्जित हुये थे, औरंगजेब दानिशमन्दकी इज्जत करता था इसीकारण वह बातोंही बातोंमें बादशाहकी कुप्रकृति और घृणित उद्देश्य दिखलानेके लिये तैयार था। दानिशमंद इसी आशयसे आया था कि बादशाह शिवाजीको प्रतिष्ठापूर्वक उनके देशको बिदा करै। दानिशमंद यह नहीं जानता कि, चाहै हाथसे बडे भारी पहाडका चलाना सहज है; लेकिन परामर्शद्वारा औरंगजेबकी दृढ़प्रतिज्ञा और गंभीर आशयोंका टालना सरल नहीं।

दानिशमन्दकी उदार और सारगर्भित बातें कुटिल औरंगजेबके मनोगत न हुईं। वह कुछ हँसकर बोला—

"दानिशमंद क्या कहना है? तुम बडे अक्लमंद हो। दक्खनमें तो शिवाजी थंभ रहे; राजस्थानमें पहलेही बागियोंने थंभ अडा रक्खा है। कश्मीर फिर खुद मुख्तार कर दीजाय, और बंगालमें फिर इज्जतके साथ पठानोंको बुलाया जाय; तो इन चार थंभोंके ऊपर मुगलोंकी बादशाहत बहुत खुबसूरती और मजबूतीसे जमजायगी!"

दानिशमन्दका मुँह लाल होआया, उसने सरलभावसे कहा हजूरके वालिद मुझपर बहुत इनायत करते थे और जहांपनाह भी ज्यादा इनायत करते हैं, इसी वजहसे कभी २ दिलकी बात अर्ज करता हूं। बरन् बंदेको यह इल्म व अक्ल कहां है जो हजूरको सलाह दूं।"

औरंगजेब दानिशमंदको वेवकूफ जानकरभी उसकी ईल्मियतको देखकर स्नेह करता था; उसको इस बातसे कुछ कष्ट हुआ जानकर बोला—

दानिशमंद! मेरी बातसे कुछ बुरा मत मानना। बादशाह अकबरके अक्लमंद होनेमें कोई शक नहीं, लेकिन उन्होंने काफिर व मुसलमानको एक नजरसे देखकर क्या मजहबकी तौहीन नहीं की थी? और एक बात दरियाफ्त करता हूं कि, हमारे आमसे आम काम भी अपने हाथसेही बहुत ठीक जहूरमें आते हैं, फिर ऐसे बडे बादशाहतके काम अगर खुद कियेजांय तो क्या बुराई है? जो अपनेही जोरसे तमाम हिन्दोस्थानका बन्दोबस्त करसकें फिर क्या जरूरत है कि नालायक काफिरोंकी मदद लें। औरंगजेब बालकपनहीसे अपनी तलवारके भरोसे रहा अपनीही

तलवारसे तख्तका रास्ता साफ किया है; मैं बगैर किसीकी मदद लिये बगैर किसीका यकीन किये अपने मुल्कका बंदोबस्त खुद करलूंगा "।

दानिशमंद—" बंदे परवर! रोजीना कार्रवाई अपने हाथसे हो सक्ती है, लेकिन ऐसी बादशाहतका काम क्या बगैर किसीकी मददके चल सक्ता है, आप क्या हमेशा दक्खन और बंगालमें रहसक्ते हैं, बगैर किसीको मुकर्रर किये काम किस तौरसे चलेगा ? "!

औरंगजेब—" कारिन्दे जरूरही रक्खे जांयगे, लेकिन ऐसे जो हमेशा नौकर की तरह रहैं, यह नहीं कि, मालिक होना चाहैं! आज मैंने किसीको ज्यादा अख्त्यार दे दिया, कल वही मेरे बरखिलाफ काम कर सक्ता है, आज जिसका ज्यादा यकीन कियाजाय कल वही दगाबाजी करसक्ता है। इस सबब अखत्यार और यकीन दूसरेके हाथ न देकर अपने हाथहीमें रखना मुनासिब है। दानिशमंद जब तुम घोडेपर चढे हो तब लगामके जरिये उसको अपनी मरजीके मुआफिक हर तरफ फेर सक्ते हो। इसी तौर बादशाहको बन्दोबस्त करना चाहिये, न किसीका यकीन करना मुनासिब, न किसीके हाथमें अखत्यार देना मुनासिब, सब अपनेही काबूमें रक्खे, ओहदेदारों और फौजी अफसरोंका अपने काबूमें रखकर उनसे काम लेना ठीक है "।

दानिशमंद—" हजूर! आदमी तो घोडा नहीं, क्योंकि इसमें नेकी और इज्जत की दो भारी सिफात हैं "।

औरंगजेब—" यह मैं भी जानता हूं कि, आदमी घोडा नहीं " इसीवास्ते घोडे लगामके जरिये और आदमी उम्मैद तरक्की व डरके जरिये चलाये जाते हैं, जो अच्छा काम करेगा उसको इनाम दिया जायगा, जो बदकाम करेगा वह सजा पावेगा। इनामकी उम्मैद व डरके जरियेसे सबही काम होजाँयगे, लेकिन अखत्यार यकीन, सलाह यह तीन बातें औरंगजेब अपने दिल और हाथोंके जोरपर मुनहसिर रक्खेगा "।

दानिशमंद—" खुदावंदन्यामत! इनामकी उम्मैद और सजाका डर भी हरेक आदमीके दिलमें जुदा २ तौरसे होता है। आदमीमें तारीफ ऊँचे २ मनसूबे और इज्जत होती है। जो सजाके डरसे काम करता है वह सिर्फ उतनाही काम करता

है जितना कि, उसके सुपुर्द किया जाता है; लेकिन वह जिसका कामसे यकीन कर लिया जाय, वह बादशाहको कामसे उतनाही खुश करनेके लिये अपना जान मालतक देनेमें उज्र नहीं करते, उसका सबूत तवारीखोंमें पूरे तौरसे पाया जाता है "।

औरंगजेब हँसकर बोला–

" दानिशमंद ! मैं तुम्हारी मुआफिक तवारीखका जाननेवाला नहीं; आदमीकी आदतही मेरी तवारीख है, शायरीके लिखे हुए पर मेरा ऐतकाद नहीं आदमीकी लायक बरी मैंने थोडेही आदमियोंमें देखी है; अलबत्ता बेवकूफी, दगाबाजी, फरेब बहुत देखनेमें आया है उन तवारीखोंको पढकर मैंने अखत्यार अपनेही हाथमें रखना सीखा है और इसी सबब काफिरोंपर जिजियाकर लगाया है, जो राजपूत बगावत करनेके ख्वाँहा हैं उनको पूरी सजा दी जायगी और मुल्क दक्खन बेअदू करके विजयपूर और गलखन्द अपने काबूमें ला हिमालियासे लेकर कन्याकुमारीतक सिर्फ औरंगजेब बादशाहत करेगा, मुझको किसीकी मदत व सलाह दरकार नहीं है । "

उत्साहसे बादशाहकी आंखें उजली होगई, वह कभी किसीके सामने अपना गुप्त आशय नहीं कहता था, परन्तु आज बातोंही बातोंमें बहुत भेद प्रकाश होगया । वह यह भी जानता था कि दानिशमंदके सामने यदि कोई बात खुल भी जाय तो इस उदार पुरुषसे कुछ हानिकी संभावना नहीं होगी ।

कुछ विलम्बके उपरान्त औरंगजेब हँसकर बोला " अय मेरे प्यारे दोस्त ! क्या आज कुछ मेरा मतलब समझे ? " ।

चालाक औरंगजेब यदि उस दिन अपनी गम्भीर परामर्शका कुछ भाग छोड-कर सरल दानिशमंदकी बात मानता तो भारतवर्षमें अति शीघ्र मुसलमानोंका राजध्वंस नहीं होता !

"इस प्रकार कथोपकथन होरहा था कि, इतनेमें एक दूतने आकर संवाद दिया–"

" रामसिंह हुजूरकी कदमबोसीके लिये दरवाजेपर खडे हैं " ।

बादशाहने आज्ञा दी, " आने दो " ।

तत्काल राजा जयसिंहके पुत्र रामसिंह राजभवनमें उपस्थित हुए । हमारे पाठ-कगण रामसिंहको प्रथमसेही जानते हैं, इनके देहका गठन बडा ऊंचा था, माथा

चौडा नेत्र उज्ज्वल और तेजपूर्ण शरीर यौवनकी कांतिसे दीप्त था, बलसे पूर्ण था। युवक धीरे २ बोले।

यद्यपि इस समय सम्राट्से साक्षात् करना ढिठाई है परन्तु अब पिताके समीपसे एक आवश्यकीय संवाद आया है वह सम्राट्से निवेदन करना है।

औरंगजेब ! "आज मैंने भी तुम्हारे पिताका एक खत पाया है, उस खतके जरिये कुलहाल मालूम होगया "।

रामसिंह—तो सम्राट्को यह ज्ञात है कि पिताने सब शत्रुओंको हराय उनका देशभेदकर राजधानी विजयपुर पर चढाई की थी परन्तु अपनी सेनाके कम होनेसे वह अबतक यह नगर नहीं लेसके, विशेष यह कारण हुआ कि गुलखन्दके सुलतानने बिजयपुरकी सहायताके लिये नेकनामखां नामक सेनापतिको बहुत सेनाके साथ भेजा है।"

औरंगजेब—"सब मालूम है।"

रामसिंह—"पिता चारों तरफसे शत्रुद्वारा घिरकर अभीतक हजूरकी आज्ञासे युद्ध किये जाते हैं; परन्तु इस प्रकारके युद्धमें जय संभव नहीं; बादशाहसे पिताजीने थोडीसी सेना सहायताके लिये मांगी है।"

औरंगजेब—"तुम्हारे वालिद बहादुरीमें अव्वल हैं, क्या वह अपनी फौजके जरिये विजयपुरको नहीं लेसकेंगे ?"

रामसिंह—"जहांतक मनुष्यकी सामर्थ्य है वहांतक पिताजी भी कसर नहीं रक्खेंगे शिवाजी पहले किसीके वशमें नहीं आये, उनको पितानेही परास्त किया विजयपुर प्रथम नहीं घेरा गया, पिताने इतनी दूर जाकर उसपर चढाई की अब वह आपसे केवल अल्पसेना मांगते हैं, विजयपुरको फतह करते ही यह सब कार्य सिद्ध होगा और दक्षिणदेशमें मुगलोंका राज बडा दृढ होजायगा।"

इस अवसरमें यदि कोई और सम्राट् होता तो वह अवश्य सहायता भेजकर दक्षिण देशकी विजयका कार्य समाप्त करता औरंगजेब अपने आपको दूरदर्शी और बुद्धिमान् समझता था परन्तु इसने तोभी सेना नहीं भेजी। और कहा—

"रामसिंह ! रामसिंह ! तुम्हारे वालिद मेरे बडे दोस्त हैं, उनपर मुसीबतका आना सुनकर मुझे बडा रंज हुआ, मैं उनको खतमें लिखूंगा कि मैं दिन रात यही

चाहताहूं कि आप अपने जोर व तलवारके जरियेसे दुश्मनोंपर फतह हासिल करें लेकिन इसवक्त देहलीमें बहुत थोडी फौज है इस सबब फौज भेजनेको मैं मजबूरहूं।"

रामसिंह कातर स्वरसे बोले, मेरे पिता दिल्लीश्वरके प्राचीन सेवक हैं, उन्होंने आपके वक्तमें, आपके पिताके वक्तमें अनेक युद्ध करके बहुतेरे कार्य साधन किये हैं दिल्लीश्वरके कार्यके सिवाय उनका और कोई आशय नहीं यदि इस समय आप उनकी सहायता नहीं करेंगे तो बोध होता है कि वह सेनासहित वहीं मारे जायँगे, रामसिंहका कण्ठ रुकगया नेत्रोंमेंसे आंसू निकलने लगे ।

बालक ! आंसूकी बूँदसे औरंगजेबका गंभीर आशय और अटल प्रतिज्ञा नहीं टलेगी ।

वह आशय और वह यंत्रणा क्या है ? राजा जयसिंह अतिशय सामर्थ्यवान् प्रतापान्वित सेनापति थे उनकी असंख्य सेना थी और विस्तीर्ण यश था प्रतापी भी बडे थे यद्यपि उन्होंने जन्मभर निष्कलंकतासे दिल्लीश्वरका कार्य किया था परन्तु इतनी सामर्थ्य किसी सेनापतिको नहीं चाहिये; बादशाह सेनापतिका इतना विश्वास नहीं करसक्ता, इस युद्धमें यदि जयसिंह पराजित होंगे, तो उनका प्रताप व यश कुछ २ घटेगा, यदि वह सब सेनासहित विजयपुरमें मारे जांय तो दिल्लीश्वरके हृदयका एक कांटा निकलजायगा, व्याधके जालके समान औरंगजेबके आशय बडे और अव्यर्थ थे, आज उसमें पक्षी रूप महाराज जयसिंह पडे अब उद्धार नहीं ।

"जयसिंहने बहुत कालतक प्राणका दाँव लगाय दिल्लीश्वरका कार्य किया था परन्तु क्या इसके लिये आज सूक्ष्म मंत्रणाजाल व्यर्थ होजायगा ? "

यथार्थमें आज जयसिंहके उदार चरित्र युवक रामसिंहके सन्मुख रो रहे हैं; परन्तु क्या बालकका रुदन सुनकर औरंगजेब अपने आशयको छोड देगा ?

दया माया इत्यादिक सुकुमार बातोंके समूहको औरंगजेबने कभी विश्वास नहीं किया; वह अपना स्वार्थमार्ग साफ करनेके अर्थ किसीको कुछ नहीं गिनता था। एकदिन, बाप, भाई, भतीजे और कुटुम्बी इस उन्नत मार्गमें आय पडे थे, धीरे २ उन सबको उस मार्गसे निकाल दिया था, उसने कुछ पिताको मोहवश होकर जीवित नहीं रक्खा, बडे भाई दाराको क्रोधसे नहीं मारा; इन सब बालकोंके

लायक मनोवृत्तियोंने उसके मनमें स्थान नहीं पाया था. औरंगजेबने सोच रक्खा था कि, पिताके जिन्दा रहनेसे आगेको किसी आपत्तिकी संभावना नहीं और न अपने कार्यसिद्ध करनेमें कुछ विघ्न हो इसलिये इसके पडा रहनेमें कुछ हानि नहीं। लेकिन बडे भाईके जिन्दा रहते अपना दिली मतलब कभी पूरा नहीं हो सकेगा; जल्लाद! उसको मारकर आलमगीरका रास्ता साफकर।

आज अपना काम सुधारनेके लिये सम्राट्की जयसिंहके सेनासहित निहत होजानेकी आवश्यकता है, वह अच्छे हों या बुरे; विश्वासी हों या विद्रोही हों। इसके अनुसन्धान करनेकी कोई आवश्यकता नहीं। वह सेनासहित मरें। इस परामर्श होनेके कुछ ही दिन पश्चात् संवाद आया कि, अपमानित और पराजित महाराज जयसिंहका देवलोक होगया।

यह सुन रामसिंह औरंगजेबके पास आयकर बोले-

" जहाँपनाह! मुझे कुछ आपसे अर्ज करनी है।

औरंगजेब-" कहिये। "

रामसिंह-जब शिवाजी दिल्ली आनेको थे तब पिताने उनको वचन दिया था कि दिल्लीजानेमें तुम्हें कोई विपद् नहीं पडेगी। "

औरंगजेब-" आपके वालिदके लिखनेसे सब हाल मुझको मालूम है। "

रामसिंह-राजपूतोंमें वचन देकर पलट जाना बडे निन्दाका कार्य है, पिताकी प्रार्थना और मेरी प्रार्थनासे शिवाजीका कोई अपराध हुवाभी हो तो भी क्षमाकर उनको बिदा कीजिये। "

औरंगजेब क्रोधको रोक धीरे २ बोला, " इसके लिये आप कोई फिकर न कीजिये जो मुनासिब मालूम होगा वही किया जायगा। "

तब रामसिंह व्याकुल हो उस गृहसे चले आये।

आज शिवाजीरूपी एक दूसरा पक्षी सम्राट्के उस मंत्रणाजालमें फँसा है; दानिशमन्द और रामसिंह उस जालसे शिवाजीका उद्धार नहीं करसके।

जयसिंह और शिवाजीका एकही दोष था; यद्यपि शिवाजीने सन्धि होनेके पश्चात् प्राणपनसे दिल्लीश्वरके कार्यमें मन लगाय बहुत युद्ध कर कई दुर्ग उनके

अधिकारमें कराये थे; परन्तु इनकी भी सामर्थ्य बहुत थी, औरंगजेब यही चाहता था कि उसके किसी अनुचरमें कुछ भी स्वतंत्रता न हो ।

जिसका बराबर अविश्वास किया जाता है वहभी धीरे २ से अविश्वासके योग्य होजाता है । औरंगजेबके जीवित रहतेही महाराष्ट्री और दिल्लीके चिर विश्वासी राजपूतोंने जो भयंकर समरकी आग जलाई उसमें मुगलराज्य भस्म होगया था ।

सत्ताईसवाँ परिच्छेद ।

पीडा ।

" जटा अजिन सब दीन्ह उतारी । "

समस्त दिल्ली नगरमें यह बात फैलगई कि, शिवाजीके अतिभयंकर रोग हुआ है उनके घरके द्वार और खिडकियें सदा बंद रहतीं और रात दिन वैद्य आते जाते थे कोई कहते थे कि, आज रोग ऐसा प्रबल है कि कलतक जीना भारी है । कभी खबर उडती कि शिवाजी इस लोकमें नहीं हैं; राजमार्गसे होकर बहुत मनुष्य आते जाते और उन लगी हुई झरोंखोंकी ओट उंगली उठाते थे, सवार सिपाही और सेनापतिगण घोडा थँभायकर पहरेवालोंसे शिवाजीका समाचार पूँछते थे " शिवाजी कैसे हैं ? " वह छोडदिये जांयगे या नहीं. वह कलतक जीवित रहेंगे या नहीं, इस रीतिसे अनेक प्रकारकी बातें बाजार, मार्ग और घाटोंपर नगरवासी कहा करते थे । औरंगजेब भी सदा शिवाजीके रोगका समाचार जान लेता था परन्तु गृहके चारों ओर पहरेदार वैसीही चौकसीसे रक्खे । दरबारियोंके सामने मिसकर शिवाजीके लिये दुःख प्रकाश करता, परन्तु मनमें सदा यही विचारता कि " अगर इस बीमारीमें शिवाजी मरगया तो वगैर बदनामी के काँटा निकल जायगा । "

संध्या समय होनेको था कि इतनेमें एक प्राचीन भला मानस मुसलमान हकीम डेरेसे शिवाजीके गृहद्वारके निकट आकर उपस्थित हुआ । प्रहरियोंने उससे

पूछा कि " आप किस मतलबसे शिवाजीके पास जाया चाहते हैं ? " हकीमने उत्तर दिया " बादशाहके हुक्मसे मरीजकी दवा करने आया हूं " प्रहरियोंनें मार्ग छोडदिया।

शिवाजी शय्यापर लेट रहे थे इतनेमें प्रतिहारीने आकर संवाद दिया कि "बादशाहने एक हकीम भेजा है।" तीव्रबुद्धि शिवाजीको संदेह हुआ कि बादशाहने इस हकीमको मुझे विष दिलवानेके प्रयोजनसे भेजा है; यह विचार प्रतिहारीको आज्ञा दी–" हकीमजीसे कहो कि हिन्दू वैद्यगण मेरी चिकित्सा करते हैं, मैं और किसीकी चिकित्सा नहीं कराया चाहता और बादशाहके इस अनुग्रहका मैं शत २ धन्यवाद देता हूं।" परन्तु प्रतिहारीके इस संवादके लेजानेसे प्रथमही हकीमजी शिवाजीके गृहमें चले आये।

शिवाजीके हृदयमें क्रोधका संचार हुआ, किन्तु उन्होंने उसको छिपाकर अति दुर्बल और मीठे स्वरसे हकीमजीका आदर किया, अपनी शय्याके एक कोनमें बैठनेकी आज्ञा दी; हकीमजी बैठगये।

रूप और मुख देखनेसे तो ऐसे पुरुषपर कुछ संदेह नहीं हो सक्ता। उमर अधिक थी। डाढी सफेद होकर छातीकी शोभाको बढा रही थी; हकीमके शिर-पर पगडी थी, इनका स्वर धीर व गंभीर था। हकीमजी बोले–

"आपने नौकरको जो इरशाद किया वह मुझे मालूम हुआ, आप मेरा मुवा-लाजा नहीं चाहते हैं, तो हम आदमीकी जान बचाना हमारा फर्ज है मैं अपना फर्ज अदा करूंगा।"

शिवाजी मनमें क्रोधित हो विचारने लगे कि, यह नई विपद् कहांसे आई ? पर कुछ बोले नहीं।

हकीम। "आपको क्या मर्ज है ?।

कातरस्वरसे शिवाजी बोले, "नहीं जानता कि, यह क्या भयंकर रोग है, शरीरमें सब जगह दर्द और हृदय आठपहर आगके समान जलता रहता है।"

हकीमजी गंभीर स्वरसे बोले। मर्जकी बनिस्वत गुस्से (जिघांसा) से बदन ज्यादा जलता है, यह तकलीफ बाजवक्त मनकी तकलीफसे पैदा होती है क्या आपको ऐसाही मर्ज है ?

विस्मित व भ्रांत होकर शिवाजीने हकीमकी ओरको देखा तो वह प्रथम के समान गंभीर दृष्टि आया और उसके मुखपर कोई संदेहका चिह्न दिखाई नहीं देता था। शिवाजी चुप रहे, परन्तु हकीमने कुछ विलम्ब पश्चात् इनका शरीर और हाथ देखना चाहा।

शिवाजीने डरते २ हाथ और शरीर दिखला दिया।

बहुत देरतक भली भाँति देख भालकर हकीमजी बोले—

नब्ज तो बीमारीकी माफिक कमजोर नहीं मालूम पडती, रगोंमें खून जोरके साथ बह रहा है, पेशीयें भी पेश्तरसी मजबूत मालूम होती हैं। क्या यह सब आपकी धोखेबाजी है?।

फिर विस्मित होकर शिवाजीने उस अनोखे हकीमकी ओर देखा, लेकिन उसके मुखपर गंभीरता और नम्रताके अतिरिक्त कोई दूसरा चिह्न नहीं ज्ञात होता था। शिवाजीके वदनका रुधिर गर्म होचला परन्तु वह क्रोधको रोंककर बोले।

जो आपने कहा वही और सब वैद्य कहते हैं, इस भारी रोगके कुछ बाहरी लक्षण नहीं जान पडते; परन्तु यह दिन दिन तिल २ करके मेरा जीवन नाश किये देता है।

कुछ देर चिन्ताकर हकीमजी बोले।

"आल फला उला व लायल्लन" दो किताबें जो हमारे यहां की तिबाबतमें मशहूर हैं उनमें एक हजार एक मरजोंका हाल लिखा है और कई एक ऐसे मरजोंकाभी बयान है जैसा कि, आपको है, जिसमें एक तो "आकल तुसामा काता हत्तारा शिरा है" बालक इस मर्जके बहानेसे मछलियां चुराकर खाते हैं, इसकी दवा बेंत वगैरहसे मारना। और दूसरा 'वकुशतने आसिरी इशारत कर्द।' कैदी काम न करनेके लिये इस मर्जका बहाना करते हैं, इसकी दवा शिरकाटना है। तीसरा एक मर्ज जिसमें बाहरसे कुछ अलामात नहीं मालूम होती है, दुश्मनके हाथसे जो कैदी निकलकर भागना चाहते हैं उसको कभी यह मर्ज तकलीफ देता है उसकी दवाभी लिखी है, इस वक्तमें वही दवा आपको देता हूं।"

शिवाजी इन बातोंका आशय नहीं पासके परन्तु यह जानगये कि, इस तीक्ष्ण बुद्धि हकीमने मेरे मनकी बात जानली वह घवडाकर हकीमजीसे बोले। "वह कौनसी दवा है?"

हकीमजीने उत्तर दिया, "उस दवामें अच्छी बुरी दोनों सिफ्तें हैं।"

रब्बुल आल मिलाका नाम लेकर यह दवा आपको दूंगा, अगर वाकई आपको बीमारी हुई तो फौरनही इस अनमोल दवासे शिफा होगी और अगर धोखेबाजी हुई तो कारी जहरके असरसे फौरनही मर जाइयेगा। यह कह हकीमजी दवाई तैयार करने लगे।

शिवाजीका हृदय काँपगया माथेपरसे पसीना बहने लगा, जो दवाईका खाना स्वीकार न करें तो अभी छल प्रगट होजाय और सेवन करें तो मरें।

जब हकीम दवा तैयार करलाया तो शिवाजीने कहा 'मुसलमानका छुआ हुआ पानी मैं नहीं पीसक्ता" यह कह जोरसे हाथ झटक दवाका बरतन दूर फेंक दिया।

हकीम इस्से कुछ अप्रसन्न नहीं हुआ और धीरे २ बोला, "इस कदर जोरसे हाथ चलाना कमजोरीका निशान है"

शिवाजी बहुत देरसे क्रोध रोके हुए बैठे थे, परन्तु अब न रोंकसके, "रोगीसे हँसी करनेका यही दंड है" यह कहकर एक चपत लगाया और हकीमजीकी डाढी मूंछे जोरसे पकडलीं।

शिवाजीने विस्मित होकर देखा वह जाली डाढी मूछैं दूर होगईं, चपतके लगनेसे पगडी दूर गिरी और उनके बालसखा तानाजी मालुसरे खिल खिल करके हँसपडे।

तानाजी मालुसरेने अतिकष्टसे हँसी रोककर द्वार बंद किया और शिवाजीके निकट बैठकर बोले—

"महाराज क्या आप हकीमोंको सदा ऐसाही इनाम दिया करते हैं? यदि ऐसा है तब तो रोगीकी मृत्युसे प्रथमही वैद्योंकी इतिश्री होजायगी। वज्रतुल्य चपत लगनेसे मेरा शरीर तो अबतक भिन्ना रहा है!"

शिवाजी हँसकर बोले, "बंधु! शेरके साथ खेल करनेसे कभी २ घायल भी होना पडता है। जो हो, तुम्हैं देखकर मैं इतना प्रफुल्ल हुआ कि कुछ कह नहीं सक्ता, मैं तो कई दिनसे तुम्हारी राह देखता था, अच्छा! अब समाचार क्या है?

तानाजी—"आपकी आज्ञा सब पालन होगई, मैं सब निवेदन करता हूं।" बादशाहने जो परवाना दिया था उसके द्वारा आपके सब नौकर चाकर बेखटके दिल्लीसे चलेगये।"

शिवाजी—मैं जगदीश्वरको धन्यवाद देता हूं। अब मेरा मन शान्त हुआ मुझे अपने निकल जानेकी कोई चिन्ता नहीं, क्योंकि आसमानमें उड़नेवाले गरुड साधारण पींजरेमें नहीं रहते।"

तानाजी—"वह समस्त नौकर चाकर दिल्लीसे निकल गुसाइयोंका वेष धारण कर मथुरा वृन्दावनमें वास कर रहे हैं और मथुराके मंदिरोंमें जो पंडे हैं वह भी नित्य आपका मार्ग देखा करते हैं, मैं दिल्लीसे मथुरातक भलीभाँति देखता आया हूं, जिस २ स्थानमें आपने जितने मनुष्य एकत्र करनेकी आज्ञा दी थी वह सब वहां एकत्र करदिये गये हैं।"

शिवाजी—" मित्र। तुम्हारे समान चतुर बंधु पाकर मैं अवश्यही वहांसे निरापद अपने देशमें पहुँच जाऊंगा"।

तानाजी—" दिल्लीकी परिखाके बाहर आपने जैसा द्रुतगामी एक घोडा रखनेको कहा था वह भी रक्खा है, जिस दिनको आप स्थिर रक्खेंगे उसी दिन सब सामान तैयार रहेगा"।

शिवाजी—" अच्छा "

तानाजी—" राना जयसिंहके पुत्र रामसिंहके पास गया था उनके पिताने आपको जो वचन दिया था वह भी उन्हें स्मरण करा दिया। रामसिंह अपने पिताके समान सत्यवादी और उदार हैं. मैंने सुना है कि, उन्होंने स्वयं बादशाहके निकट जाय आंसूभर आपके छुडानेके लिये प्रार्थना की थी।"

शिवाजी-" बादशाहने क्या कहा?"

तानाजी—" उन्होंने कहा जो मैं मुनासिब समझूंगा सो करूंगा"।

शिवाजी—" विश्वासघातक! कपटाचारी! एक दिन अवश्यही शिवाजी इस का बदला लेगा "

तानाजी—" यद्यपि रामसिंहका मनोरथ पूरा न हुआ, परन्तु उन्होंने मुझसे क्रोध करके यह कहा कि, राजपूतोंका वचन मिथ्या नहीं होता धनसे, सेनासे

जैसा हो सकेगा वह आपकी सहायता करेंगे, इससे यदि उनका प्राणतक चलाजाय तो वह कुछ चिन्ता नहीं करते "।

शिवाजी–" क्यों न हो पिताहीके समान पुत्रने गुण पाये हैं परन्तु मैं उनको विपद्में डालना नहीं चाहता, मैं जो भागनेका उपाय कर चुका हूं, सो क्या तुम उनसे कह चुके हो "।

तानाजी–" हां, वह उसको श्रवण कर अतिसंतुष्ट हुए, सब प्रकारसे आपकी सहायता करनेमें सम्मत हुए हैं "।

शिवाजी–" भला फिर ? "।

तानाजी–" इसके अतिरिक्त दानिशमंद इत्यादिक सब औरंगजेबके सभासदोंको मीठी बातोंसे या धनसे वा नजर देकर अपनी तरफ कर लिया है। दिल्लीमें क्या हिन्दू क्या मुसलमान ऐसा कोई रईस नहीं है जो आपकी तर्फ न हो, परन्तु औरंगजेब किसीकी बात नहीं मानता "।

शिवाजी–" अच्छा तो सब सामान ठीक है। अब मैं आरोग्यलाभ करसक्ता हूं "

तानाजी हँसकर बोले " जब मेरे समान चतुर हकीमने आपके रोगकी औषधी की है. तब कहीं रोग रह सक्ता है ? " लेकिन मैंने जो आपके पीनेको उमदा शरबत बनाया था वह क्या आपने सबही नष्ट कर दिया ? "।

शिवाजी बोले "मित्र ! अब और बना दो;" तानाजीने उसी बरतनको लेकर फिर शरबत बनाया और शिवाजी उसे पीकर बोले, " वैद्यराज ! आपकी औषधी जैसी मीठी है वैसीही फलदायकभी है, मेरा रोग तो एक बारही आराम हो गया "।

तानाजी–" महाराज ! अब मैं जाता हूं "। शिवाजीसे प्रेमसहित मिल और फिर वही जाली डाढी मूंछ लगा हकीमजी वहांसे चले गये।

द्वारपर प्रहरीने कहा " हकीमजी मर्ज कैसा है ? "।

हकीमजीने उत्तर दिया, " मर्ज तो बडाही हलाकी था, लेकिन मेरी कामिल दवाइयोंसे बहुत घटा है, मैं खयाल करता हूं कि, बहुत थोडे वक्तमें शिवाजी इस मर्जसे बखूबी रहाई पावेंगे "।

हकीमजी पालकीपर चढकर चले गये; एक प्रहरी दूसरेसे बोला—

" भाई यह हकीम बहुत अच्छा है, इतने हकीम जिस मर्जको आराम न करसके उसको इन्होंने एक दिनमें किस तरह अच्छा किया ? " ।

दूसरे प्रहरीने उत्तर दिया, भाई क्यों न हो, यह सर्कारी दरबारके हकीम हैं ।

अट्ठाईसवाँ परिच्छेद ।

आरोग्य ।

"भ्राता तुम मम जीवन प्रान ।
क्षमा करहु सब चूक हमारी जो कछु भई अजान ॥
अनुचित बहुत कहेउँ बिन समझे ताकोजइयो भूल ।
आवत याद जबहिं वे बातें उठत करेजे शूल ॥

पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र.

जो बात प्रथम वर्णन कर आये हैं इसके कई दिनबाद सब नगरमें यह बात फैलगई कि, अब महाराज शिवाजीको कुछ आराम है । नगरमें फिर धूमधाम पडगई, जहां तहां सब यही बातें करने लगे । कोई २ इस वार्त्ताको सुनकर दुःखित भी हुए और कोई २ भले मुसलमान भी इनका आरोग्य संवाद पाकर प्रफुल्लित हो उठे. हाट, बाट, चौहटे, गली, कूचे और मंदिर मसजिदोंमें इसी वार्त्ताका कथोपकथन होने लगा औरंगजेबने भी यह समाचार पाकर यथोचित संतोष प्रकाश किया ।

नगरमें धूम पडगई । शिवाजी ब्राह्मणोंको मुद्रादान करने लगे, देवालयोंमें पूजा भेजने लगे और वैद्योंको बहुत धन देने लगे । इतनी मिठाई बाँटी कि, दिल्लीसे बडे नगरमें मिठाईका नामतक न रहा । शिवाजी दिल्लीके बडे २ रईसोंके और परिचित सब मनुष्योंके यहां मिठाई भेजने लगे, वरन उन्होंने हरेक मसजिदमें सूफी मुल्ला और शाह साहबोंके लिये बहुत २ सी मिठाई भेजी । बादशाहके मनमें चाहे जो कुछ क्यों न हो परन्तु दूसरे सब लोग शिवाजीकी सज्जनता और मधुर

भाषितासे संतुष्ट होकर प्रशंसा करने लगे। दिल्लीके लड्डुओंकी वर्षा होने लगी उस्से और कोई "पछताया" था या नहीं, यह तो नहीं मालूम, परन्तु औरंगजेब बहुतही शीघ्र पछताया था ।

शिवाजी केवल मिष्टान्न भेजकरही संतुष्ट न होते, बरन उसको मोल लेकर गृहमें मँगाय बडे खोमचे और झालोंमें सजायकर भेजते थे; वह झाल तीन २ या चार २ हाथ लंबे चौडे होते थे, और आठ या दश २ आदमी उनको बाहर लेजाते थे। इसी भाँति नित्य मिठाई बँटने लगी ।

एकदिन संध्यासमय इसी भांतिके दो झालोंमें बैठकर शिवाजी उस कारागारसे बाहर हुये। प्रहरियोंने पूँछा–

" यह किसके मकानपर जायगा ? कहारोंने उत्तर दिया, " राजा जय-सिंहके स्थानपर। "

प्रहरी। " तुम्हारे महाराज और कबतक यह मिठाइयें भेजा करेंगे ? "

कहार। बस आजही और भेजेंगे। "

कहारलोग उन झालोंको लेकर चलेगये ।

कुछेक दूर चलकर एक गुप्त और अँधियारे स्थानमें वह दोनों झाल उतारे गये वाहक लोगोंने चारों ओर देखा कि, कोई जन नहीं, बरन शब्दमात्र तक नहीं, केवल संध्याकालीन पवन " शन शन " शब्द करके चलरहा है; संकेत करतेही एक झालसे शिवाजी और दूसरेसे उनके पुत्र संभाजीने निकलकर ईश्वरको धन्यवाद दिया ।

दोनों अतिशीघ्र वेष बदलकर दिल्लीकी परिखाके सन्मुख जाने लगे. संध्याके समय मनुष्य बहुत थोडे आते जाते थे, परन्तु जभी राजमार्गमें कोईभी पुरुष आता जाता तो संभाजीका हृदय भयसे काँप उठता था। परन्तु शिवाजीपर यह विपद् नई नहीं पडी थी; उनका तो सम्पूर्ण जीवन इन्हीं झगडोंमें बीत चुका था तथापि इस समय उनके चित्तपर भी शोक व उद्वेगकी घटा छारही थी।

कांपते हुए परिखाके पार हुये वहांपर एक पहरेदारने पूँछा, " कौन जाताहै ? "

शिवाजीने उत्तर दिया। " गोसांई। हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्। "

" कहां जाते हो ? "

" मथुराजीको। " कलौनास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा " कहते २ शिवाजी फाटकसे बाहर होगये।

परिखाके बाहर भी बहुत महल. दुमहले थे और उनमें बडे अमीर उमराव वास करते थे; शिवाजी और संभाजी उन सबको एक ओर छोड शीघ्रता सहित मार्गमें चलने लगे। " हरेर्नाम हरेर्नाम " इत्यादि चलते २ उन्होंने देखा कि, एक घोड़ा सजा सजाया खडा है, यह अति सतर्क भावसे उसी ओर चले; और जाकर देखा कि वास्तवमें जिस घोडेको तानाजीने कहा था यह वही है और सोच विचारकर अश्वरक्षकसे पूँछा।

" भाई, अश्वरक्षक! तुम्हारा नाम क्या है?

" जानकीनाथ। "

" कहाँ जाओगे? "

" मथुरा वृन्दावन। "

शिवाजी बोले, " हां यही घोडा है। " शिवाजी आगे और संभाजी उनके पीछे घोडेपर चढ मथुराजीकी ओर चले। अश्वरक्षक भी पीछे २ पैरों २ आने लगा।

अँधियारी रात्रिमें गांव और पल्लियोंको छोडकर शिवाजी चुपचाप चले जाते हैं। आकाशमें तारे डब डबा रहे हैं, कभी २ थोडे २ मेघ गगनको एक बारही छालेते हैं; वर्षाकालका समय होनेसे उमडी हुई यमुनाजी प्रबल बेगसे चली जाती हैं. मार्ग घाट, कीचड और जलसे भर रहे हैं, शिवाजी घबडाये हुये भागे जाते हैं।

दूरसे घोडोंकी खुरतालोंका शब्द सुनाई आया; शिवाजीने छिपनेकी चेष्टा की, परन्तु वहां कोई झाड वा वृक्ष नहीं था; इस कारण उनको चलतेही बनपडा।

तीन सवार सरपट दिल्लीकी तरफ चले आते थे उनके म्यानमें तलवार और हाथोंमें बर्छे शोभायमान थे; वह दूरसे शिवाजीके घोडेको देख उसी तरफ आये। शिवाजीका हृदय घबडाहटसे धक २ करने लगा, निकट आकर एक सवारने पूँछा कौन जाता है? "

शिवाजी " गोसांई "

सवार। " कहांसे आते हो? "

शिवाजी । " दिल्लीसे "

सवार । " हमभी दिल्ली जाँयगे लेकिन रास्ता भूलगये हैं सो हमें रास्ता दिखलाकर फिर तुम देहलजाना । "

शिवाजीके माथेपर वज्र टूटपडा । जो अब दिल्लीमें न जांय तो यह लोग बलप्रकाश करैंगे और कदाचित् विवादके समय पहुँचाने भी जांय. क्योंकि दिल्लीमें ऐसा कोई सिपाही नहीं था जिसने शिवाजीको न देखा हो और दिल्लीमें जांय तो महाविपद है । इसी प्रकारकी चिन्ता इनके हृदयको व्याकुल करने लगी ।

एक सवार तो शिवाजीसे बात करता था और दो सवार चुप चाप कुछ बातें कर रहे थे, वह क्या बातें थीं ?

एक सवारने कहा, "इसकी आवाज़ तो मैं पहचानता हूं, मैंने मुल्क दक्खनमें शाइस्ताखांके पास बहुत दिन हुए फौजमें नौकर था, मैं ठीक २ कह सक्ता हूं कि यह गोसांई नहीं है । "

दूसरा बोला, "तो फिर है कौन ?

मैं ख़याल करताहूं कि यह खुद शिवाजी है, क्योंकि दो आदमियोंकी आवाज एकसी नहीं हो सक्ती । "

"अबे चल अहमक ! शिवाजी तो देहलीमें कैद हैं । "

मैंने भी एक दिन यही खयाल किया था कि, शिवाजी तो सिंहगढके किलेमें कैद हैं लेकिन उसने एक दिन आनन फानन आय पूनापर चढाईकर उसको तवाह कर डाला था । "

"अच्छा इसके शिरकी पगडीही उतारकर देखनेसे सब शक रफअ होजायगा ।"

सहसा एक सवारने आकर शिवाजीकी पगडी उतारकर दूर फेंकदी; शिवाजीने उसको देखकर पहचान लिया कि, यह शाइस्ताखांके अधीनका एक प्रधान सेनापति है ।

यदि शिवाजीके हाथमें कोई हथियार होता तौ यह अकेले उन तीनोंको घायल करनेकी चेष्टा करते खाली हाथ थे तौ भी एक सवारको घूंसामारकर बेहोशकर दिया, इतने हीमें और दो खड्गधारी सवारोंने उठकर शिवाजीको पृथ्वीपर गिरादिया ।.

"शिवाजी चुपचाप इष्टदेवको स्मरण करने लगे और विचारा कि, फिर बंदी होजाँयगे अब अवश्य ही भाई बंधुओंसे अलग हो औरंगजेबके हाथ मरना पडेगा फिर संभाजीको देख नेत्रोंमें नीर भरकर बोले "देव महादेव जन्मभर एक मनसे आपकी पूजा की है, हिन्दुधर्मकी रक्षा करनेको युद्ध किया है, अब जो आपकी इच्छा हो वही कीजिये ! " आशा, भरोसा, उद्यम, एक पलके लिये तो यह सब अन्तर्धान होगये ।

इतनेहीमें एक शब्द हुआ, शिवाजीने देखा कि एक सवारकी छातीमें तीर लगा और वह जमीनपर गिरपडा; इतनेमें फिर एक एकतीर उसके बाद दूसरा तीर, जो शिवाजीको पकडे हुए थे वह तीनों यवन पृथ्वीपर गिरकर यमलोककी यात्रा करगये !

शिवाजीने परमेश्वरका धन्यवाद किया और उठकर देखा कि पीछेसे उस अश्व-रक्षक जानकीने यह तीर छोडेथे ।

विस्मित हो जानकीको धीरे बुलाय अपने प्राणरक्षाके कारण शत २ धन्यवाद दिया; जब वह निकट आया तो शिवाजीने और आश्चर्यसे देखा कि, वह घोडेका रक्षक नहीं, बरन् सीतापति गोस्वामी अश्वरक्षकके भेषमें हैं ।

तब सहस्रबार ब्राह्मणसे क्षमा प्रार्थना करते हुए बोले, "सीतापति ! तुम्हारे सिवाय विपद् समयमें शिवाजीको अकारणबंधु और कौन मिलेगा ? आपको अश्वरक्षक समझ तुच्छ जाना था सो क्षमा कीजिये । क्या मैं इस कार्यके अर्थ आपको कुछ पुरस्कार दे सक्ता हूं ? ।

सीतापति घुटनोंके बल बैठ हाथ जोड शिवाजीसे बोले । राजन् ! क्षमा कीजिये न यह दीन अश्वरक्षक है. न गोसांई हैं, परन्तु यह वही आपका प्राचीन सेवक रघुनाथ हवालदार है, जबसे कुछ ज्ञान हुआ आपहीकी सेवा करता है और जन्मभर आपकी सेवा करूं इसके भिन्न कोई कामना भी नहीं है न कोई इनाम मुझे चाहिये, मैं केवल यही चाहता हूं कि यदि पहले कोई दोष अनजानमें किया हो तो उसे क्षमा कीजिये ।

शिवाजी चकित और वाक्यशून्य थे, परन्तु वह अपने हृदयके वेगको नहीं रोकसके; बालकके समान रोकर रघुनाथको छातीसे लगाकर बोले,

" रघुनाथ ! रघुनाथ ! तुम्हारे निकट शिवाजी सैकडों अपराधोंका अपराधी है परन्तु तुम्हारे इस महान् आचरणसे मुझे उचित दंड होगया, तुमपर संदेह किया था; तुम्हारा अपमान किया था वह याद करके मेरा मन टुकडे २ हुआ जाता है । शिवाजी जबतक जीवित रहेगा तुम्हारे गुण नहीं भूलेगा और यत्नसे यदि यह बडा ऋण चुकजाय तो मैं उसमें भी बहुत चेष्टा करूंगा । शान्तिमयी रात्रिके मिलनेसे दोनों सुखी हुए । आज रघुनाथका वृत्त पूरा हुआ शिवाजीके हृदयकी कसक जाती रही, बालकके समान दोनों अनिवारित अश्रुधारा वर्षाने लगे ।

उन्तीसवाँ परिच्छेद ।

गृहमें ।

हृदयमें कठिन उठी है पीर ॥
अब वा देश गवन हमकरि हैं जहाँ न प्रेमसमीर ॥
प्रीत भली कह कौन सखारा यह तो देहु बताय ॥
हँसत २ सब प्रीत करत हैं फिर विलपत तन जाय ॥
उपाजि श्रेष्ठ कुल-कुलमें बसकै जो तिय प्रीतकरै ॥
फूँस अनल सम रातदिना सो जारि २ हिया मरै ॥
याही दुखसों हम अभागिनी नित वरषत जल नैन ॥
बिन 'बलदेव' मिश्रके देखे परे लेनके देन ॥

बलदेवप्रसाद मिश्र.

रात्रिकालमें सीतापति गोसांईसे बिदा लेकर राजपूत कन्या घरपर आई, परन्तु घर आकर सरयूने देखा कि हृदय शून्य है ! कौन नहीं जानता है कि, पहला कष्ट यद्यपि बडा भयंकर और असहनीय होता है, किन्तु पीछे उस वार्ताके याद करनेसे जो दुःख हृदयमें उछलते और चुपचाप आंखोंसे जो आंसू बहते हैं, वह शोक

महामर्मभेदी होता है । संसारमें अपने प्यारेका प्रथम वियोग होनेसे हम बालकोंके समान निराश होकर रो उठते और अज्ञानियोंकी नाई पृथ्वीपर लोटते हैं, परन्तु वह प्रथम शोककी बाढ उस आर्त्तनादहीमें मिल जाती है ! किन्तु दिन बीतने, महीना बीतने, वर्ष बीत जानेपर जब उस प्रियजनकी याद आती है सूनसान रातके अँधेरेमें अपना हृदय शोकके समुद्रमें गोते खाता है; नेत्रोंके पलक खुलकर चुपचाप आंसूं निकल पडते हैं, हाय ! मनुष्यके जीवनमें यही दुःख असहनीय है प्यारेका मुख, प्यारेकी बातें, उसके काम, प्रीति, चाहत अंधकार रात्रिमें जब एक २ करके हृदयमें उदित होते हैं, तबहीं यह हृदय शून्य होकर घबडाता है और हम बालकोंके समान आशा भरोसा छोड अधीर होकर रोने लगते हैं । प्यारे पाठकगण ! हम और प्रियवियोगके दुःख कहांतक गिनावैं, यदि आप लोगोंपर कभी यह दुःख पडा हो तो स्वयं भी इसका अनुभव कर लीजिये, इस दुःखके पडनेसे एक साथ गृहकार्य खाना, पीना, उठना, बैठना, नींदका आना, यह कर्म बिदा हो आते हैं. परमेश्वर किसी पर प्यारेके बिछडनेका दुःख न डाले, अहो ! प्रेमकी गति महाविलक्षण है ?

दिन गया, सप्ताह बीता, इसीप्रकार एक महीना व्यतीत हो गया, सरयूकी चिन्ता दिन २ मर्मभेदी होने लगी । अँधियारी रात्रिमें कभी २ वह लडकी इकली खिडकीसे लगी हुई बैठकर संध्यासे आधीरात और आधीरातसे सबेरेतक बैठ क्या जाने कितनी चिन्ता किया करती, वह कितनीही बातें याद करके आंखोंसे आंसू गिराती और खिडकीमें बैठ मार्गकी ओर निहारती थी, परन्तु उस मार्गसे हृदयवल्लभ अबतक न दिखाई दिये ।

कभी २ वह पर्वतसे घिराहुआ कोंकण देश याद आता, वह तोरण दुर्ग नेत्रोंके सामने फिर आता था । मानो सरयू इकली छत्तपर बैठी है, संध्याकी छाया धीरे २ गगन और जगत्को ढकती हुई चली आती है, संध्याकालीन पवन सरयूके बालोंको उडाकर खेल कर रहा है, इतनेही में वही दीर्घाकार उदार मूर्ति युवा मानों आकाशपटमें देव चित्रकी नाई दृष्टि आये, सयूरका हृदय कांप गया, उस राजपूत बालाका हृदय नवीन भावोंसे मथित होने लगा, आज तीन वर्ष बीतगये हैं; परन्तु सरयूके हृदयसे वह मूर्ति लोप नहीं हुई है ।

उसके दूसरे दिन उस पुरुषसिंहने जो परमप्रीतियुक्त गद्गद वाणी कह सरयू-से बिदा मांगी और डरते २ सरयूके गलेमें जो मुक्तामाल डाल दी थी, जीव रह-ते क्या सरयू यह बातें भूल सक्ती है ? क्या सरयूके कंठमें फिर वह वीर हार पहिरावेंगे ? क्या सरयूको फिर उसके प्राणवल्लभ देखनेको मिलेंगे ? सरयूने एक ठंढी श्वास ली, औ कपोलोंसे बहकर टप २ आंसू गिरने लगे।

कभी २ अकेली सरयू आमके बनोंमें घूमा करती, घूमते २ बहुत बातें हृदयमें जागरित होतीं। पेडके ऊपर कपोत कपोती मधुर स्वरसे प्रेमगीत गारहे थे, उस गीतको सुनकर सरयूको यह बात याद आई कि, मैंने भी एक दिन रघुनाथके कानमें कुछ कहा था, बस याद आतेही सरयूके मुखपर विषादके चिह्न दृष्टि आने लगे और एक दिन इसही विशाल आमके पेडतले सरयू और रघुनाथने एकत्र बैठकर एक आम खाया था; खाते २ एक दूसरेको प्रेमकी दृष्टिसे देखते जाते थे आज यह बात भी स्मरण होगई। इस कण्टकमय वनके भीतर रघुनाथके कांटा लगनेपर भी उन्होंने एक वनफूल तोडकर सरयूके केशोंमें खोंस मधुर वाणीसे कहा था, "सरयू ! आज़ तो तुम सौन्दर्यमई वनदेवीही बन गई हो" । अहा ! क्या वह मधुर स्वर सरयू फिर सुन पावेगी ? क्या फिर रघुनाथ उस दुःखिनी बालाके अर्थ फूल बीनेंगे, क्या हतभागिनीके भागमें यह सब हैं ? एक दिन सरयू कहीं निकटकेही ग्राममें अपने सौतेले भाईके यहां अपने भतीजेके नामकरणमें जानेको थी और अपने भतीजेके साथ बैठीहुई रघुनाथकी चिन्ता कर रही थी कि, इतनेमें रघुनाथने आकर कहा, "प्राणेश्वरी ! कहांको जाओ हो ! अब कितने दिनमें आओगी ? कहीं वहां जाकर मुझको भूलमत जाना" सरयू अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे बोली, "प्यारे ! मैं जाऊंही कै दिनके कारण हूं, जो तुम दुःख पाते हो. कोई १० । १५ दिनसे अधिक नहीं लगेंगे. प्राणेश्वर ! तुमने जो कहा कि, कहीं जाकर भूलमत जाना; क्या तुम्हें यह विश्वास है कि, मैं कभी तुम्हें भूल सक्तीहूं ? मेरे भाग्यही खोटे हैं जो तुम्हारी दासी होनेसे अभीतक वंचित हूं। और मैं तो प्राण मन सभी तुम्हारे अर्पण कर चुकी हूं, मैं सत्यही कहती हूं कि, तुम्हारी मूर्ति दिन रात मेरे हृदयमें वसी रहती है" । यह कहही रही थी कि, दुर्गसे ठन ठन शब्द करके पांच बजे, उस शब्दको सुन सरयू बोली, देखो प्रीतम ! भगवती भी साक्षी देती हैं। मैं शीघ्र आऊंगी तुम अच्छी तरह रहियो, इतनेहीमें सरयूके

पिता जिन्होंने सरयूको पाला पोषा था आये और अपने पौत्रके साथ सरयूको जानेकी आज्ञा दी, सरयू चली साथ साथ रघुनाथ भी चले बहुत दूरतक चले गये; जब वहां एक नियतस्थानपर सरयू एक शीघ्रगामी गाडीपर बैठी तबतक रघुनाथ उसको अनिमेष नेत्रोंसे देखते रहे, जब गाडी चलनेको हुई तब सरयूने कहा, "जीवितेश्वर ! बिदादो ! " तब रघुनाथसे बोला न गया, और उनके नेत्रोंमें आंसू डबडबा आये, गाडी धीरे २ चली और क्रमशः शीघ्र चलने लगी अश्वभी कनौती उठाकर झपटे, चलतेहुए गुरुजनोंके संकोचसे एक संकेत द्वारा सरयूने रघुनाथके हाथ जोडे, रघुनाथ भी कर्तव्य विमूढ हो प्राणप्यारीको देखते रहगये, रघुनाथकी वह छवि जो सरयूने चलते समय देखीथी आज उसको स्मरण करके फूट २ आंसुओंसे रोई ! सरयू शोकसे अधीर होकर आंसू गिराने लगी, जब रोते २ थक जाती तब दुपट्टेके अंचलसे अश्रु पोंछ कुछ स्वस्थ होती कि, इतनेमें फिर चिंता आकर उन नेत्ररूपी फुलवारियोंको सींच जातीथी ।

कभी आधीरातके समय सहसा हृदयरूपी द्वार खुलता, और भादों मासकी नदीके समान शोक पारावार उछलने लगता। कोई देखने वाला नहीं था कि, सरयू कितना विलाप करती थी, इस भजनके यह पद सरयूके ऊपर उदाहरण होगयेथे कि–'निशिदिन वर्षत नैन हमारे, सदारहत वर्षाऋतु हम घर जब ते श्याम सिधारे, दृगअंजन कबहूँ नहिं लागत, कर कपोल भयेकारे।" जब रघुनाथका मधुर मुख, मधुमय वार्त्ता याद आती, एक बातके याद करते २ दूसरी बात मनमें पडती, शोकतरंग पर शोकतरंग हृदयके ऊपर टकराती थी, अंचलसे मुख ढक कर सुन्दरी विवश और व्याकुल हो श्रावणकी झडीके समान अश्रुकी धारासे डुपट्टे के अंचलको गला करती थी । सबेरा होजाता, पक्षी चुहचुहानें लगते, पूर्व दिशामें ललाई दृष्टि आती, बालिका तबतक शोक मोहसे विवश हो पृथ्वीपर लोट-ती रहती थी ।

भोर होतेही फूल बीनने बागमें जाती, एक २ फूल बीनती, हृदयपै धरती और जनें क्या क्या चिन्ता करती थी २ चिन्ता करते? फिर फूलोंकी ओर देखती, फूलों पर पडी हुई प्रभातकी ओसके सहित दो एक साफ आंसूभी मिल जातेथे । कभी संध्यासमय वीणा हाथमें लेकर गीत गाती,–अहा ! उन विषाद भरे गीतोंके

सुननेसे श्रवण करने वालोंके नेत्रभी डबडबा आतेथे। उसने बालकपनमें राजपूतोंके भाटोंसे जो शोक संगीत सुने थे, उनको भी कभी २ गाती, दुःखिनियोंके अनाथिनियोंके गीत गाय गाय अपने आपभी रोती और पशु पक्षियोंको भी रुलाती संध्यासमयकी निस्तब्धतामें वह गीत धीरे २ अंधकारमय आकाशमें उठकर सहजसे वायुमार्गमें फैलजाते, गीतोंके साथ साथ गानेवालीकी आंखोंसे भी बूंद २ जल निकलता अथवा शोकपारावार एक साथ उफन आता, जिससे गानेवालीका गला रुकजाता, और क्षणभरमें सब गीत लोप हो जाते थे।

रातदिन शोक और चिन्ताका शेष नहीं होता, रातदिन उस मार्गकी ओर सरयूबाला देखती रहती थी, परन्तु उस मार्गसे उसके प्राणनाथ अब तक न आये।

वसन्तकालमें रघुनाथ बिदा हुए थे, वह वसंत समय भी बीतगया; मधुर कंठवाले पक्षी एक २ करके अन्तर्धान होगये, पेडोंपरके सुन्दर फूल गिरगये, ग्रीष्मकालने अनेक प्रकारके स्वादयुक्त फलोंको लाकर मनुष्यके हृदयको आनंदित व जगत्को सुशोभित किया। सरयू बाला भी उसी मार्गकी ओर टकटकी लगाये बैठी है, परन्तु उस मार्गसे अभी रघुनाथके दर्शन नहीं हुए।

आकाशमें घटा घिर आई, बडी २ बूंदोंसे बरसना आरंभ हुआ, नदनदी, तालाब जलसे भरगये, खेतोंमें सुन्दर नाज शोभापाने लगा; पानीसे जड जंगल एक होगये उसी जंगलकी ओर सरयू एकटक देखकर विचार रही है कि, अभी प्राणनाथका कार्य पूरा नहीं हुआ? क्या अबतक प्राणेश मुझे भूले तो नहीं हैं? वह हैं तो कुशलसे? " आँखोंमें आँसू भर आये,–और नहीं देखसकी।

धीरे २ वर्षाका जल निकल गया आकाश मंडल साफ होगया. रात्रिकालमें शरच्चन्द्र उदित हो गगन और संसारमें कौमुदी विस्तार करने लगे; सरयूका हृदयाकाश कब निर्मल होगा? हृदयनाथ कब निशानाथके समान उदय होकर सरयूके मनमें आनंदकी चांदनी फैलावेंगे? सरयू मार्ग जोहती रही परन्तु मनके चोर न आये–न आये।

इस प्रकार भयंकर चिन्ता करते २ सरयूका शरीर सूखता चला, मुख पीला पडा, आंखोंको स्याहीनें आकर घेर लिया। सीधे साधे स्वभावके जनार्दन अबतक सरयूके हृदयकी वेदना नहीं जानते, परन्तु सरयूके शरीरकी अवस्था देख दिन रात चिंतित रहते, और इस रोगका कारण खोजने लगे।

स्त्रीके निकट स्त्रीकी बात छिप नहीं सकती, सरयूके अनेक छिपानेपर भी दासी और सखियोंने उसके मनकी बात कुछ २ जानली थी इससे वही वार्त्ता वृद्ध जनार्दनके कानतक पहुँची।

जनार्दन सरल और निर्मल चरित्र थे, तथापि जनार्दन राजपूज्य हैं राजपूतब्राह्मण भी राजपूतोंके समान अतिशय वंशमर्यादाके गर्व करनेवाले होते हैं। ज्योंही इन्होंने सुना कि, मेरी इकलौती कन्या एक साधारण मरहठे सिपाहीसे विवाह करना चाहती है ? राजविद्रोहीसे विवाह कर कुलमें कलंकका टीका लगाना चाहती है, त्योंही इनके नेत्र लाल हो आये, और शरीर कांपने लगा।

घरमें आकर उस निरपराधिनी लडकीको " पापिनी पिशाचिनी " कहकर नाम धरे सरयू चुप चाप पिताके दुर्वचन सहती रही, क्या संसारमें कोई ऐसा दुःख है जिसको अबला अपने प्रीतमके अर्थ न सह सके। ?

वृद्ध जनार्दन अपनी इकली लडकीको शोकसे मौन देख क्रोध निवारण कर गोदमें ले आंसू भरकर बोले-

" बेटी ! देख मेरे शिरके सबकेश श्वेत होगये हैं, क्या तू मुझे वृद्धावस्थामें दुःख देगी ? " ओह ! स्नेहकी की हुई ताडना सरयू न सहसकी, पिताके गलेसे चिपट बहुत रोई पिताभी रोनेलगे।

वृद्धने सरयूकी सखियोंके द्वारा सरयूको बहुत समझाया, उसका विवाह और पुरुषके साथ स्थिर करना चाहा और उसके कुलकी प्रतिष्ठा बहुत प्रकारसे बखान की।

सरयूका एकही उत्तर था कि " पितासे कहियो हम विवाह करना नहीं चाहती हम सदा क्वाँरी रहकर उनकी चरण सेवा किया करेंगी। "

वृद्ध क्षणमें शोकातुर और क्षण २ में क्रुद्ध होते थे एकदिन क्रोधवश हो सरयूसे बोले-

" सरयू ! हम राजपूत हैं राजपूत लोग कन्याकी अवमानता देखनेके पहले उसके हृदयमें छुरी बेंध देना अच्छा समझते हैं, कदाचित् तैंने भी चारणोंके गीतमें ऐसा सुना होगा। "

सरयूने धीरे २ उत्तरदिया-

" पिता ! ऐसे जनक वास्तवमें दयालु हैं ! पिता ! आप भी यदि ऐसाही आचरण कर मेरे मनकी कठिन पीरको दूर करदें तो मैं भी जन्म जन्मांतरमें आपकी दयाके गुण गाऊंगी। " वृद्ध नेत्रोंमें आंसूभर घरसे बाहर चलेगये।

फिर तो चारोंओर यह बात फैलगई, बुरे मनुष्य और भी बढा २ कर चर्चा करते, कोई कहते जनार्दनकी कन्या व्यभिचारिणी है इस कारण उसका विवाह नहीं होता।

जिस दिन जनार्दनने यह बात सुनी, उनका शरीर क्रोधसे कांपने लगा उन्होंने घर आय कन्याको बहुत ताडना करके कहा—

"पापिनी ! तेरे अर्थ क्या मैं इस वृद्धावस्थामें अपमान सहूं ? तू अपने पिताके निष्कलंक कुलमें कलंक देगी ? मेरे घरसे निकल जा—"

सरयू आंखोंमें जल भरकर बोली—

"पिता ! हम अज्ञान हैं यदि भूलसे कभी कोई दोष होगया हो तो क्षमा कीजिये, किन्तु जगदीश्वर मेरी सहाय करे, पिताजी ! हमसे आपकी अवमानता नहीं होगी। "

उस समय जनार्दन इस बातका आशय न समझ सके परन्तु उसके दूसरेदिन सब ज्ञात होगया था।

उसीदिन अँधियारी रात्रिमें सत्रह वर्षकी राजपूत बालाने पिताके गृहका त्याग किया, वह इकली महा विस्तारवाले संसार समुद्रमें कूदपडी।

तीसवाँ परिच्छेद।

कुटीमें।

"क्वाँरमें निर्मल चंद्र चाँदनी छिटकरही मोरे अँगनामेरे।
का सँग खेलिये रास श्याम बिन वृन्दावनकी कुंजन मेरे॥
कातिक आया सजे सब मंदिर अंगन लिपाये सखी चंदन सेरे।
भईहै न हरिबिन दीपमालिका ब्रजमें और ब्रजग्वालन मेरे॥"

स्वर्गीय छब्बीलाल मिश्र.

शरद्ऋतुके प्रात:कालीन कमनीय प्रकाशमें वेगवती नीरानदी बही जाती है, सूर्यकी किरणोंके पडनेसे जलकी तरंगें उछलती कूदती रँगीले रूप धारण कर बहरही हैं; नदीके दोनों सुन्दर किनारोंपर धानके खेत बहुत दूरतक चले गये हैं मानों किसानोंकी पूजासे प्रसन्न होकर पृथ्वी हरे वस्त्र धारण किये प्रफुल्ल होरही है । उत्तर और पूर्व दिशामें वैसेही श्यामवर्ण खेत, अथवा बहुत दूर दो एक ग्राम दृष्टिआते हैं; दक्षिण व पश्चिममें पर्वतश्रेणीके ऊपर पर्वतश्रेणीने बालसूर्यकी किरणसे एक मनोहर शोभा धारण करली है ।

उसी नदीके किनारे श्यामवर्ण खेतोंसे घिराहुआ एक सुन्दर गांव था; उस गाँवके मैदानमें किसानकी कुटीके धोरे एक लडकी नदीके किनारे खेल रही है, निकटही दासी खडी है और किसानकी स्त्री-अपने काम काजमें लगी हुई है ।

घरके देखनेसे किसान कुछ धनी मालूम होता है; उस घरके बाहर दो एक चौपालें बनी हैं एक ओर पशुशालामें ४ । ९ ढोर बँधे हुए हैं; घरके भीतर ४ । ९ घर और बाहर एक बडा घर बना हुआ था । देखते ही बोध होता था कि घरका मालिक किसान होनेपरभी एक " मातबर " आदमी है अर्थात् वाणिज्य व्यापार भी कुछ २ करता है ।

लडकी श्यामवर्ण, चंचल प्रफुल्ल और उज्ज्वलनयनी है । कभी नदीके किनारे दौडकर जाती, कभी जहां माता रसोई करती थी वहां जाती, कभी दासीके पास आय कुछ कहकर हँसती थी ।

बालिका बोली । जीजी चलो आज भी कलकी तरह घाटपर चलकर कपडेसे मछलियें पकडेंगे । "

दासी—" नहीं जीजी, अम्माने वर्जदिया है । घाटपर मत जाइयो । "

बालिका—" अम्माको खबर नहीं होगी " ।

दासी—" नहीं जिस बातको अम्माने बर्ज दिया है उसे मत करो; गुरुजनोंकी बात उलँघना अच्छा नहीं । "

बालिका—" अच्छा जीजी, हमारीही अम्मा क्या तुम्हारी अम्मा हैं ? "

दासी हँसकर बोली—" हाँ हाँ वही हमारी मां है " ।

बालिका—" ना, तुझे मेरी सौगंध, सची बता दे " ।

दासी–"हाँ सब सबही मां है"।

बालिका–" नहीं जीजी तुम तो राजपूत हो और हम तो राजपूत नहीं हैं"।

दासी–" बालिकाको चूमकर बोली, " जीजी फिर जान बूझकर क्या पूछती हो?"

बालिका–" अरी मैं यह पूछूं हूं कि, तू मेरी मांको माँ क्यों कहे करे है?"

दासी–" जिन्होंने मुझे खाने पीनेको दिया है, रहनेको स्थान दिया और अपनी कन्याके समान लालन पालन करती हैं उनको माँ न कहूं तो और क्या कहूं? इस जगत्में मेरे लिये और स्थान नहीं है, मुझे ऐसेही जगत्में स्थान दिया है"।

बालिका–" जीजी तुम्हारी आंखोंमें आंसू हैं तुम रोती क्यों हो?"।

दासी–" नहीं बहन! मैं रोती नहीं हूं।

बालिका–" जीजी! तुम्हारी आंखोंमें आंसू देखनेसे मेरी आंखोंमें आंसू क्यों भरा आता है?"।

दासी फिर बालिकाको चुम्बन कर बोली, तुम मुझे प्यार भी करती हो।

बालिका–" और तुम भी मुझे प्यार करती हो?"।

दासी–" हां"।

बालिका–" सदा प्यार करोगी कभी भूलोगी तो नहीं।

दासी–" नहीं और तुम जीजी हमें प्यार करती रहोगी, कभी नहीं भूलोगी?

बालिका " ना"।

दासी–"हाँ!, तुम हमें एक दिन भूल जाओगी।

बालिका–" कब"?।

दासी–" जब तुम्हारे प्रीतम आवेंगे?"

बालिका–" वह कब आवेंगे?"।

दासी–" और दो एक वर्षमेंके बीचमें ही।"

बालिका–" नहीं जीजी मैं तब भी तुम्हें नहीं भूलूंगी तब तो उनसे भी अधिक तुम्हें प्यार करूंगी। और जीजी तुम–तुम्हारे जब प्रीतम आवेंगे तब तुम हमें भूलोगी तो नहीं?"

" दासीकी आंखोंमें फिर जलभर आया, वह उस जलको अंचलसे पोंछ एक ठंढी श्वास ले कुछ मुस्कुराती हुईसी बोली–

ना जब भी नहीं भूलूंगी "।

बालिका–" अपने प्रीतमसे हमें अधिक प्यार करोगी ? "।

दासी हँसकर बोली, " बराबर बराबर "।

बालिका–" क्यों जीजी तुम्हारे प्रीतम कब आवेंगे ? "।

दासी–"भगवान् जाने ! छोडो अब रसोईकी वेला हुई मैं जाऊं हूं "। दासी रसोई करने चली गई।

यह पाठकोंको बताना अनावश्यक है कि सरयूबालाने जगत्में कहीं स्थान न पाकर एक किसानके स्थानमें दासी होना स्वीकार किया था किसानके कुछ संपत्ति थी, नाम गोकर्णनाथ था। गोकर्णनाथका अंतःकरण सरल और स्नेहयुक्त था, उसने निराश्रय राजपूत कन्याको अपने स्थानमें आश्रय देना स्वीकार किया, गोकर्णकी स्त्री भी स्वामीके समान थी वह निराश्रय और उन्नत कुलकी राजकन्याको देखतेही अपनी कन्याके समान उसका लालन, पालन करनेमें नियुक्त हुई, सरयू भी कृतज्ञ हो गोकर्ण और उसकी स्त्रीका उचित आदर सन्मान करती, अपने आप दोनों समय रसोई करती, बालिकाको खिलाती, इससे किसान और उसकी स्त्रीका काम बहुत बँटगया था, वह भी दिन २ सरयूसे बहुत प्रसन्न होने लगी।

रघुनाथके न रहनेपर यदि सरयूको कहीं सुखकी आशा होती तो उदार स्वभाव गोकर्णनाथ और उसकी शीलसम्पन्न स्त्रीके स्थानपर रहकर सरयू अत्यानंद प्राप्त कर सक्ती थी। गोकर्णकी उमर कोई ४९ वर्षकी होगी, किन्तु सदा नियमित श्रम करनेसे अबतक शरीर गठीला और बलवान् है, गोकर्णका एक पुत्र शिवाजीकी सेनामें नौकर था, उसको अपना स्थान त्यागे बहुत दिन हुए हैं, पीछे यह एक कन्या हुई थी, जिस्से पिता माता दोनों अत्यन्त स्नेह करते थे। प्रभात होतेही गोकर्ण खेतीके कार्य वा और किसी कार्यको बाहर जाते सरयू घरका सब कामकाज कर लेती कभी २ गोकर्णकी स्त्री कहा करती। "अरी सरयू ! तू धनवान् घरकी बेटी है, ऐसी कठिन मेहनत करनेसे तेरा शरीर कैसे रहेगा ? तू मत करे मैं सब करलूंगी "। सरयू अत्यन्त प्रीतिसे उत्तर देती, " अम्मा ! तुम मुझसे ऐसा

स्नेह करती हो कि मुझे तुम्हारा कामकाज करते हुए थकावट् नहीं आती मैं जन्म २ में तुम्हारी सेवा करूंगी, तुम अपना स्नेह सदा मेरे ऊपर ऐसाही बनाये रखना । " इन प्रीतियुक्त बातोंसे सरलस्वभाव वृद्ध गोकर्णकी स्त्रीके नेत्रोंमें जल आता वह आंसू पोंछकर कहती, " सरयू बेटी ! मैंने तेरे समान लडकी अबतक नहीं देखी, हमारी जातिमें यदि तेरे समान कोई लडकी मिले तो अपने पुत्रके संग उसका व्याह करदें । " पुत्रको गृहसे गये बहुत दिन हुए. यह स्मरण कर वह वृद्धा घडी एक रोया करती ।

इस भांति एक दो महीने बीते । एकदिन संध्या समय गोकर्णनाथ अपनी स्त्रीके निकट बैठे हैं, एकओर सरयू उनकी लडकीको खेल खिलारही है कि इतनेमें गोकर्णने स्त्रीसे कहा ।

"धीरज धरो, आज एक अच्छा समाचार पाया है । "

स्त्री–"आहा ! तुम्हारे मुँहमें घी गुड, क्या पुत्र भीमजीका समाचार पाया है?

गोकर्ण–"शीघ्रही आवेगा, पुत्र शिवाजीके साथ दिल्ली गया था–

आज सुना है कि शिवाजी उस दुष्ट बादशाहके फंदेसे निकलआये अब वह अपने देशको आते हैं, तब हमारा भीमजी भी निश्चय उनके साथ आवेगा । "

स्त्री–"भगवान् ऐसाही करे, एक वर्षसे पुत्रको बिनादेखे मन कैसा व्याकुल है सो भगवान्ही जानता है । "

गोकर्ण–"भीमजी अवश्यही आवेगा, वह रघुनाथजी हवालदारके अधीनमें कार्य करता था, रघुनाथजीका समाचार भी मिला ! "

सरयूका हृदय आनंदसे उमड आया वह घबडाहटसे श्वासको रोक गोकर्णकी वार्त्ता सुनने लगी, गोकर्ण कहने लगे–

"जिसदिन रघुनाथको विद्रोही जानकर शिवाजीने निकाल दिया, उसदिन पुत्रने हमसे क्या कहाथा, याद है ? "

स्त्री–"हम स्त्रियोंको भला इतने दिनोंकी बात कहांतक याद रहै ? ",

गोकर्ण--पुत्रने कहा था, पिता ! यदि रघुनाथ विद्रोही हों तो मैं आज ही खड्गका त्यागन करता हूं मैं अच्छी तरह हवालदारको जानता हूं; उसके समान शिवाजीकी सेनामें दूसरा वीर नहीं है, जिस भ्रममें पडकर राजाने उनका अप-

मान किया—यह वह महाराज पीछेसे समझेंगे और तब उनको रघुनाथके गुण याद आया करेंगे । इतने दिन पीछे पुत्रहीका कहना सत्य हुआ ।

सरयूका हृदय हर्ष और घबडाहटसे धक २ करनेलगा वह जलदी २ श्वास लेने लगी, उसके माथेसे पसीनेकी बूंदें गिरने लगीं, ऐसी घबडाहट मनको महा दुखाती है ।

गोकर्णनाथ कहने लगे ।

"रघुनाथजी वेष बदलकर राजाके संग २ दिल्ली गये थे उन्होंने चतुराईसे राजाका उद्धार कर अपनी निर्दोषिता प्रमाणित की, सुनाहै कि, महाराज शिवाजीने आंसू भरकर उनसे अपने अपराधोंकी क्षमा चाही और रघुनाथको भ्राता कहकर हृदयसे लगाया, एक बारही हवालदारसे 'पांच हजारी' करदिया है । शहरमें और वार्त्ता नहीं, गांवों और वार्त्ता नहीं, केवल रघुनाथकी वीरताको सुन सब जय २ शब्दकर धन्यवाद देरहे हैं"

इकतीसवाँ परिच्छेद ।

स्वप्नदर्शन ।

"पिया तोहिं भुजभर कंठलगाऊं ।
हृदय लगाय व्यथा निरवारों मन्मथ ताप मिटाऊं ॥
तुमसों भयो मिलन अब प्रीतम सब दुख दुसह नशाऊं ।
तव मुखचंद्र निहार प्राणपति निजमन कुमुद खिलाऊं ॥
अब मोहिं छोड प्रवास न वसियो बिनती यही सुनाऊं ।
तुम बिन रति पति अति डर पावे कैसे प्राण बचाऊं ॥
अब तुमसों वियोग न होय प्रिय विधिसों यही मनाऊं ।
तुमरेसंग सुरपुरहि गमन करि बहुरि तुमहिं पति पाऊं ॥

(आलेख्य उपन्यास.)

एकदिन, दोदिन, दशदिन, यहांतक कि, एक मास बीतगया परन्तु रघुनाथ नहीं आये। सरयूसे और नहीं सहागया, उसका शरीर चिन्ता करनेसे दुर्बल होगया, हाथ पैरोंमें ज्वाला उठने लगी और कभी २ शरदी भी आजाती थी।

सरयू यह जानती थी कि, रघुनाथ कुशलपूर्वक हैं, परन्तु वह आये क्यों नहीं ? क्या सरयूको भूलगये। इस चिन्ताके आतेही सरयूके हृदयमें वज्र समान आघात लगा दिन २ सरयूके हृदयमें यह चिन्ता प्रबल होने लगी—

एकदिन संध्याके समय सरयू नदीके किनारे बांये हाथपर कपोल स्थापन किये हुए चिन्ता कर रही है कि, इतनेमें गोकर्णकी कन्या आकर सरयूसे बोली।

जीजी ! तुम्हारी छातीमें दर्द है तो तुम फिकर क्यों करो हो फिकर करनेसे तो रोग और बढे है ?।

सरयू। "ना बहन! फिकर करनेसे रोग घटै है; मैं इससेही तो फिकर करती रहूं हूँ।"

बालिका। "तुम क्या फिकर करो हो ? क्या कुछ अपने प्रीतमकी बात है ?"

सरयू। नेत्रोंमें जल भरकर कुछेक हँसकर बोली, "हां प्रीतमहीकी फिकर करती हूं।"

बालिका। "प्रीतम कब आवेंगे ?"

सरयू। "प्रीतम हमें भूलगये।" सरयूके मुखपर हँसना और आंखोमें जल था।

बालिका। "फिर कैसे होगी ?"

सरयू। "और एक प्रीतम मुझसे विवाह करेंगे।"

बालिका। "वह कौन हैं ?"

सरयू। "यमराज"

बालिका। "वह कैसे" ?

सरयू। "हमारी समान जिनको प्रीतम भूलजाते हैं, यम उनके साथ विवाह करते हैं।"

बालिका। "यह तो कोई बडे कोमल चित्तवाले हैं !"

सरयू। "बडे कोमल चित्त हैं, अहा ! जाने वह कब हमें बुलावेंगे ?"

बालिका। "क्या उनसे विवाह करनेपर तुम्हारा रोग छूट जायगा ?"

सरयू । "हां सब दुःख छूट जायगा । हा जगदीश्वर !"

बालिका । "वह कब आवेंगे ?"

सरयू । " जलदी । "

कुछ देर वार्त्तालाप होनेपर बालिका तो सोनेको चलीगई सरयू इकली उस नदीके किनारे बैठकर चिन्ता करने लगी ।

रात्रि जगत्में गंभीर अंधकार विस्तार करने लगी; आकाशमें तारे डबडबाने लगे सामने नदी कुल २ शब्द करके बही चली जाती है सरयू नदीकी ओर फिर कुंजब नकी ओर देख अँधियारे आकाशकी ओर इकटक लोचनसे देखने लगी ।

सरयू क्या विचार कररही है, अभागिनी विचार रही है कि, विधाता यदि मुझे चिरदुःखिनी करता, दासी होकर भी यदि जीवन धारणा करना होता, टूटे फूटी झोंपडीमें यदि रहना पडता, भीख मांगकर भी यदि जीवन व्यतीत किया जाता, हृदयेश ! सरयू तुम्हैं पाकर यह सब दुःख हर्षसे सहन करलेती । पिताने दूर किया, माता बालकपनमें छोडगई, हृदयनाथ ! यह भी सहलिया है, तुम्हार ध्यान करते २ सब सहलिया, इस संसारमें ऐसी कौन वेदना है जो यह अभा गिनी तुम्हारे हित न सहसके ? रोग, शोक, परिताप, क्लेश, विधाता इस दुःखि- नीको देते, नाथ ! तुम्हैं पाकर सरयू सबको सहन करजाती । परन्तु अब सरयू का जीवन सूना है ? नाथ ! चिरंजीवी हो, तुम्हारा यश, तुम्हारा मान, जगत्में विस्तारित हो,—अभागिनीको बिदा दो । मैं और अधिक दिन नहीं बचूंगी, भग वान् तुम्हैं सुखी रक्खै । " आंसुओंकी धारासे बालिकाका शरीर भीग गय वह ठंढी श्वास लेकर बोली, " बालावस्थामें माता छोडगई यौवनकालमें धर्म परायण पिताको खो बैठी । नाथ ! अब तुमने भी इस अभागिनीका त्याग किया मैं तुम्हारी निन्दा नहीं करती, भगवान्, जीवन रहते सरयू तुम्हारी निन्दा न करै; मैंने अपनेही भाग्यके दोषसे तुम्हैं नहीं पाया, मेरा भाग्यही खोटा है । "

सरयू इस समय महादुःखित हो हाथोंसे शिर पीटकर मूर्च्छित होगई । इधर गोकर्ण बाहर आये और सरयूको मूर्च्छित देखकर गृहमें उठा लाये वह अनेक उपा- योंके करनेसे सरयूकी मूर्च्छा गई, तब गोकर्ण बोले " बेटी ! रघुनाथ हवालदारके साथ शीघ्रही हमारा पुत्र भीमजीभी यहां आनेवाला है; उसके आनेपर यदि तुम अपने देशमें जाना चाहोगी तो भेज दिया जायगा, तुम किसी कारणसे घबडाओ मत;—

रघुनाथके शीघ्र आनेका समाचार सुन सरयूका रंग बदलने लगा, बहुत दिनके पीछे, आशा, आनंद, उल्लासने इस रीति हृदयमें स्थान पाया अब फिर दोनों नेत्र खिलगये; दोनों अधर फिर खिले हुये फूलके समान सुगंधित और सुन्दर होगये; माथे और गर्दनपर फिर लावण्यता फूट निकली, रेशमसे नरम केश फिर उस सुन्दर मधुभरे लावण्यमय मुखके साथ उडकर; गिरकर, चटककर मटककर खेल करने लगे, आशासे सरयूका हृदय दुर दुर करता, प्रातःकालके समय मन्द २ पवनके साथ जब अति दूरके वृक्षोंसे कोयलकी कूक सुनाई आती, तब बालिकाका हृदय क्षण २ पल २ निमेष २ में शिहर उठता था, दुपहर ढुलेपर संध्याकाल नियरानेके समय सरयू गृहके कार्यको समाप्तकर क्षण २ नदीके किनारे वृक्ष तले खडी हो, सूर्यकी ताप बचानेकी हाथोंसे अपने दोनों नेत्र ढक नदीके दूसरे किनारोंकी ओर बहुत दूरतक अनेक समयलों देखती रहती संध्याके समय वनमें बाँसुरीके बजनेपर चकित मृगीके समान सरयूबाला चमक उठी थी। युवा अवस्थाके प्रेमके सहित यौवनकी आशा आनकर मिलगई, सरयूके यौवनकी सुन्दरता मानो सहसा खिलगई।

गोकर्णकी कन्याने भी सरयूका यह फेरफार देखा। एक दिन संध्याको नदीपर जानेके समय कन्याने पूँछा।

" जीजी दिन दिन तुम्हारा रूप कैसा खिला आता है "।

सरयू—" कौन कहै है ? "।

बालिका—" कहता कौन ? क्या हमें दीखता नहीं ? "।

सरयू " यह तुम्हारे देखनेकी भूल है "।

बालिका— "हाँ भूलही है ? पहले तो शिर पै कुछ नहीं रहता था अब कभी २ चोटीमें फूल खोसलिया जाता है, सो क्या इसको मैं देखती नहीं हूं ! "।

सरयू—" दूर हो " !

बालिका—" और गलेमें वारंवार किसी हारके पहरनेको क्या मैं नहीं देखती हूं"

सरयू—" चलो ऐसी बातें हमें नहीं भातीं। "

बालिका—" और नदीके किनारे बहुत देरतक अपने शरीर और मुखको जो जलके भीतर देखती हो, यह क्या हमें खबर नहीं है "।

सरयू–" अरी क्यों झूंठ बोले है " ।

बालिका–" वृक्षके तले और कुंजवनमें छिपकर कभी कोयलके समान वाणीसे गीतोंका गाया जाना क्या मैं नहीं सुनती हूं ? " ।

अब तो सरयूने आकर हाथसे बालिकाका मुख बंद करलिया । तब बालिका हँसते २ बोली हम तो यह सब बातें अम्मासे कहेंगी " ।

सरयू–" नहीं जीजी ! देखो तुम्हारे पांव पडें किसीसे कहियो मत "

बालिका–" अच्छा तो हम एकबार पूछें हैं सो बतादोगी ? " ।

सरयू–" बतादेंगी " ।

बालिका–" यह रूप किसके लिये है ? यह फूल, यह हार, यह गीत किसके लिये हैं ? तुम्हारी दोनों आंखें जो सदा चंचल रहती हैं तुम्हारे दोनों गोल गुलाबी होंठ, जिनसे ललाई फटी पडती है और तुम्हारी यह देह जो सुन्दरतासे चमक दमक रही है, भला जीजी यह किसके लिये हैं ? ।

सरयू–" तुम्हारी माँ जो तुम्हारा शिर बांधकर तुम्हें गहना कपडा पहिरावे हैं सो काहेको पहरावे हैं ? " ।

अबके गोकर्णकी कन्या कुछेक लजाई–और बोली, " अम्माने कहा है कि पारसालको हमारा ब्याह होगा, हमारी बरात आवैगी " ।

सरयू–" तौ हमारी भी बरात आवैगी ? "

बालिका–" सच्ची कह ? " ।

" हर हर महादेव ! " सरयू और गोकर्णनाथकी कन्या परस्पर बातें कर रही थीं कि इतनेहीमें एक बडे डीलडौलवाले संन्यासी " हर हर महादेव " शब्द उच्चारण करके नदीके किनारेपर आये. संध्याके स्तमित प्रकाशमें उनका विभूति विभूषित दीर्घ शरीर अति मनोहर व सुन्दर दिखाई दिया ! गोकर्णकी कन्या तो बाबाजीको देख डरके मारे भाग गई और सरयूने तीक्ष्ण दृष्टिसे देखा कि सीतापति गोसांई इधरकोही चले आते हैं ।

सरयूका हृदय अचानक कंपायमान हुआ, माथेसे पसीना निकला मनकी घबडाहटसे समस्त शरीर थर थर कांपने लगा परन्तु सरयू उस चंचलताको रोक, लाज और भयको छोड धीरे २ संन्यासीके निकट आय प्रणाम कर स्थिर वाणीसे बोली ।

" महाराज ! एक दिन जिस अभागिनीको आपने जनार्दनके गृहमें देखाथा उसकोही आज कुटीमें दासीके कार्य करते हुए देखा । पिताने कलंकिनी कहकर हमको दूर करदिया, परंतु हे कृपानिधान ! योगके बलसे आप देख लें कि, मैं कलंकिनी नहीं केवल एक देवतुल्य वीरकी पक्षपातिनी हूं " ।

संन्यासीके नेत्रोंमें आंसू भरआये और धीरे २ बोले । क्या रघुनाथके लिये इतना कष्ट सहा ? " ।

सरयू–" जबतक उस पवित्र पुरुषके नामके जपनेकी सामर्थ्य रहेगी, उतने दिन तक मुझको कष्टभी नहीं जान पडैगा "

संन्यासीका गला रुकगया नेत्रोंसे जलधारा निकलने लगी, हृदय धडकने लगा.

सरयू–फिर कहने लगी " क्या महाराजने उस देवपुरुषको देखा था ? " गोसांई अपनेको सँभालकर बोले " हां देखा था ! "

सरयू–" क्या महाराजने मुझ दासीका सन्देशा उनसे कह दिया था ? "

गोसांई–" हां ? कहदिया था । "

सरयू–" क्या कहदिया था । "

गोसांई–तुम्हारा एक शब्द या एक अक्षरभी मैं नहीं भूला मैंने उनसे कहा था कि राजपूतबाला सरयू जीवसे यशको बडा समझती हैं। मैंने यह भी कह दिया था " सरयू जबतक संसारमें रहेगी रघुनाथहीकी याद और रघुनाथके ही नामकी माला जपकर उमरके दिन बितावैगी "

सरयू–"अच्छा । "

गोसांई–मैंने उनसे यह भी कहा था " जो कार्य सिद्ध करनेमें उनका कोई अमंगल होजाय; तो जानलें कि उनकी चिर विश्वासिनी सरयू भी इस नाशवान् देहको त्याग देगी । "

सरयू–"महाराज मुझपर बडीही कृपा की । "

गोसांई–मैंने यह भी कहा था कि " सरयू राजपूतबाला अविश्वासिनी नहीं है ।"

आनंद और उत्साहसे सरयूका समस्त शरीर कांप गया ।

गोसांई–मैंने उनसे तुम्हारे वह प्रकाशित वचन भी कहे थे कि, उनके महान् आशयको मैं नहीं रोकना चाहती वह खड्ग हाथमें लेकर अपना यशमार्ग निष्कंटक करें, जो जगत्का कर्त्ता धर्त्ता है वह उनकी भी सहायता करेगा ?

घबडायकर सरयूने पूंछा " तब उन पुरुषश्रेष्ठने क्या उत्तर दिया ? "

परिष्कार स्वरसे गोसांईजी बोले । " रघुनाथने कुछ उत्तर नहीं दिया, उन्होंने केवल आपके वचनोंको हृदयमें धारणकर असाध्यका साधन किया है, खड्ग हाथमें लेकर यशके मार्गको साफ किया है । "

उस संध्याके अंधकारमें गोसाँईके नेत्र वीरबहूटीके समान जलरहे थे उस नदीके तीर और वृक्षोंके मध्यमें गोसांईजीके परिष्कार वचन वारंवार गुंजार रहेथे ।

"जगत्के आदिपुरुष भगवान्को प्रणाम करती हूं " यह कहकर सरयूने आकाशकी ओर दोनों हाथ जोडकर प्रणाम किया ।

बहुत देरतक दोनों मौन रहे, संध्याकालकी शीतल समीरसे दोनोंका शरीर शीतल होगया, नेत्रजल शुष्क होआये । कुछ विलम्ब पीछे गोसांई मंद मुसकानको रोककर बोले ।

देवताके प्रसादसे कार्य सिद्ध करनेके पीछे रघुनाथने एक समाचार हमारे द्वारा तुम्हें कह पठाया है । "

सरयूने उत्कंठित होकर पूंछा,–

"वह क्या है ? "

गोसांई–"उन्होंने कहा है कि सरयूसे कहना, इस समय राजकार्य सिद्ध हो गया है, अब पवनके समान गतिसे सरयूके निकट जाऊंगा । परन्तु दिल्लीसे महाराष्ट्रदेश बहुत दिनोंका मार्ग है । सो इतने दिनोंतक सरयू अपने दासको याद तो रक्खेगी ? मेरे आनेपर सरयू मुझे पहँचान तो लेगी ? "

सरयू–" हा प्राणेश्वर ! इस जन्ममें क्या सरयू उन्हें भूल सक्ती है ? मेरा प्यार जीवन व्यापी है ।

गोसांई– आपके प्रेमको वह जानते हैं; तौ भी नारीका मन सदा चंचल रहता है, क्या आश्चर्य है यदि तुम उनको भूल जाओ । "

गोसांईकी चपलता और मुस्कान देख सरयू कुछ अप्रसन्न होकर बोली " मैं नहीं जानती थी, कि नारीका मन चपल होता है । "

गोसांई–" मैं भी नहीं जानता था, परन्तु आज देखता हूं । "

सरयू–" कैसे देखा ? "

गोसांई—जिन्होंने हमें सदा प्यार करना अंगीकार किया था, वह आज हमको भूलगई और देखकर न पहचान सकी ? ”

सरयू—“ वह कौन हतभागिनी है ? ”

गोसांई—“ यह वही भाग्यवती है कि जिसको तोरण दुर्गमें जनार्दनके गृहकी छत्तपर बैठे हुए देखकर मन प्राणको खोया था, यह वही भाग्यवती है जिसके कंठमें एक दिन मोतियोंकी माला पहिराकर अपने जीवनको चरितार्थ समझा था, यह वही भाग्यवती है जिसको तोरण दुर्गमें, जयसिंहके डेरोंमें युद्धके अवसरमें और संधिकालमें सदाही नेत्ररत्नके समान प्यार किया जिसका दर्शन मेरे लिये सूर्यका प्रकाश, जिसकी मनोहर वाणी मेरे श्रवणका संगीत, जिसका स्पर्श मेरे लिये चन्दनका प्रलेप और जिसका स्नेह मेरे जीवनका भी जीवन है। यह वही भाग्यवती है जिसके नामका स्मरण कर जिसके उत्साह वचन हृदयमें धारण कर मैं दिल्लीगया, खड्ग हाथमें पकड यशके मार्गको निष्कण्टक किया और अत्यन्त विपदसमुद्रके पार होगया. बहुत दिनोंके पीछे बहुत विपदोंके पार होकर आज उस भाग्यवतीके समीप आया हूं, परन्तु नारी चपल होती है आज वह हमें नहीं पहँचानती। ”

नारायण ! उस कोयल निन्दित वाणीसे सरयूका हृदय लोट पोट होगया, पहली सब बातें हृदयमें याद आईं, तारोंके प्रकाशमें कपटवेषधारी उस दीर्घाकार चिर प्रार्थित श्रेष्ठ पुरुषको पहचान लिया, सरयू हृदयके वेगको नहीं रोकसकी, उसका शिर घूमरहा था, नेत्र बंद थे केवल “ रघुनाथ क्षमा करो ” कहकर दोनों हाथ रघुनाथकी ओरको फैलाये ॥

उस गिरतेहुए प्रिय शरीरको रघुनाथने अपने अंकमें धारण करलिया जिसको सरयू सदा चाहती थी उसी पुरुषरत्नने आज सरयू बालाको भली भांति हृदयसे लगाया है !

अहह ! बहुत दिनोंके पीछे आज सरयूका संतापित हृदय रघुनाथके शान्त हृदयसे लगकर शीतल हुआ। सरयूके श्वास रघुनाथके श्वाससे मिले। सरयूके कंपायमान दोनों अधरोंमें इस जन्मके बीचमें आज प्रथम बारही रघुनाथके अधरोंको छुवा ।

हाय ! शरीरके स्पर्श करनेसे बालिका एकबारही शिहर उठी; बालिका चैतन्यताहीन, बालिका घोर उन्मादिनी, बालिका थर २ करके उस प्रिय और गाढे आलिंगनसे, उस वारम्बारके चूँबनेसे कांपने लगी !

यह बात यथार्थ है या स्वप्न ?

पवनसे चलायमान हुये पत्तेके समान सरयूने मनही मन कहा, " जगदीश्वर ! जो यह स्वप्न हो तो मैं इस सुखकी नींदसे कभी न जागूं । "

बत्तीसवाँ परिच्छेद ।

जीवननिर्वाण ।

" यतो धर्मस्ततोजयः " ।

महाराष्ट्रदेशमें महा धूमधाम पडगई । शिवाजी उस दुष्ट औरंगजेबके फंदेसे निकल आये; अब यह उससे युद्धकर म्लेच्छोंको देशसे निकाल हिन्दूराज्यकी स्थापना करेंगे । नगर २ ग्राम २ मार्ग २ में इसी भांतिका समाचार फैलगया ।

इधर राजा जयसिंह विजयपुरपै चढाई करके भी उसको अपने अधिकारमें न लासके, उन्होंने जो बार २ औरंगजेबके निकट सेनाकी सहायता माँगी, वह भी विफल हुई, तब वह भलीप्रकार समझगये कि, औरंगजेबका उद्देश मुझे सेना समेत नाश करानेका है, यह विचार वह विजयपुर त्यागकर औरंगाबादकी तरफ लौट आये ।

जबतक महाराज जयसिंह जिये तबतक औरंगजेबके विश्वासी अनुचरकीनांई कार्य करते रहे । उन्होंने कभी यह नहीं शोचा कि, मेरे साथ औरंगजेबने कैसा बुरा वर्त्ताव किया; बरन वह चित्त लगाय अग्रसर रहते थे जब उन्होंने निश्चयही जानलिया कि, महाराष्ट्र देशका त्याग करना होगा, तबतकभी जहांतक बसाई, बादशाहकी सामर्थ्य विस्तार करनेकी कोशिश की । लोहगढ, सिंहगढ, पुरन्दर प्रभृति स्थानमें बादशाहकी सेना एकत्र की । इसके अतिरिक्त जिन किलोंके अधिकारमें रहनेकी संभावना नहीं थी उन सबको एकबारही विध्वंसकर चूर्ण कर दिया, जिससे शत्रुलोग उन्हें काममें न लासकें ।

परन्तु इस जगत्में ऐसे विश्वासी कार्योंका पुरस्कार कौन देता है ? औरंगजेबने जब सुना कि, जयसिंहने नीचा देखा, तब बहुतही प्रसन्न हुआ; और उनका अधिक अपमान करनेको सेनापतिके पदसे उतार दिल्लीमें बुलाभेजा और उनके पदपर महाराज यशवंतसिंहको भेजदिया ।

वृद्ध सेनापतिसे जहांतक होसका जन्मभर दिल्लीपति औरंगजेबके कार्य साधनमें तत्पर रहे थे, जीवनके शेष दिनमें इस अपमानसे उनका अंतःकरण विदीर्ण होगया, उन्होंने मार्गमेंही मृत्युसेजपर शयन किया ।

अपमानित, पीडित, वृद्ध जयसिंह अनंत धामकी तैयारी कररहे हैं कि, इतनेमें एक दूतने आकर संवाद दिया ।

"महाराज ! एक महाराष्ट्री सैनिक आपके दर्शन करना चाहता है वे कहते हैं कि, जिन्होंने आपके चरणोंमें बैठकर एकदिन उपदेश ग्रहण किया था; और एकदिन मुझे और उपदेश पानेकी आशा प्रकाशकी थी, आज वही उपदेश लेने आया हूं ।"

राजाने उत्तर दिया–

"आदरपूर्वक ले आवो, वह दिल्लीके शत्रु हैं; परन्तु दूतके वेषमें आते हैं, मैं उनको निर्भय देता हूं, राजपूतका वचन अन्यथा नहीं होता ।"

उसी समय एक महाराष्ट्रीने छद्मवेष धारण किये; उस गृहमें प्रवेश किया; राजा उनकी ओर देखतेही बोले–

"प्रियमित्र शिवाजी ! मृत्युसे पहले तुम्हारे दर्शन करनेमें कृतार्थ होगया । मुझमें उठकर आदर करनेकी शक्ति नहीं; इससे दोषपर ध्यान न करके आसनपर विराजिये–"

शिवाजी नेत्रोंमें जल भरकर बोले, "पिता ! जब मैंने आपसे अंतिम-बिदा ग्रहण की थी; तब यह नहीं जानता था कि, इतना शीघ्र आपको इस अवस्थामें देखूंगा ।"

जयसिंह–"राजन् ! मनुष्यका देह क्षणभरमें भंग होजाता है; इसमें विस्मय क्या ?" फिर एक ठंढी श्वास भरकर बोले–"शिवाजी ! मुझसे जब तुम्हारा शेष साक्षात् हुआ था, तबसे और अबके मुगलराज्यमें कितना अंतर पडगया है ।"

शिवाजी–"महाराज इस मुगलराज्यके प्रधान स्तंभ थे, जब आपहीकी यह अवस्था है, तब मुसल्मान राज्यके गौरवकी आशा कहां ?"

जयसिंह—"वत्स! यह नहीं होसक्ता, राजस्थानकी भूमि वीरप्रसविनी है जयसिंहके मरतेही दूसरा जयसिंह पैदा होजायगा—जयके समान हजारों योद्धा अब भी पडे हैं मेरे समान एक मनुष्यके मरनेसे मुगलराज्यका कुछ हानि लाभ नहीं"।

शिवाजी—"आपके अमंगलसे अधिक मुगलराज्यका और अधिक क्या बुरा हो सक्ता है?"।

जयसिंह—"एक वीरके जानेसे दूसरा पैदा होजाता है, किन्तु पापसे जो क्षय होजाती है, उसका संस्कार फिर कभी नहीं होता। मैंने भी प्रथमही कहाथा कि, जहां पाप और कपटाचारिता, वहीं अवनति और मृत्यु रक्खी हुई है, अब वह बात प्रत्यक्ष है देख लीजिये"।

शिवाजी--"वह क्या बात है"।

जयसिंह--"जब मैंने आपको दिल्लीमें भेजा था तब आपका मनभी दिल्लीश्वरकी ओरको फिरगयाथा. और आपनेभी यही ठान ली थी कि, जबतक वह मेरा विश्वास करेगा, तबतक मैंभी उसके साथ विश्वासघात नहीं करूंगा। यदि सम्राट् आपके साथ सुव्यवहार करते तो दक्षिण देशमेंभी उनका एक प्रबल बंधु हो जाता, अब कपटाचरण करनेसे उस मित्रके स्थानमें एक प्रबल शत्रु है"।

शिवाजी—"महाराज! आपकी बुद्धि असाधारण और दूरदर्शी है सब जगत् जयसिंहको विज्ञ जानता है"।

जयसिंह—"और सुनिये। मैं औरंगजेबके पिताके समयसे दिल्लीका कार्य करताआया हूं। विपद् और युद्धमें जहांतक बसाई दिल्लीश्वरका उपकार किया। स्वजाति, विजातिका विचार नहीं किया; अपने स्वार्थका विचार नहीं किया, जिसके कार्यमें वृत्ती हुआ जीव समर्पण कर उसका कार्यसाधन किया। वृद्धावस्थामें प्रथम तो सम्राट्ने मेरे साथ असदाचरण कर फिर अपमानित किया। कुछ इसके कारण मैंने कार्यमें त्रुटि नहीं की, मैं जो सब सेना किलोंमें रख आया हूं, शिवाजी वह तुम्हें बिना युद्ध किये किलोंका अधिकार नहीं देगी। परन्तु इस आचरणके करनेसे स्वयं औरंगजेबहीकी हानि हुई, अम्बरके राजगण दिल्लीके विश्वासी व सहायक होते आये हैं परन्तु अब आगेसे वह शत्रु हुआ करेंगे।

क्रोधसे शिवाजीके नेत्र लाल हो आये, महात्मा जयसिंह शिवाजीको समझाय धीरे २ कहने लगे—

"दो उदाहरण, महाराष्ट्रदेश और अंबरदेशके लिये, परन्तु सब भारतवर्षका यही हाल है। शिवाजी! औरंगजेब समस्त भारतवर्षके विश्वासी नौकरोंका अपमान कर मित्रोंको शत्रु करता है, काशीका मन्दिर गिराकर वहां मसजिद बनाई है, राजस्थानमें वरन् सर्व देशमें हिन्दुओंका अपमान कर उनके ऊपर 'जिजिया' कर स्थापन किया है"। क्षण एक नेत्र बंद कर फिर ऐसे गंभीर स्वरसे कहने लगे, मानो मृत्युशय्यापर इस महात्माके दिव्य नेत्र खुलगये, उनहीं नेत्रोंसे भविष्यत् देख वह राजर्षिके समान बोले--"शिवाजी! मुझे दृष्टि आता है कि, इस कपटाचारितासे चारोंओर समरानल जलेगी, राजस्थानमें पूर्वदिशामें अग्नि जलेगी! औरंगजेब वीस वर्षतक छल करनेपरभी, उस अग्निको नहीं बुझा सकेगा, उसकी तीक्ष्णबुद्धि, उसकी असामान्य चतुराई, उसका असाधारण साहस व्यर्थ होगा, फिर वृद्धावस्थामें पछताताहुआ बादशाह प्राणत्याग करेगा। अनल और भी प्रबल वेगसे जलेगा चारों ओरसे सांय २ शब्द करता हुआ जलेगा, उसी अग्निमें यह मुगलराज्य भस्म हो जायगा। फिर महाराष्ट्रियोंका भाग्य चमकेगा, महाराष्ट्रप्रवर, आगे बढकर दिल्लीके सूने सिंहासनपर बैठना"।

राजासे और कुछ न बोला गया, वैद्य जो निकटही बैठेथे इन्होंने बहुत दवाइयें दीं, परन्तु जयसिंह बहुत विलम्बलों अचेत पडे रहे।

फिर बहुत देर पीछे धीमें स्वरसे बोले, कपटाचारी अपने पैरमें आपही कुल्हाडी मारता है, "सत्यमेव जयति"।

श्वास रुककर शरीरसे प्राण निकल गये।

शिवाजी बालकके समान रोकर मृतक जयसिंहके चरणोंमें शिरधर अनिवारित अश्रुधारा वर्षाने लगे।

तेतीसवाँ परिच्छेद।

जीवनप्रभात।

"अरे! ओ! सिंदूरा बजाओ बजाओ।
नगारे पै चोंबे लगाओ लगाओ॥

चतुर्वर्ण सेना बुलाओ बुलाओ।
ध्वजा औ पताका उडाओ उडाओ॥

(संयोगता स्वयंवर नाटक.)

एक प्रहर रात्रि रहते २ शिवाजी राजपूतोंके डेरोंसे चले आये, बाहर आय एक वृद्ध ब्राह्मणको देखकर पहचाना, जो कि राजा जयसिंहका प्रधान मंत्री था।

मंत्री बोला, " राजन्! महाराज जयसिंह मुझे आज्ञा दे गये थे कि, मेरी मृत्यु होने उपरान्त यह सब कागजपत्र शिवाजीको दे देना। मैंने इतने दिनतक इनको चौकसीसे रक्खा, अब आप इनको ग्रहण कीजिये। "

शिवाजी, उस समय बडे शोकाकुल थे, वह चुप चाप उन कागजपत्रोंको ले अपने शिबिरमें चले आये।

प्रभातकाल होनेके प्रथमही शिवाजीने अपने प्रधान २ सैनिक और बंधु मित्र वर्गोंको एकत्रित किया। फिर बाहर आय अपनी समस्त सेनासे बोले—

" बंधुगण! एक वर्ष हुआ हम लोगोंने औरंगजेबके साथ संधि करली थी सो वह संधि औरंगजेबके दोष और कपटाचरणसे टूटगई अब हम औरंगजेबसे उसका बदला लेनेको यवनोंसे युद्ध करेंगे।

जो औरंगजेबके प्रधान सेनापति थे, जिसके साथ युद्ध करनेको ईशानी देवीने वर्जदिया था, जिससे बिनाही युद्ध किये मैं परास्त हुआ आज रात्रिमें उस महात्मा राजा जयसिंहने औरंगजेबके घृणित कार्योंसे दुःखित हो प्राण त्यागदिये। सैन्य-गण! दिल्लीमें हमारा बंदी होना, हिन्दू प्रवर राजा जयसिंहकी मृत्युका होना इस समय हम यवनलोगोंसे सब बातोंका बदला लेंगे!

" मृत्युशय्यापर राजा जयसिंहके दिव्य नेत्र खुलगये थे, उन्हें दृष्टि आया था कि, मुगलोंके भाग्यनक्षत्र अवनतिशील और महाराष्ट्रियोंका भाग्य उन्नति शील है। शीघ्रही दिल्लीका सिंहासन सूना होगा; भाइयो! चलो आगे बढके युधिष्ठिर और पृथ्वीराजके सिंहासनपर हम अपना अधिकार करें।

पूर्व दिशामें जो ललाईकी छटा दृष्टि आती है वह प्रभातकी रक्तिम ललाई है। किन्तु यह हमलोगोंका सामान्य प्रभात नहीं है, महाराष्ट्रगण! हे हिन्दूगण! आज हमारा " जीवनप्रभात " है।

समस्त सेनानी और सैन्यगण यह महान् वाक्य कहकर गर्जने लगे कि, आज हमारा " जीवनप्रभात " है।

चौतीसवाँ परिच्छेद।

विचार।

" जो जस करै सो तस फल चाखा "

(तु० रामायण.)

जिस विषयका वर्णन हम पिछले परिच्छेदमें करचुके हैं, उसीदिन संध्या समय रघुनाथ नदीके किनारे टहल रहेथे, अपनी पदोन्नति सरयूसे मिलाप होना मुसलमानोंके साथ युद्धका फिर होना, आर्य कुलकी भावी स्वाधीनता, इन्हीं सब नवीन विषयोंकी चिन्तना करते २ उनका हृदय प्रफुल्ल होरहा था, कि इतनेमें किसीने पीछेसे पुकारा—

" रघुनाथ ! "

रघुनाथने पीछे फिरकर देखा तो चंद्रराव जुमलेदार हैं ! क्रोधसे इनका शरीर कांपने लगा, परन्तु यह रघुनाथ ईशानीके मंदिरकी प्रतिज्ञाको नहीं भूलेथे ।

चंद्रराव बोला, "रघुनाथ ! इस संसारमें हम तुम दोनों नहीं रहसक्ते इस कारण एक मरेगा । "

रघुनाथ क्रोधको रोककर बोले, "चंद्रराव ? रे कपटाचारी मित्रघाती चंद्रराव ! तेरे पापका फल तो जभी मिले जब तेरा शिर काट लियाजाय परन्तु रघुनाथने तुझे क्षमा करदिया अब भगवान्से क्षमा प्रार्थना कर । "

चंद्रराव--"बालकोंसे क्षमा चाहनेका मुझे अभ्यास नहीं, तेरा काल अब आय पहुँचा, तू ध्यान देकर मेरी बात सुन ।

" तू मेरा और मैं तेरा जन्मसेही परमशत्रु हूं । बालकपनसेही मैं तुझे बिषभरी दृष्टिसे देखता हूं, कभी २ जीमें यह भी आया कि पत्थरपर तेरा शिर दे मारूं ! परन्तु यह नहीं किया; किन्तु तेरा धन संपत्ति नाशकर देशसे दूर कराया, तुझे विद्रोही बनवाकर सेनासे निकलवाया । चंद्ररावकी भयंकर हृदयाग्नि इन कार्योंके करनेसे कुछेक शांति हुई है ।

तेरा भाग्यही खोटा है, जभी तो फिर उन्नति पायकर यहां आया है । चंद्र-रावकी अटल प्रतिज्ञा कभी नहीं टली, न कभी आगेको टलै; अब सब उपायोंको

छोड इस खड्गसे तेरा हृदय बेधकर उसका रुधिर पी यह भयंकर प्यास बुझाऊंगा। "रे पामर! आज मेरे हाथसे तेरा बचना कठिन है!"

रोषसे रघुनाथके नेत्र अंगारेके समान लाल होगये वह लडखडाती हुई वाणीसे बोले--

"रे पामर! सामनेसे दूर हो, नहीं तो अभी प्रतिज्ञाको भूलकर तुझे तेरे पापका दंड दूंगा।"

चंद्रराव--" रे डरपोक! युद्धसे डरता है तब और सुन। उज्जयनीके युद्धमें जिस तीरसे तेरे पिताका हृदय विद्धहुआ था, वह दुश्मनका छोडा नहीं था, बरन् चंद्ररावही उस तीरका छोडनेवाला तेरे पिताका घाती है।

अब रघुनाथको चारोंओर अंधकार दृष्टि आने लगा, वह कानोंसे कुछ नहीं सुनसके, और तलवार निकालकर चंद्ररावपर आक्रमण किया। चंद्रराव भी तलवारसे युद्ध करनेमें कुछ ऐसा वैसा नहीं था, बहुत देरतक युद्ध होता रहा, दोनोंकी तलवारोंसे दोनोंके शरीरमें घाव लगे, वर्षाकी धाराके समान दोनोंके शरीरों से रुधिर निकलने लगा। चंद्रराव बलमें कुछ रघुनाथसे कम नहीं था, परन्तु रघुनाथ दिल्लीमें चमत्कार युद्धविद्या सीखकर प्रवीण हुये थे; उन्होंने बहुत देर युद्ध करनेपर चन्द्ररावको परास्तकर पृथ्वीपर पटक दिया; और उसकी छातीपर घुटना टेककर बोले--

" पामर! आज तेरे पापोंका नाश हुआ (ऊपरको देखकर) पिता! आपकी मृत्युका बदला लेलिया।

मृत्युके समयभी चंद्रराव निडर हँसकर बोला अरे! अब मैं यह ध्यान करता हुआ कि, तेरी बहन विधवा हुई, सुखसे प्राण त्याग करूंगा यह कह फिर हँसने लगा।

बिजलीके समान सब बातें रघुनाथके मनको धक्का देगईं। इसी कारणसे लक्ष्मीने स्वामीका नाम नहीं लिया था, और इसीलिये प्रार्थना की थी कि, चंद्ररावका अनिष्ट मत करना। पिताघाती चंद्ररावने बलपूर्वक मेरी बहनसे विवाह किया, क्रोधसे रघुनाथके नेत्रोंमें आगकी चिनगारियें निकलने लगीं, वह दांतसे दांत रगडने लगे। लेकिन उनकी उठीहुई तलवारने चंद्ररावके हृदयका रुधिर

नहीं पिया। वह धीरे २ चंद्ररावको छोडकर अलग खडे होगये, और बोले, "पिशाच! तेरे पापका विचार ईश्वर करेगा, रघुनाथमें तेरे पापका दंड देनेकी सामर्थ्य नहीं है?"

"पाप और विद्रोहिताका दंड देनेको मैं तो असमर्थ नहीं हूं" यह कहकर पीछेसे एक मनुष्य निकल आया, रघुनाथने देखा कि शिवाजी खडे हैं!

शिवाजीका इशारा पातेही चार आदमी जंगलसे निकल चंद्ररावके हाथपात्र बांध उसको कैदकर लेगये, दूसरे दिन चंद्ररावका विचार होगा; रघुनाथके पिताको मारनेका, या कल रघुनाथपर निरर्थक आक्रमण करनेका विचार नहीं है, वह जो रुद्रमंडल दुर्गपर चढाई करनेके प्रथम शत्रु रहमतखांको गुप्त समाचार दिया और फिर रघुनाथको उस दोषसे दूषित करनेकी चेष्टा की थी आज उसकाही विचार है।

प्रथमही कह आये हैं कि, अफगान सेनापति रहमतखांके रुद्रमंडल दुर्गमें बंदी होनेपर शिवाजीने उसके साथ सुव्यवहार किया और उसको छोड दिया था। रहमतखां भी फिर अपनी स्वाधीनता पाकर विजयपुरके सुलतानके यहाँ चला गया, जब जयसिंहने विजयपुरपर चढाई की तब रहमतखांने अमित तेजके साथ युद्ध किया और उसी युद्धमें घायल होकर जयसिंहका बंदी होगया था। जयसिंह उसको अपने डेरेमें लाय अतियत्नसहित उसके आरोग्य करानेकी चेष्टा करने लगे, परन्तु उस रोगसे रहमतखांको आराम नहीं हुआ और जयसिंहकेही डेरोंमें उसकी मृत्यु हुई।

मृत्युके एकदिन पहले जयसिंहने रहमतखांसे पूँछा "खांसाब! अब आपका समय आगया, मेरी सेवा और यत्न सब वृथा हुये; इस समय यदि आपको कुछ दु:ख न हो तो मैं एक बात बूझना चाहता हूं।"

रहमतखां बोला—"मुझे अपने मरनेका कुछ अफसोस नहीं, लेकिन सिर्फ इतना अफसोस बाकी है कि, आपने दुश्मन होकरभी मेरे साथ नेकी ही की और उसका कुछ बदला मैं न देसका। आप जो चाहैं सो दरियाफ्तकर लीजिये, मैं आपसे कुछ पोशीदः नहीं रखसक्ता।"

राजा जयसिंह बोले, "रुद्रमंडलपर चढाई करनेके पहले एक शिवाजीके फौजी सिपाहीने आपको समाचार दिया था, वह कौन है उसको मैं नहीं

जानता और मुझको जान पड़ता है कि उसके बदलेमें एक निरपराधी दंड पागया है।"

रहमतखां-"मैंने अहदकर लिया है कि, ताबे जिन्दगी उसका नाम नहीं बताऊंगा। अय राजपूत! मैं तुम्हारे अहसानोंका ममनून हूं, लेकिन मैं अपना अहद पैमान नहीं तोड सक्ता।"

जयसिंह कुछ सोच विचारकर बोले "खांसाह! मैं आपसे अहदमान तोडनेको नहीं कहता, परन्तु आपके पास कोई निशानी हो तो क्या उसके देनेमें भी कोई आपत्ति है?"।

रहमत-"अहद कीजिये, कि वह निशान आप मेरी मौत होनेसे पेश्तर नहीं पढैंगे।"

जयसिंहने यही प्रतिज्ञा की, तब रहमतखांने उनको कुछ कागज दिये।

रहमतखांकी मृत्यु होने उपरान्त राजा जयसिंहने उन कागजोंको पढकर देखा तो ज्ञात हुआ है कि, विद्रोही चंद्रराव है!

रहमतखांके पास चंद्ररावने अपने हाथसे लिखकर पत्र भेजा था; उसको और उसके संबंधमें और जो कागज पत्र थे उन सबको राजाने पढा और उनके पढनेसे चंद्ररावको जो कुछ इनाम मुसलमानोंसे मिला था वह भी ज्ञात होगया; और उसकी रसीद जो कुछ चंद्ररावने दी थी मिलगई।

राजा जयसिंह जिस दिन स्वर्गवासी हुये उसीदिन मंत्रीने वह सब कागज पत्र शिवाजीको देदिये थे।

अभियोगका विचार करनेमें बहुत समय आवश्यक नहीं हुआ, शिवाजीके विश्वासी मंत्री रघुनाथ न्यायशास्त्री एक २ करके उन पत्रोंको पढने लगे, जब सब पत्रोंको पढचुके तब क्रोधसे समस्त सेना गर्जने लगी। यह बात जानकर कि, चन्द्रराव विद्रोही है! इसनेही शत्रुओंको संवाद दे उनसे पुरस्कार ग्रहण कर निर्दोषी रघुनाथपर वह सब अपराध लगा प्राणदंड दिलवाचुका था परन्तु वह अपने भाग्यसे बच गये, सब सैनिक लोग हुंकार देकर क्रोधसे कांपने लगे।

शिवाजी बोले "रे पापाचारी! विद्रोही! तेरा समय आ पहुँचा यदि कुछ कहना हो तो कह सुन ले!"।

चन्द्रराव मृत्युके समय भी निडर था, प्रथमहीकी नांई अभिमान कर बोला—

" मैं और क्या कहूं ? आपका न्याय तो विख्यात हो रहा है। एक दिन इसी दोषपर रघुनाथको दंड दिया था, आज इसी दोषपर मुझे दंड मिलता है, मेरी मृत्यु होने पश्चात् एक दिन फिर किसी दूसरेको जब आप दंड देंगे तब, ज्ञात हो जायगा कि चन्द्रराव इस विषयमें लेशमात्र कुछ नहीं जानता था यह सब प्रमाण मिथ्या हैं "।

इन बातोंको श्रवण कर शिवाजीने क्रोधसे आज्ञा दी—

" जल्लाद ! चन्द्रावके दोनों हाथ काट डाल, जिससे यह आगेको घूंस न ले सके; फिर तत्तेलोहेसे इसके माथेपर " विश्वासघाती " शब्द दागदो जिससे फिर कोई इसका विश्वास न करे "।

जल्लाद इस भयंकर आदेशके पालन करनेको आही रहा था कि, इतनेमें रघुनाथने खडे होकर कहा, " महाराज ! मैं कुछ निवेदन करना चाहता हूं "।

शिवाजी—" रघुनाथ ! इस मामलेमें तुम्हारा निवेदन अवश्यही सुना जायगा, क्योंकि इस पामरने तुम्हारे भी प्राणनाश करनेका यत्न किया था, यदि बदला लेनेकी इच्छा हो तो कहो "।

रघुनाथ—" महाराजका अंगीकार अलंघनीय होता है, उसका बदला मैं यही चाहता हूं कि चन्द्ररावका बाल बाँका न होने पावै अनुग्रह करके इसे बिना दंड छोंडदीजिये ! "।

सब सभासद इस बातको सुन अचंभा करने लगे, तब शिवाजी रोषको थांभकर बोले—

चन्द्ररावने जो तुम्हारे ऊपर अत्याचार किया था, तुम्हारे अनुरोधसे मैंने उस अपराधसे इनको मुक्त कर दिया। परन्तु राज्यमें विद्रोह करनेवालेको दंड देनेका अधिकार राजाहीको है उस दंडकी आज्ञा मैं दे चुका, जल्लाद ! अपना काम पूरा कर"।

रघुनाथ—" आपका विचार सदा प्रशंशाके लायक है, परन्तु मैं महाराजसे भिक्षा चाहता हूं कि चन्द्ररावको बिना दंड छोंडदीजिये "।

शिवाजी—" यह भिक्षा मैं नहीं दे सक्ता, रघुनाथ ! इस बार तौ तुम्हें क्षमा किया, दूसरेको क्षमा न करता "। शिवाजीके नेत्र लाल हो आये।

रघुनाथ--" पृथ्वीनाथ ! दो एक लडाइयोंमें मैं प्रभुका कार्य करनेको समर्थ हुआ था तब आपभी इस दासको वांछित पुरस्कार देनेमें स्वीकृत हुए थे आज वही पुरस्कार मांगताहूं कि चन्द्ररावको बिना दंड छोडदीजिये " ।

शिवाजीके नेत्रोंमेंसे चिनगारियें निकलने लगीं, वह गर्जकर बोले " रघुनाथ ! रघुनाथ ! कभी २ हमारा उपकार किया तो क्या उसकेही कारण आज मेरा विचार अन्यथा करना चाहते हो ? राजाज्ञा अन्यथा नहीं होती, तुम भी अपनी वीरताकी कथा अपने मुँहसे मत कहो " ।

इस निरादर वाक्यके सुनतेही रघुनाथका मुख तमतमा आया वह धीरे २ कांपते स्वरसे बोले--

" महाराज ! पुरस्कार चाहनेका दासको अभ्यास नहीं है, आज अपने जीवनमें प्रथम बार पुरस्कार चाहा है, सो महाराज यदि उसको देनेमें सम्मत नहीं हैं तो यह दास दुबारा नहीं मांगेगा, अब दासकी एक यही भिक्षा है कि आप दया करके मुझे जाने दें, जब रघुनाथ वीरव्रत त्याग फिर गोसांई हो देश देशमें भिक्षा मांग अपना जीवन बितावेगा " ।

शिवाजी कुछ देरतक चुप रहे, उनको रघुनाथके सब उपकार याद आगये इस कारण वह रघुनाथकी आंखोंमें आंसू देख कातर हुए उनका क्रोध छूटगया वह धीरे २ बोले--

" रघुनाथ ! तुम्हारा अभिलाष पूर्ण हुआ, चन्द्ररावको मैंने छोड दिया, रघुनाथ ! तुमने जो व्रत धारण किया है उसमेंही स्थिर हो सदा शिवाजीकी दाहिनी भुजाकी नाईं स्थिर हो " ।

सब सभासद मौन हो धिक्कारकी दृष्टिसे चन्द्ररावको देखने लगे, महा अभिमानी चन्द्रराव सर्व साधारणकी यह घृणा और निन्दा नहीं सह सका उसको यह बात बहुत बुरी लगी कि रघुनाथकी दयासे मेरे प्राण बचे ।

निडर चन्द्रराव धीरे २ क्रोधसे कंपायमान हो रघुनाथके निकट जायकर बोला--

" बालक ! मैं तेरी दया नहीं चाहता, तेरे दिये जीवनको मैं कुछ नहीं समझता तेरी कृपापर मैं इस भांति लात मारता हूं, यह कहते २ रघुनाथकी छातीमें एक लात मारी और अपनी छुरी अपने ही हृदयमें बेधकर अभिमानी अटलप्रतिज्ञ चंद्रराव जुमलेदारने सर्वसाधारणकी घृणासे अपना निस्तार करलिया, चंद्ररावका जीवनशून्य शरीर सभामें गिरपडा ।

पैंतीसवाँ परिच्छेद।

भाई बहन।

" नहिं पिसरन कोइ माता है। सब जीनेही तक नाता है। "

पं० छब्बीलाल मिश्र।

यह उपन्यास पूर्ण होगया इस समय प्रीतम प्रियतमाके विषयमें दो एक बातें कहकर हम अपने पाठकोंसे बिदालेंगे।

वृद्ध जनार्दन कन्याको खोकर उद्भ्रान्तसे होगये थे फिर सरयूको पाय आनंदके आँसू बहाते हुए बोले, " सरयू! सरयू! पुत्री मैंने तेरे समान रत्नको फेंकदिया था। क्या मैं तुझे त्याग एक दिन भी जी सक्ता हूं? " सरयू भी पिताके गले लग रोती हुई बोली, पिता मेरा अपराध क्षमा कीजिये, अब इस जीवनमें कभी आपसे अलग न रहूंगी! "

इसके उपरान्त वृद्ध जनार्दनने सुना कि, रघुनाथ राजपूत संतान और उन्नत राठौर वंशीय वीरश्रेष्ठ गजपति सिंहका पुत्र है, तब इन्होंने प्रसन्नतापूर्वक शुभ दिनमें सरयूके साथ रघुनाथका विवाह करदिया, सरयूको जो सुख हुआ वह कौन वर्णन कर सक्ता है? चार वर्षतक जिस देवकान्तिका जप किया था जब उसही पुरुषदेवको अपने कोमल हृदयसे लगाया उसके अधरोंपर जब अपने अधर स्थापन किये तब सरयू सुख पायकर उन्मादिनीसी होगई जिसने यह सुख कभी पाया है, इसको वही जानलें हम उसका वर्णन नहीं कर सक्ते।

और रघुनाथ! रघुनाथने तोरणदुर्गमें जो स्वप्न देखा था क्या वह आज सत्य होगया? वह प्रिय कंठहार बार बार सरयूके हृदयमें उन्होंने पहराया उस रमणी-रत्नको फूलोंसे भी अधिक सुकुमार देहको हृदयसे लगाया और उन विशाल प्रीतिपूर्ण नेत्रोंकी ओर देखते २ मतवालेसे होगये।

सरयू अपनी सातवर्षकी " जीजी " को नहीं भूली, रघुनाथके कहनेसे शिवाजीने गोकर्णको एक जागीर दी और गोकर्णके पुत्र भीमजीका ओहदा बढाकर हवालदार करदिया!

सरयू जीजीको सदा अपने घरपर रखती और प्रीतम सहित " बराबर बराबर" प्यार करती—कई वर्ष पीछे एक योग्य पात्रके संग जीजीका विवाह करदिया, व्याहके दिन रघुनाथ और सरयू भी वहीं थे, सरयूनें जीजीके कानमें कहा, " जीजी " देखियो, जो कह चुकी हो वह भूलमत जाइयो, इब प्रीतमसे अधिक हमें प्यार करियो !

रघुनाथ तेरह वर्षतक सुकीर्ति और सन्मानके साथ शिवाजीके अधीन रहे; यशवंतसिंहने जब सुना कि, रघुनाथ उनकेही प्रिय अनुग्रहीत गजपति सिंहके पुत्र हैं. तब रघुनाथकी सब पैतृकभूमि छोडदी और अपनी ओरसे भी बहुत जागीर उनको दान की; परन्तु शिवाजीने रघुनाथको देशसे नहीं जाने दिया। जबतक जीवित रहे रघुनाथको नेत्रोंके सामनेही रक्खा, फिर जब सन् १६९० ईसवीके चैत्र मासमें शिवाजीने शिवलोककी यात्रा की और उनका अयोग्य पुत्र संभाजी पिताके पुराने अनुचरोंको अपमानित करके कारागारमें भेजने लगा; रघुनाथ भी वहां रहनेमें भलाई न देखनेपर सरयू और जनार्दन समेत अपने देशको लौट आये; वहां आय अपनी पैतृक जागिर पाय उसपर अधिकार करलिया; वह रघुनाथके पिताका भवन रघुनाथ और सरयूके लडके लडकियोंके खेलनेके हास्यध्वनिमें शब्दायमान होने लगा,

पाठको ! इच्छा तो यही थी कि, यहीं आपसे बिदा लें, परन्तु अभी एक जनका वृत्तान्त तो रहाही जाता है; उस शान्त सहनशील लक्ष्मीरूपिणी लक्ष्मीका क्या हुआ ?

जिसदिन चंद्रावने आघात किया था रघुनाथ तत्कालही बहनको देखने गये, उन्होंने वहां जाकर जो देखा उससे इनका हृदय कांपने लगा देखा कि चंद्रावके मृतकके समीप केश खोले लक्ष्मी विलाप कलाप कर रही है, कभी मोहके वश होजाती है, उसके हृदयविदारक आर्तनादसे वह गृह भी रुदन करता था; आर्य-कुल संभूत ललनाओंको पतिके मरणसे जो दुःख होता है वह यदि सरस्वती अपनी वाणीसे वर्णन करना चाहे तो नहीं वर्णन कर सक्ती. आज लक्ष्मीके नेत्रोंकी ज्योति जाती रही; हृदय शून्य होगया, सब जग अंधकारमय दृष्टि आनेलगा ! शोक विषाद नैराश्य और नये रँडापेकी महाव्यथासे विधवा फूट २ कर रोरही है ।

रघुनाथने उसको कुछ धीर बँधाना चाहा, परन्तु धीर तो दूर रहे लक्ष्मी अपने प्राणसम भ्राताको पहचान भी न सकी; नेत्रोंसे नीर टप २ टपकाते हुये रघुनाथ उस घरके बाहर आये ।

संध्या समय फिर बहनके देखनेको आये, और लक्ष्मीका चित्त एकसाथ बदला हुआ देख विस्मित हुये; उन्होंने देखा लक्ष्मीकी आँखोंमें आँसू नहीं बरन् वह धीरे २ स्वामीके मृतक देहको सुन्दर २ फूलों और सुगंधके द्रव्योंसे सजा रही है। लडकियें जिसप्रकार गुडियोंको गहने वस्त्रोंसे सजाती हैं; इसी भांति लक्ष्मी स्वामीके देहको सज्जित करती है।

जब रघुनाथ घरमें आये तो लक्ष्मी धीरे २ इनके समीप आई और ऐसे दबे पैर आई कि, जैसे कहीं स्वामीकी नींद शब्द होनेसे टूट जायगी और रघुनाथ से आकर बोली।

" भइया रघुनाथ ! तुम्हें और एकबार देखलिया, यह मेरा।

रघुनाथ--" बहन ! मैं भला इस समय बिना तुम्हारे देखे कैसे रह सक्ता "

लक्ष्मी अपने भइयाके मुखको आंचलसे पोंछने लगी और कहा।

" इसमें कोई सन्देह नहीं कि तुम्हारा शरीर दयाका भरा हुआ है। महाराजसे जो तुमने हृदयेश्वरके बचानेकी प्रार्थना की वह भी मैंने सुनी। जो मेरे भाग्यमें लिखा था सो हुआ, भगवान् तुम्हें सुखी रक्खे " लक्ष्मीके आंसू भरआये।

रघुनाथ--" लक्ष्मी तुम तो बुद्धिमान् हो, तुमने अपने शोकको किसी प्रकारसे रोका, इससे मैं संतुष्ट हुआ। मनुष्यका जीवनही शोकमय है. जो भाग्यमें था सो हुआ, धीरज धरके शोकको सहो। चलो, मेरे घरपर चलो, यदि भ्राताके यत्न और भ्राताके स्नेहसे तुम्हारा शोक कुछ कम होगा तो मैं सब प्रकारसे वैसाही उपाय करूंगा। "

इस बातको सुनकर लक्ष्मी हँसी, इस हास्यको देखकर रघुनाथका मुख सूख गया। लक्ष्मी बोली;--

" भइया ! तुम बडे दयावान् हो, परन्तु मुझे तो परमेश्वरनेंही शान्ति देदी है। हृदयनाथ तो सदाकी नींदमें सोगये, वे मुझसे अत्यन्त स्नेह करते थे, जीवन रहते दासी उनकी प्रेमिणी थी और अबभी उनके संगही जायगी। "

रघुनाथके मस्तकपर वज्र टूट पडा। तब वह समझे कि इस कारणसे लक्ष्मीका शोक जाता रहा है। लक्ष्मीने सती होनेका बिचार किया है।

रघुनाथने बहुतेरे उपाय किये कि, लक्ष्मी अपने इस विचारको छोड- दे इस कारण बहुत समझाया बुझाया, रोये भी बहुत, पहर भरतक तर्क भी किया,

परन्तु लक्ष्मीका यही उत्तर रहा कि, "प्राणेश्वर मुझसे अत्यन्त स्नेह करते थे, मैं बिना उनके नहीं रह सक्ती ।"

फिर रघुनाथने आंसू भरकर कहा "बहन ! एकदिन मेरा जीवनभी निराशासे पूर्ण हुआ था, मैंने भी शरीर त्यागनेका संकल्प करलिया था । परन्तु तुम्हारे समझाने बुझानेसे उस संकल्पको छोडकर फिर कार्यमय जगत्में प्रवेश किया । लक्ष्मी ! "क्या तुम भइयाकी बात न मानोगी ? क्या तुम भइयासे स्नेह नहीं करती हो ?"

लक्ष्मीने वैसेही शान्तभावसे उत्तर दिया—

"भइया ! मैं उस बातको नहीं भूलीहूं तुम लक्ष्मीको स्नेह करते हो सोभी नहीं भूली हूं । भइया ! विचार तो करो, पुरुषोंको अनेक आशा, अनेक उद्यम अनेक अवलम्बन रहते हैं, एक विषय गया कि, चट दूसरा वर्तमान, एक चेष्टा विफल हो तो दूसरी सफल होती है । भइया ! उसदिन तुमने बहनकी बात मानी थी, आज तुम्हारा कलंक दूर होगया, सामर्थ्य पाई, देश देशान्तरमें यश फैला परन्तु अभागिनी स्त्रियोंपर क्या है ! मेरे नेत्रोंकी ज्योति जो आज जाती रही है, क्या वह फिर मुझको प्राप्त होगी ? जो महात्मा दासीको इतना प्यार करते, इतना अनुग्रह करते थे वह क्या फिर दासीको दर्शन देंगे ? भइया ! तुम बालकपनसे लक्ष्मीको बहुत प्यार करते आये हो आजभी दया करो, लक्ष्मीके मार्गमें कांटा न डालकर, प्राणेश्वरके संग जाने दो ?"

रघुनाथ चुप होगये । प्रेममई भगिनीके अंचलमें मुख छिपाकर बालककी समान आंसू गिराने लगे । इस असार कपटरूपी संसारमें भाई बहनके अखण्ड-नीय प्रेमकी समान और कौनसा पवित्र व स्निग्ध प्रणय है ? स्नेहमई भगिनी के समान अमूल्य रत्न इस विस्तारित संसारमें और कहाँ जानेसे मिलेगा ?

दोपहर रात गये चिता तैयार हुई, उसके ऊपर चंद्रावका शव रक्खा गया, हास्य बदना लक्ष्मीने सुन्दर रेशमीन वस्त्र और अलंकारादि पहर एक २ करके सबसे बिदा ली ।

चिताके निकट आय, दासियोंको अलंकार, रत्न, मुक्ता वितरण करने लगी, अपने हाथसे उनके आंसू पोंछकर मीठे वचनोंसे समझाने बुझाने लगी । कुटुम्ब और जातिकी स्त्रियोंसे बिदा ली । बडे बूढोंके चरणोंकी रजको शिरपर धारण

किया। सब सपत्नियोंको आलिंगन करके बिदा दी सबके आंस पोछे। मीठे वच-नोंसे सबको समझाया।

फिर रघुनाथके निकट आकर कहा;—"भइया! बालकपनसे तुम लक्ष्मीको अत्यंत प्यार करते हो। आज लक्ष्मी भाग्यवती है तुम चिरंजीव हो अब स्नेहका कार्य करो कि, अपनी बहिनको सदाके लिये बिदा दो"। अब रघुनाथसे न सहा-गया। लक्ष्मीके हाथ पकडकर ऊंचे स्वरसे रोने लगे। लक्ष्मीके नेत्रोंमें भी जलआया। स्नेहसहित भाईके नेत्रोंका जल पोंछकर लक्ष्मी कहने लगी। "भइया! यह क्या? शुभ कार्यमें क्यों रोतेहो पिताकी समान तुम्हारा साहस और पिताकी ही समान तुम्हारा अंतःकरण है; भगवान् तुम्हारा सन्मान अधिक बढावेगा। जगत् तुम्हारे यशसे पूर्ण होगा! लक्ष्मीकी पिछली यही प्रार्थना है कि, भगवान् रघुनाथको सुखी रक्खे, भइया बिदा दो, स्वामी दासीकी बाट देखते होंगे।

रघुनाथ कातरस्वरसे बोले—

"लक्ष्मी तेरे बिना संसार सूना जान पडता है, जगत्में रघुनाथका और कौन है? प्यारीबहन! तुझे कैसे बिदा दूं? तेरे बिना मैं कैसे जीऊँगा?" आर्तनाद कर रघुनाथ पृथ्वीपर गिरपडे।

फिर बहुत यत्नकरके लक्ष्मीने रघुनाथको उठाया, और बहुत समझाय बुझायकर कहने लगी, "भइया! तुम वीरश्रेष्ठ हो, जो पुरुषोंका धर्म है वह तुम पालन करते हो, तो अपनी लक्ष्मीको नारीधर्म पालन करनेसे क्यों रोकते हो? अब विलम्ब या बाधा करना ठीक नहीं; यह देखो! पूर्व दिशामें ललाई निकल आई अब तुम लक्ष्मीको बिदा दो।"

गद्गद वाणीसे रघुनाथ कहने लगे,—

"बहन! प्यारी बहन! इस जगत्से तुमको बिदा दी, परन्तु इस आकाशमें, इस पुण्यधाममें, फिर तुम्हें पाऊंगा। हाय! मुझे तुम्हारे न पानेतक जीवन्मृत होकर रहना पडेगा।"

प्रिय भ्राताके चरणोंकी धूल माथेसे लगाय चिताकी परिक्रमाकर स्वामीके चरणोंमें शिर धरकर लक्ष्मी बोली, "हृदयेश्वर! जीवित रहते तुम दासीसे अत्यन्त स्नेह करते थे अब भी ऐसी कृपा कीजिये कि, चरणोंमें बैठ तुम्हारे संग चलूं।

हे भगवन् ! मेरे स्वामी जन्म जन्मान्तरमें मुझको मिलें । प्राणनाथ ! मैं जन्म जन्ममें तुम्हारी सेवा करूं । हे ईश्वर ! मेरी और कुछ वासना नहीं है । "

जब लक्ष्मी चितापर बैठी तब किसीने पुकारा कि " बहूजी कहाँ जाती हो ?" रघुनाथने नेत्र उठाकर देखा कि, पींजरेमें बैठीहुई मैना बार बार यही बोल बोल रही थी.

धीरे २ चितापर बैठ स्वामीके चरणोंको पकड अपनी गोदमें रखलिया । नेत्र बंद किये—तब ऐसा जान पडा कि इसी समय लक्ष्मीकी आत्माने स्वर्गमें प्रवेश किया ।

अग्नि लगादी गई, प्रचुर घृतके प्रभावसे शीघ्रही अग्निदेव धुधकार कर अपनी शिखा विस्तार करने लगे । प्रथम अग्निदेवकी लपट लक्ष्मीके पवित्र शरीरको चाटने लगी. और तेजयुक्त हो. चारोंओरसे उसके शरीरको घेर शिरपर शिखा पहुँची, नैश गगनमंडलकी ओर महाशब्द धावमान हुआ । लक्ष्मी धीरभावसे बैठीरही उसका एक केश तक नहीं काँपा ।

एक पहरमें अग्नि तो निर्वाण होगई, किन्तु वह भयंकर दृश्य, चिताका वह डरावना धुधकार शब्द रघुनाथ जीवित रहते न भूले ।

इति शिवाजी विजय

अर्थात्

जीवनप्रभात समाप्त ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्—मुद्रणयन्त्रालय—बंबई.